स्वर्णिम बचपन

--ओशो--

(42 में से मिसिंग -15 वां)

प्रस्तुत हैं, ओशो के बचपन के रोमांचक क्षण। इन्हें ओशो ने अपने अमेरिका प्रवास के दौरान, अपने निकट के चार शिष्यों के सम्मुख, स्वयं वर्णित किया है। इंग्लिश में प्रकाशित 'ग्लिम्पसेज़ ऑफ ए गोल्डन चाइल्डहुड' पुस्तक का हिन्दी अनुवाद किया है, मा आनंद उर्मिला ने।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (1)

मुझे फिर उस छोटे से गांव की याद आ गई जहां मैं पैदा हुआ था। यह समझ में नहीं आता कि अस्तित्व ने मेरे जन्म के लिए उस छोटे से गांव को क्यों चुना? वह वैसा ही है जैसा होना चाहिए। वह गांव बहुत सुंदर था। मैंने दूर-दूर बहुत यात्रा की है, कई स्थान देखे हैं किंतु ऐसा सौंदर्य कहीं नहीं देखा। कोई भी चीज दोबारा नहीं मिलती। चीजें आती जाती हैं लेकिन दोबारा वैसा नहीं होता। मैं अभी भी उस छोटे से शांत गांव को देख सकता हूं - तालाब के पास थोड़ी सी झोपड़ियां और कुछ ऊंचे-ऊंचे पेड़ जिनके नीचे मैं खेलता था। गांव में कोई स्कूल नहीं था - यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि लगभग नौ वर्षों तक मैं अशिक्षित था और इन नौ वर्षों का यह समय व्यक्तित्व के निर्माण के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है।

इसके बाद तो यदि तुम कोशिश भी करो तो शिक्षित नहीं हो सकते। एक प्रकार से मैं अभी भी अशिक्षित हूं। डिग्रियां तो मेरे पास बहुत हैं, कोई भी अशिक्षित व्यक्ति इनको पा सकता है। मेरे पास ऐसी-वैसी नहीं, एम. ए. की प्रथम श्रेणी की डिग्री है जो कोई भी बेवकूफ प्राप्त कर सकता है। इसका कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि प्रतिवर्ष हजारों बेवकूफ इसे प्राप्त करते हैं। महत्त्वपूर्ण बात केवल यह है कि अपने आरंभिक वर्षों में मुझे कोई शिक्षा नहीं मिली। उस गांव में कोई स्कूल नहीं था, सड़कें नहीं थी, कोई डाकखाना नहीं था और न कोई रेल्वे स्टेशन था। यही तो सौभाग्य था। वह छोटा सा गांव अपने आप में एक छोटा सा संसार था। उस गांव से दूर होने पर भी मैं उसी दुनिया में रहा - अशिक्षित रहा।

मैंने रस्किन की वह प्रसिद्ध पुस्तक पढ़ी है-अनटु दिस लास्ट। जब मैं उस पुस्तक को पढ़ रहा था तो मैं उस गांव के बारे में सोच रहा था। 'अनटु दिस लास्ट'... वह गांव अभी भी नहीं बदला - कोई सड़क नहीं है, कोई रेलगाड़ी नहीं है। आज पचास साल बाद भी वहां पर कोई डाकखाना नहीं है, पुलिस थाना भी नहीं है। डॉक्टर भी नहीं है। सच तो यह है कि वहां कोई बीमार भी नहीं पड़ता। वहां का पर्यावरण शुद्ध है - उसमें कोई प्रदूषण ही नहीं है। मैं उस गांव के ऐसे लोगों को जानता हूं जिन्होंने कभी रेलगाड़ी को नहीं देखा और जो कल्पना भी नहीं कर सकते कि वह कैसी होगी! उन्होंने न कभी बस को देखा है न कार को। वे उस गांव से बाहर कभी नहीं गए। किंतु वे चुपचाप बड़े आनंद में जीते हैं। मेरा जन्म स्थान, कुचवाड़ा एक ऐसा गांव था - जहां पर कोई डाकखाना नहीं था, कोई रेल की पटरी नहीं थी। वहां पर छोटी-छोटी पहाड़ियों जैसे टीले थे, सुंदर झील थी और पूफस की कुछ झोपड़ियां थीं। ईंटों से बना पक्का मकान एक

ही था जिसमें मैंने जन्म लिया था। वह एक छोटा सा मकान और उस गांव से अधिक तो वहां के लोग मुझे याद हैं। मैं न जाने कितने लोगों से मिल चुका हूं किंतु उस गांव जैसे सरल लोग और कहीं नहीं हैं। क्योंकि वे आदिम लोग थे। उनको दुनिया के बारे में कुछ भी पता नहीं था। उस गांव में एक भी समाचार-पत्र ने प्रवेश नहीं किया था। वहां पर प्राइमरी स्कूल तक नहीं था। सचमुच यह सौभाग्य था। क्या कोई आधुनिक बच्चा ऐसे रह सकता है?

उन वर्षों में मैं अशिक्षित ही रहा और वह बहुत सुंदर समय था। हां! मुझे यह मानना पड़ेगा कि मुझे पढ़ाने के लिए एक शिक्षक रखा गया था और वह शिक्षक स्वयं अशिक्षित था। वह मुझे क्या पढ़ाता? मुझे पढ़ाने के बहाने वह खुद पढ़ रहा था। शायद उसने यह कहावत सुन रखी थी कि ‘अगर सिखाना हो तो सीखो।’ लेकिन वह बहुत अच्छा आदमी था, दूसरे चिड़चिड़े शिक्षकों जैसा नहीं था। स्कूल मास्टर बनने के लिए चिड़चिड़ा होना बहुत जरूरी है। सारी दुनिया का यही तरीका है। और मै यह स्वीकार करता हूं कि मैं कभी-कभी उसको मारता

भी था। लेकिन वह बेचारा मुझे वापस नहीं मार सकता था। वह तो मक्खन की तरह नरम था- वह केवल हंस देता और कहता ‘तुम तो बच्चे हो, तुम मुझे मार सकते हो। मैं बूढ़ा आदमी हूं, मैं तुम्हें मार नहीं सकता। जब तुम बड़े हो जाओगे तब तुम्हारी समझ में आएगा।’ हां! अब मेरी समझ में आता है। वह बहुत अच्छा देहाती था और उसकी समझ बहुत अच्छी थी। कभी-कभी देहातियों की समझ सभ्य लोगों से कहीं अधिक होती है।

अभी-अभी मुझे याद आया... एक सुंदर स्त्री समुद्रतल पर आती है। वहां पर किसी को न देखकर उसने कपड़े उतार दिए। जैसे ही वह समुद्र के भीतर प्रवेश करनी लगी, एक बूढे़ आदमी ने उसे पकड़ लिया और कहा कि ‘मैं इस गांव का पुलिसमैन हूं, इस तट से समुद्र में तैरने की मनाही है।’

उस स्त्री ने पूछा, ‘तो तुमने मुझे कपड़े उतारने से क्यों नहीं रोका?’ बूढ़े आदमी ने हंसकर कहा, ‘कपड़े उतारना तो मना नहीं है। इसीलिए मैं पेड़ के पीछे छिपा इंतजार कर रहा था।’

कितना प्यारा देहाती था! उस गांव में इसी प्रकार के लोग रहते थे। सीधे-सादे, सरल लोग। गांव के चारों ओर पहाड़ियां थीं और एक छोटा सा तालाब था।

... उस तालाब का वर्णन बाशो के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। वह भी तालाब का वर्णन नहीं कर सकता। वह भी तालाब का वर्णन नहीं करता, केवल कहता है-

‘प्राचीन तालाब

मेढ़क उसमें कूदता है

छपाक!’

यह कैसा वर्णन है! मेढक और तालाब को केवल उल्लेख किया गया है। तालाब और मेढ़क का कोई वर्णन नहीं है और... छपाक!’

तो गांव में एक बहुत पुराना तालाब था और उसके चारों ओर बहुत प्राचीन वृक्ष लगे हुए थे- शायद वे सैकड़ों वर्ष पुराने थे और चारों ओर बड़ी सुंदर चट्टाने थीं। दिन-रात छपाक की वह आवाज सुनाई देती थी। यह आवाज वहां की नीरवता को और भी अधिक बढ़ा देती थी और उसे अर्थपूर्ण बना देती थी, बासो की यही विशेषता है। बिना वर्णन किए वह बहुत कुछ वर्णन कर देता है। ‘छपाक’ यह भी कोई शब्द है? उस पुराने तालाब में मेढक के कूदने की आवाज का वर्णन कोई भी शब्द नहीं कर सकता परंतु बाशो ने बहुत अच्छा वर्णन किया है।

किंतु मैं बाशो नहीं हूं। उस गांव को बाशो की जरूरत थी। शायद वह सुंदर चित्र, और हाइकु बनाता। तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि उस गांव के लिए मैंने कुछ भी नहीं किया, आप पूछेंगे कि ऐसा क्यों? मैं वहां दोबारा गया ही नहीं। एक बार काफी है। मैं किसी भी जगह दोबारा नहीं जाता। मेरे लिए नंबर दो है ही नहीं। मैंने बहुत से गांव और बहुत से शहर छोड़े हैं किंतु फिर कभी वहां वापस नहीं गया। एक बार छोड़ा तो सदा के लिए छोड़ दिया, मेरा तो यही ढंग है। तो मैं उस गांव में वापस नहीं गया, गांव वालों ने कई बार संदेशे भेजे कि एक बार तो आओ... किंतु मैंने संदेशवाहक के द्वारा यही उत्तर भेजा कि दोबारा मैं कहीं जाता नहीं।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (2)

सब लोग अपने सुनहरे बचपन की बात करते हैं, किन्तु शायद ही कभी यह सच होता है। अधिकतर तो यह बात झूठ ही होती है। लेकिन जब इतने लोग एक ही झूठ बोल रहे हों तो पता ही नहीं चलता कि यह झूठ है। कवि भी अपने सुनहरे बचपन के गीत गाते रहते हैं- जैसे ‘वर्डस्वर्थ’। लेकिन वास्तव में शायद ही कभी बचपन सुनहरा होता है। किसे मिलता है यह सुनहरा बचपन?

इसके लिए पहले तो अपना जन्म चुनना पड़ता है जोकि असंभव है। जब तक कोई ध्यान कि स्थिति में न मरे तब तक वह अपने जन्म का चुनाव नहीं कर सकता। यह चुनाव तो केवल ध्यानी ही कर सकता है। क्योंकि वह होशपूर्वक मरता है इसलिए उसे होशपूर्वक जन्म लेने का अधिकार मिलता है।

मैं पिछले जन्म में होशपूर्वक मरा था। वास्तव में मैं मरा नहीं था, मारा गया था। मैं तीन दिन के बाद मरने वाला था किंतु वे लोग तीन दिन का भी इंतजार न कर सके। लोग सदा जल्दबाजी में होते हैं।

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस आदमी ने मुझे मारा था वह अब मेरा संन्यासी है। वह फिर मुझे मारने आया था, संन्यास लेने नहीं! संन्यास लेने के सात साल बाद उसने स्वयं स्वीकार किया कि ‘अब मैं बिना किसी भय के आपके सामने यह स्वीकार करता हूं कि अहमदाबाद में मैं आपको मारने आया था।’ मैंने कहा, ‘हे परमात्मा! फिर? दोबारा?’ उसने कहा- ‘दोबारा से आपका क्या मतलब है?’

मैंने कहा- ‘छोड़ो उस बात को। वह दूसरी बात है। किंतु तुम कहते जाओ... ।’ उसने कहा- ‘सात साल पहले अहमदाबाद में मैं आपकी मीटिंग में पिस्तौल लेकर आया था।’ हॉल में लोगों की इतनी भीड़ थी कि संयोजकों ने लोगों को मंच पर बैठने की अनुमति दे दी और इस आदमी को जो मुझे पिस्तौल से मारने आया था, मंच पर, मेरी ही बगल में बैठने दिया गया। ‘कितना अच्छा अवसर था चूक कैसे गए?’ मैंने कहा। ‘तुम इस अवसर को चूक कैसे गए,’ इस पर उसने कहा कि, ‘मैंने आपको इससे पहले कभी नहीं सुना था। आपके बारे में सुना तो था। अब जब मैंने आपको सुना तो मैंने सोचा कि आपको मारने के बजाय मुझे आत्महत्या कर लेनी चाहिए, इसलिए मैंने संन्यास लिया। यही मेरी आत्महत्या है।’

सात सौ साल पहले इसी आदमी ने मेरी हत्या की थी, इसने मुझे विष दिया था। उस समय भी यह मेरा शिष्य था... । परंतु जुदास के बिना जीसस का होना मुश्किल है। मैं होशपूर्वक मरा। इसलिए मुझे होशपूर्वक जन्म लेने का अवसर मिला। मैंने अपने माता- पिता को चुना।

इस पृथ्वी पर हजारों मूर्ख प्रतिक्षण संभोग कर रहे हैं और लाखों अजन्मी आत्माएं किसी भी गर्भ में प्रवेश करने को तैयार हैं। मैंने वो उपयुक्त क्षण की प्रतीक्षा में सात सौ साल इंतजार किया और वह क्षण मुझे मिल गया। इसके लिए मुझे अस्तित्व को धन्यवाद देना चाहिए। लाखों वर्षों की तुलना में सात सौ साल कुछ नहीं हैं। केवल सात सौ साल- हां केवल सात सौ साल।

मैंने एक गरीब किंतु बहुत-ही अंतरंग दंपति को चुना। मेरे पिता के हृदय में मेरी मां के लिए इतना प्रेम था कि कभी उन्होंने किसी स्त्री को उस दृष्टि से नहीं देखा। इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती- मैं, जो कि अनेक प्रकार की कल्पनाएं करता हूं, यह कल्पना नहीं कर सकता कि मेरी मां ने स्वप्न में भी किसी और पुरुष के बारे में सोचा हो- यह असंभव है। मैं दोनों को जानता था- वे इतने घनिष्ठ, एक-दूसरे के प्रति इतने प्रेमपूर्ण, इतने संतुष्ट, इतने परिपूर्ण थे कि वे गरीबी में भी वे बहुत प्रसन्न थे। परस्पर प्रेम के कारण ही वे गरीबी में इतने समृद्ध थे। मैंने अपने माता-पिता को कभी भी आपस में झगड़ते नहीं देखा। सच तो यह है कि ऐसा शायद ही कोई दंपति होगा जो झगड़ा नहीं करता होगा। परमात्मा ही जाने ऐसे लोग प्रेम कब करते हैं!

मैंने अपने माता-पिता को आपस में झगड़ते या एक-दूसरे पर झुंझलाते कभी नहीं देखा। लोग चमत्कारों की चर्चा करते हैं। मैंने तो एक ही चमत्कार देखा है कि मेरी मां मेरे पिता पर कभी नहीं झुंझलाई, न कभी उनकी नुक्ताचीनी की। यह चमत्कार ही है क्योंकि शताब्दियों से पुरुष ने स्त्री को इतना दबाकर रखा है कि वह झुंझला कर, नुक्ताचीनी करके अपना बदला ले लेती है। नुक्ताचीनी वास्तव में छुपी हुई हिंसा है।

मैंने अपने माता-पिता को कभी भी झगड़ते नहीं देखा, जब मेरे पिता की मृत्यु हुई तो मुझे मेरी मां की बहुत चिंता हुई क्योंकि पिता के बिना उनका जीवित रहना मुश्किल था। उन दोनों का एक-दूसरे से इतना प्रेम था कि वे दो नहीं ‘एक’ ही हो गए थे। किंतु मां का मुझसे भी बहुत प्रेम था। इसिलए बच गईं।

मुझे तो सदा मां की चिंता रही है। मैं उन्हें अपने पास ही रखना चाहता था ताकि मृत्यु के समय वे परिपूर्णता का, पूर्ण तृप्ति का अनुभव करें। अब मैं जानता हूं, मैंने उनके भीतर देखा है और मैं तुमसे कहता हूं- और तुम्हारे द्वारा एक दिन सारे संसार को मालूम होगा- कि वे समाधि को प्राप्त हो गई हैं। मैं उनका अंतिम लगाव था। किंतु अब उनके लिए लगाव ही नहीं रह गया। उनको संबोधि मिल गई है। वे अशिक्षित और सरल महिला हैं, उनको तो यह भी नहीं मालूम कि संबोधि क्या होती है। यही तो खास बात है- वही तो सौंदर्य है। कोई भी समाधिस्थ हो सकता है बिना यह जाने कि समाधि क्या है। और यह भी हो सकता है कि तुम्हें समाधि के बारे में सारी जानकारी होते हुए भी तुम समाधि को उपलब्ध न हो सको।

मैंने इस दंपति को चुना जो सीधे-सादे सरल देहाती थे। मैं राजा और रानियों को भी चुन सकता था- यह मेरे हाथ में था- सब प्रकार के गर्भ मुझे उपलब्ध थे। किंतु मैं भी बहुत ही सरल और सादी रुचि का व्यक्ति हूं- मुझे सबसे बढ़िया से ही संतोष होता है। यह दंपति गरीब थे।

मेरे पिता के पास केवल सात सौ रुपये थे। बस यह उनकी संपति थी। फिर भी मैंने उनको अपना पिता चुना। उनकी जो संपन्नता थी उसे आंखें नहीं देख सकती; उनका अभिजात्य दिखाई नहीं देता था।

तुममें से बहुत लोगों ने उन्हें देखा है। तुमने देखा होगा कि वे कितने प्यारे व्यक्ति थे। वे इतने सीधे और सरल थे कि उन्हें देहाती कहा जा सकता है।

परंतु वे बहुत समृद्ध थे- सांसारिक अर्थ में नहीं, दूसरे अर्थों में। उनकी पूंजी केवल सात सौ रुपये ही थी। मुझे तो इसका पता भी न था। मुझे तो तब पता चला जब उनके व्यापार का दिवाला निकल रहा था। और वे बहुत प्रसन्न थे। मैंने उनसे पूछा ‘दादा!,’ मैं उन्हें दादा कहता था। दादा का अर्थ है ‘पिता’ मैंने कहा ‘दादा! आप तो जल्दी ही दिवालिया बनने वाले हैं और आप इतने खुश हैं? क्या ये अफवायें गलत हैं?’ उन्होंने उत्तर दिया, ‘नहीं! ये अफवायें बिल्कुल ठीक हैं। दिवाला निकलेगा ही। लेकिन मैं खुश हूं क्योंकि मेरे पास सात सौ रुपये बचाकर रखे हैं। इसी पूंजी से मैंने काम शुरु किया था और मैं तुम्हें यह जगह दिखा देना चाहता हूं जहां मैंने उन रुपयों को रखा है।’ तब उन्होंने वह जगह मुझे दिखाई जहां पर सात रुपये रखे थे। और उन्होंने कहा, ‘चिंता की कोई बात नहीं है। मैने सात सौ रुपये से धंधा शुरु किया था। इससे अधिक हमारा है ही नहीं। इसलिए बाकी सब जाता है तो जाए। जो हमारा है वह यहां छिपा हुआ है। यह मैं तुम्हें इसलिए बता रहा हूं क्योंकि तुम मेरे सबसे बड़े बेटे हो। इस जगह को याद रखना।’ सो इसके बारे में मैं जानता हूं। उस जगह के बारे में मैने कभी किसी को बताया नहीं है और बताऊंगा भी नहीं। अपनी उदारता के कारण उन्होंने अपना रहस्य मुझे बता दिया। किंतु न मैं उनका बेटा हूं न वे मेरे पिता, वे वे हैं और मैं मैं हूं- पिता और बेटा तो मात्र शिष्टाचार है। वे सात सौ रुपये जमीन में कहीं गड़े हुए हैं और वे वहीं रहेंगे जब तक कि संयोगवश कोई उन्हें पा न ले। मैंने उनसे यही कहा था कि ‘आपने मुझे इस जगह को दिखा दिया है लेकिन मैंने तो इसे देखा ही नहीं।’ उन्होंने पूछा, ‘क्या मतलब है तुम्हारा?’ मैंने कहा- ‘बात सीधी साफ है। मैंने इसे नहीं देखा और मैं इसे देखना भी नहीं चाहता क्योंकि मैं किसी भी विरासत में विश्वास नहीं करता। अमीर या गरीब, मैं किसी भी वंश-परंपरा का नहीं हूं।’ परंतु उनकी ओर से मैं कह सकता हूं कि वे बहुत ही प्यार करने वाले पिता थे। जहां तक मेरा सवाल है- मैं प्यारा बेटा नहीं था। वे बहुत ही प्यारे थे। जब मैंने विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़ी तो केवल वे ही इसके बारे में चिंतित थे। मेरे किसी मित्र को इसकी चिंता नहीं हुई। केवल मेरे पिता को चिंता हुई। सो उनसे मैंने कहा कि चिंता की कोई बात नहीं है। लेकिन मेरे इन शब्दों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने बिना मुझे बताए एक बड़ी जायदाद खरीद ली क्योंकि उन्हें मालूम था कि यदि वे मुझे पहले बता देते तो मैं उनसे बहुत नाराज हो जाता।

उन्होंने मेरे लिए एक छोटा सा, सुंदर मकान बनाया- ठीक ऐसा जैसा मुझे पसंद आता। उसमें आधुनिक सब सुविधाएं थी- यहां तक कि वह वातानुकूलित भी था। वह मेरे गांव के पास ही था। उसमें बगीचा था, जो नदी के किनारे था। नदी में उतरने के लिए सीढ़ियां बनी हुई थीं ताकि मैं उसमें तैर सकूं। पुराने वृक्ष लगे हुए थे। मीलों तक दूसरा कोई नहीं था और नीरवता व शांति थी। लेकिन पिता ने मुझे बताया नहीं।

अच्छा हुआ वे नहीं रहे, नहीं तो मैं उन्हें बहुत परेशान करता। किंतु उनके हृदय में इस आवारा बेटे के लिए असीम प्रेम था। मैं तो हमेशा आवारा ही रहा हूं। मैंने अपने परिवार के लिए कभी कुछ नहीं किया। किसी भी प्रकार से वे मेरे आभारी नहीं हैं। उन्होंने मेरे लिए सब कुछ किया। मैंने इस दंपति का चुनाव किसी विशेष कारण से ही किया था- उनके प्रेम, उनकी घनिष्ठता, उनकी अंतरंगता के कारण; वे दो होते हुए भी एक ही थे। इसलिए सात सौ वर्ष बाद मैंने पुनः शरीर में प्रवेश किया।

मेरा बचपन सचमुच सुनहरा था। बहुत लोग कहते हैं कि उनका बचपन सुनहरा था लेकिन वास्वत में ऐसा था नहीं। लोगों को अपना बचपन इसलिए सुनहरा लगता है क्योंकि उनकी जवानी खराब होती है और उनका बुढ़ापा तो और भी अधिक खराब होता है। ऐसी अवस्था में बचपन तो सुनहरा प्रतीत होगा ही। मैं उस अर्थ में नहीं कहता कि मेरा बचपन सुनहरा था। मेरी जवानी तो हीरे जैसी थी और अगर मै बुढ़ापे तक जीवित रहा तो मेरा बुढ़ापा

प्लेटिनम होगा। निश्चित ही मेरा बचपन सुनहरा था। मैं काव्यात्मक भाषा में नहीं बोल रहा, न किसी प्रतीक का प्रयोग कर रहा हूं- वास्तविक अर्थ में सुनहरा था।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (3)

अपने आरंभिक वर्षो में मैं अधिकतर अपने नाना-नानी के साथ रहा। उन वर्षों को मैं भूल नहीं सकता। अगर मैं स्वर्ग में भी चला जाऊं तो भी उन वर्षों को याद रखूंगा। एक छोटा सा गांव-गरीब लोग। मेरे नाना बहुत बड़े दिल के आदमी थे। अत्यंत उदार। वैसे तो गरीब ही थे किंतु उदारता में वह बहुत अमीर थे। उनके पास जो भी था उसमें से उन्होंने सबको कुछ न कुछ अवश्य दिया। मैंने भी देने की कला उन्हीं से सीखी। इतना तो मुझे स्वीकार करना ही पडे़गा। मैंने उन्हें कभी किसी भिखारी को या किसी और को भी ‘ना’ कहते नहीं सुना। मैं उन्हें ‘नाना’ और ‘नानी’ ही कहता था। मैं अपने नाना से पूछता, ‘नाना’! आपको इतनी सुंदर पत्नी कहां से मिली!

मेरी नानी भारतीय कम, यूनानी अधिक दिखाई देती थी। मैं जब मुक्ता (मा मुक्ता ग्रीक की है) को हंसते हुए देखता हूं तो मुझे अपनी नानी की याद आ जाती है। इसीलिए मेरे हृदय में मुक्ता के लिए विशेष स्थान है। मैं उसे कभी ‘ना’ नहीं कह सकता। यदि वह कुछ अनुचित भी मांगे तो भी इनकार नहीं कर सकता। जैसे ही मैं मुक्ता को देखता हूं वैसे ही मुझे नानी की याद आ जाती है। शायद मेरी नानी में कोई यूनानी खून था!

कोई भी जाति बिल्कुल शुद्ध तो होती नहीं। विशेषतः भारतीय तो शुद्ध खून का दावा कर ही नहीं सकते। भारत पर हूणों ने, मुगलों ने, यूनानियों और दूसरी जातियों ने कई बार आक्रमण किया। ये सब जातियां भारतियों में घुल-मिल गई।

मेरी नानी के नैन नक्श भारतीय नहीं थे; वह यूनानी दिखाई देती थी। वह बहुत ही तगड़ी स्त्री थी- बहुत मजबूत। मेरे नाना अभी पचास वर्ष के भी नहीं हुए थे कि मर गये किंतु मेरी नानी अस्सी साल तक जीवित रहीं और तब तक वे पूर्णतः स्वस्थ थीं। तब भी किसी ने यह नहीं सोचा कि वे मर जाएंगी। मैंने उससे वायदा किया था कि जब वे मरेगीं तो मैं आऊंगा और परिवार में जाने का वह अंतिम बार होगा। नानी की मृत्यु 1970 में हुई। मुझे अपना वायदा निभाना पड़ा।

अपने आरंभिक वर्षों में मैं नानी को ही अपनी मां समझता था। यह बचपन का वह समय था जब बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होता है। उस समय मैं नानी के पास था। मेरी मां उसके बाद आई। तब तक मैं बड़ा हो चुका था और एक खास ढंग में ढल चुका था मेरी नानी ने मेरे बड़़े होने में मेरी बड़ी सहायता की। मेरे नाना भी मुझसे बहुत प्रेम करते थे किंतु वे मेरी अधिक सहायता न कर सके। सहायता करने के लिए कुछ और भी चाहिए- साहस चाहिए, आतंरिक शक्ति चाहिए। नाना तो नानी से डरते थे। मैं तो सदा सच ही बोलता हूं। इसलिए बिना किसी

झिझक के मैं यह कहता हूं कि वे जोरू के गुलाम थे। वे मुझसे बहुत प्रेम करते थे। हां! अगर वे जोरू के गुलाम थे तो मैं क्या कर सकता हूं। ऐसा तो होता ही है- निन्यानबे प्रतिशत पुरुष जोरू के गुलाम होते ही हैं! सो ठीक है।

मुझे एक घटना याद आ रही है जिसके बारे में मैंने इससे पहले किसी को कुछ नहीं बताया। एक अंधेरी रात को जब बारिश हो रही थी तो एक चोर घर में घुस आया। मेरे नाना तो डर गए। सब लोगों ने देखा कि वे डर गए हैं लेकिन वे पूरी कोशिश कर रहे थे यह

दिखाने की कि वे भयभीत नहीं हैं। वह चोर हमारे छोटे से घर के एक कोने में शक्कर की बोरियों के पीछे छुपा हुआ था। मेरे नाना हमेशा पान खाते रहते थे। वे पान खाते जाते और कोने में छिपे हुए चोर पर थूकते जा रहे थे। उन दिनों मैं अपनी नानी के साथ सोता था। मैंने नाना को थूकते हुए देखा और नानी से कहा कि ‘माना कि यह चोर है फिर भी इस तरह से उस पर थूकना नहीं चाहिए। या तो उससे लड़ो या थूकना बंद करो।’ मेरी नानी ने मुझसे पूछा ‘तुम क्या करना पसंद करोगे?’ उस समय मैं नौ वर्ष का भी नहीं था। मैने कहा- ‘मैं उसे थप्पड़ मारकर बाहर पेंफक दूंगा।’ इस पर मेरी नानी हंसी और उसने कहा- ‘अच्छा! मैं तुम्हारे साथ आती हूं। तुम्हें मेरी सहायता की जरूरत पड़ सकती है।’

वे बहुत ऊंची महिला थीं, मेरी मां का शारीरिक सौंदर्य नानी

जैसा नहीं है और उन जैसा आंतरिक साहस भी नहीं है। मेरी मां तो

सीधी-सादी है किंतु मेरी नानी साहसिक थीं। वे मेरे साथ आई। मैं तो हैरान हो गया जब मैंने देखा कि यह चोर तो मुझे पढ़ाने वाला मास्टर था। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह मेरा मास्टर है। इसलिए मैंने जोर से उसे मारा। मैंने उससे कहा, ‘अगर तुम केवल चोर होते तो मैं तुम्हें क्षमा कर देता लेकिन तुम तो दिन में मुझे बड़ी-बड़ी बातें पढ़ाते रहे हो और रात को तुम ऐसी हरकतें करते हो! अब जितनी जल्दी हो सके यहां से भाग जाओ नहीं तो नानी तुम्हें पकड़कर तुम्हारी अच्छी

धुनाई करेगी। ‘नानी तो बहुत ऊंची, तगड़ी और सुंदर थी। मेरे नाना ने नानी से कभी झगड़ा नहीं किया- कर ही नहीं सकते थे। इसलिए कभी कोई समस्या खड़ी नहीं हुई।

मुझे वह मास्टर आज भी याद है। वह गांव का पंडित था जो मुझे कभी-कभी पढ़ाने आता था। वह गांव के मंदिर का पुजारी भी था। उसने कहा, ‘तुम्हारे नाना मुझ पर थूकते रहे हैं। क्या हालत हो गई है मेरे कपड़ों की! सब खराब हो गए हैं। ‘मेरी नानी ने हंस कर बोला, ‘अच्छा! कल आ जाना। मैं तुम्हें नए कपड़े दे दूंगी।’ और उन्होंने उसे सचमुच नए कपड़े दे दिए। वह तो नहीं आया- आने की उसकी हिम्मत ही नहीं हुई। लेकिन नानी उस चोर के घर गई, मुझे भी अपने साथ ले गईं। उसे नए कपड़े देते हुए कहा, ‘मेरे पति को तुम्हारे कपड़े खराब नहीं करने चाहिए थे। लेकिन तुम्हें जब भी नए कपड़ों की जरूरत हो तो मेरे पास आ जाना।’

वह मास्टर दोबारा नहीं आया मुझे पढ़ाने। उसे आने के लिए किसी ने मना नहीं किया लेकिन उसे आने का साहस ही नहीं हुआ। उसके बाद वह मुझे पढ़ाने नहीं आता था और न उस गली में से जाता था जहां पर हमारा घर था। लेकिन मैंने तो दिन में एक बार उसके घर जाने का नियम बना लिया था- उसे याद दिलाने के लिए उसके घर के सामने जाकर मैं थूकता और चिल्लाकर कहता, ‘क्या उस रात को भूल गए हो? और तुम मुझे ईमानदार होने, सच बोलने के उपदेश देते थे।’ अभी भी मुझे दिखाई देता है कि वह आंखें नीची किए खड़ा है और कोई उत्तर नहीं दे रहा है।

मेरे नाना चाहते थे कि भारत के बड़े से बड़े ज्योतिषी मेरी जन्मपत्रि बनाएं वे बहुत अमीर नहीं थे किंतु उस गांव में वे सबसे अमीर थे। मेरी जन्मपत्रि के लिए वे कुछ भी देने को तैयार थे। वे स्वयं वाराणसी गए और वहां के प्रसिद्ध ज्योतिषियों से मिले। मेरे दादा द्वारा दी गई मेरी जन्मतिथि और जन्म स्थान आदि को देखकर सबसे बड़े ज्योतिषी ने कहा, ‘मैं इसकी जन्मकुंडली केवल सात साल तक ही बना सकता

हूं। अगर यह बच्चा सात साल के बाद भी जीवित रहा तो मैं

इसकी जन्मपत्रि मुफ्त में बना दूंगा लेकिन इसका बचना मुश्किल है। यदि यह बच गया तो यह एक चमत्कार होगा और तब इसके ‘बुद्ध’ बनने की संभावना है।’

मेरे नाना रोते हुए घर आए। मैंने उनकी आंखों में आंसू कभी नहीं देखे थे। मैंने उनसे पूछा, ‘क्या बात है?’ ‘मुझे तुम्हारी जन्मपत्रि बनाने के लिए तब तक इंतजार करना पड़ेगा जब तक तुम सात साल के न हो जाओ।’ मैंने कहा, ‘तो इसमें चिंता की क्या बात है?’ उन्होंने उत्तर दिया, ‘चिंता इस बात की नहीं है कि तुम मर जाओगे। चिंता इस बात की है कि तुम कहीं ‘बुद्ध’ न बन जाओ।’ इस पर मैं हंसा और वे भी आंसुओं के साथ हंसे और उन्होंने कहा- ‘हां! इसमें चिंता की क्या बात है? बुद्ध बनने में क्या बुराई है?’ जब मेरे पिता को मालूम हुआ कि ज्योतिषियों ने मेरे बारे में मेरे नाना को क्या बताया है तो वे स्वयं मुझे वाराणसी ले गए- किंतु उनकी चर्चा बाद में करेंगे।

जब मैं सात साल का था तो एक ज्योतिषी मुझे खोजते हुए मेरे नाना के गांव आया। जब एक शानदार घोड़ा मेरे घर के सामने रुका तो हम सब बाहर निकले। घोड़ा बहुत सुंदर था और उसका सवार वही प्रसिद्ध ज्योतिषी था जिसे मैं मिल चुका था। उसने मुझे देखकर कहा, ‘तुम अभी जीवित हो? मैंने तुम्हारी जन्मकुंडली बनाई है। लेकिन मैं डर रहा था क्योंकि तुम्हारे जैसे लोग अधिक समय तक जीवित नहीं रहते।’

मेरे नाना ने घर के सब जेवर बेचकर आसपास के गांवों को भोज दिया- उन्होंने मेरे ‘बुद्ध’ बन जाने की संभावना का उत्सव मनाया। परंतु उनको तो शायद ‘बुद्ध’ का अर्थ भी मालूम नहीं था वे तो जैन थे इसलिए उन्होंने तो इससे पहले कभी इस शब्द को सुना भी न होगा। लेकिन वे बहुत खुश थे और खुशी से नाच रहे थे कि मैं ‘बुद्ध’ बनूंगा। मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा था कि ‘बुद्ध’ शब्द से वे इतने प्रसन्न हो जाएंगे। जब सब लोग चले गए तो मैंने उनसे पूछा कि ‘बुद्ध’ का अर्थ क्या है?’ उन्होंने कहा, मुझे मालूम नहीं। सुनने से अच्छा लगता है। और मैं तो जैन हूं। किसी बौद्ध से पूछ लेंगे।’

छोटे से गांव में तो कोई बौद्ध न था। लेकिन नाना ने कहा, ‘जब कभी कोई बौद्ध भिक्षु इस गांव से गुजरेगा तो उससे पूछ लेंगे।’ परंतु वे बहुत प्रसन्न हो गए जब ज्योतिषी ने कहा कि मैं ‘बुद्ध’ बनूंगा। फिर उन्होंने अनुमान लगाते हुए कहा, ‘शायद ‘बुद्ध’ का अर्थ बुद्धिमान होता है। बुद्धि का अर्थ अक्ल होता है और इसलिए बुद्ध का अर्थ अक्लमंद होना चाहिए।’ वे सचमुच ‘बुद्ध’ के अर्थ के करीब पहुंच गए। मुझे अफसोस है कि अब वे जीवित नहीं हैं, नहीं तो उन्हें मालूम हो जाता कि बुद्ध होने का क्या अर्थ है। शब्द कोश द्वारा नहीं- जीवित जाग्रत व्यक्ति के साक्षात्कार से। उनका नाती बुद्ध हो गया है- इस खुशी में मैं उन्हें नाचते हुए देख सकता हूं। इसी से वे समाधिस्थ हो जाते, उनके समाधिस्थ होने के लिए यही पर्याप्त था। किंतु उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु मेरे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुभव था। उसके बारे में बाद में बात करेंगे।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (4)

वह बूढ़ा ज्योतिषी मेरे गांव आया। मेरे नाना को अपनी आंखों पर सहसा विश्वास न हुआ। वह ज्योतिषी इतना प्रसिद्ध था कि अगर वह किसी राजा के महल में भी जाता तो वह राजा भी आश्चर्यचकित होता। और वह मेरे नाना के घर आया। वह घर जो कच्ची दीवारों से बना था- वहां अलग गुसलखाना भी नहीं था। वह हमारे यहां आया और मैं

तुरंत उसका मित्र बन गया। उस समय मैं केवल सात साल का था और कुछ भी नहीं पढ़ सकता था परंतु मैंने उस बूढ़े की आंखों में देखा और उन्हें पढ़ा।

मैंने उस ज्योतिषी से कहा, ‘बड़ी अजीब बात है कि आप इतनी दूर से केवल मेरी जन्मकुंडली बनाने आए हैं? उन दिनों, और आज भी वाराणसी उस गांव से बहुत दूर है। उस बूढ़े ज्योतिषी ने कहा- ‘मैंने वायदा किया था और वायदे को तो पूरा करना ही पड़ता है।’ उसने जिस ढंग से कहा कि ‘वायदे को पूरा करना पड़ता है,’ वह मुझे रोमांचित कर गया। तो यह जिंदा आदमी है। मैंने उससे कहा- ‘यदि तुम यहां पर वायदा पूरा करने आए हो तो मैं तुम्हारे बारे में भविष्यवाणी कर सकता हूं।’ यह सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह बोला, ‘तुम और मेरे भविष्य बता सकते हो?’ मैंने उत्तर दिया ‘हां! तुम बुद्ध तो नहीं बनोगे लेकिन तुम भिक्षु अवश्य बनोगे।’ वह हंसा और उसने कहा कि यह असंभव है। मैंने कहा, शर्त लगा लो।’ उसने कहा, ‘अच्छा ठीक है। कितने की शर्त लगाएं?’ मैंने कहा कि, ‘तुम जितनी चाहो उतनी राशि की शर्त लगा लो। यदि मैं जीता तो उसे जीत ही लूंगा किंतु यदि मैं हारा तो कुछ भी नहीं हारूंगा क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं है। आप तो सात साल के बच्चे से शर्त लगा रहे हैं। आप देख रहे हैं कि मेरे पास कुछ भी नहीं है।’ तुम्हें यह जानकर अचरज होगा कि मैं वहां पर बिल्कुल नंगा खड़ा था। उस गांव में सात साल के बच्चे आराम से नंगे घूम सकते थे। इसको कोई बुरा नहीं मानता था। वह कोई इंग्लैड का गांव नहीं था।

मैं अभी भी अपने आप को वहां उस ज्योतिषी के सामने नंगा खड़े देख सकता हूं सारा गांव इकट्ठा हो गया था और वे लोग हम दोनों की बातचीत को ध्यान से सुन रहे थे। उस बूढ़े ज्योतिषी ने कहा ‘अच्छा! यदि मैं भिक्षु बन जाऊंगा तो मैं अपने यह हीरे-जड़ी सोने की पाकेट घड़ी तुम्हें दे दूंगा- किंतु यदि तुम हारोगे तो तुम मुझे क्या दोगे?’

मैंने कहा- ‘मैं बस हार जाऊंगा। मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है- आपको देने के लिए मेरे पास सोने की घड़ी नहीं है। मैं तो केवल धन्यवाद ही दूंगा।’

वह हंस कर चला गया। मुझे ज्योतिष में कोई विश्वास नही है। यह 99.9 प्रतिशत बकवास है। किंतु एक प्रतिशत बिल्कुल सच है। कोई भी आंतरिक पवित्रता और अंतर्दृष्टि वाला व्यक्ति भविष्य को देख सकता है। भविष्य का अस्तित्व अभी भी है। किंतु हमारी आंखें उसे देख नहीं सकती। वर्तमान और भविष्य के बीच विचारों का एक झीना सा पर्दा है जो दोनों को अलग किए हुए है।

मुझे ज्योतिष में विश्वास नहीं है। अर्थात 99.9 में विश्वास नहीं है शेष एक प्रतिशत सच है। मैंने इसे सच होते देखा है। इसका पहला प्रमाण वह बूढ़ा ज्योतिषी था। परंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि वह मेरा भविष्य देख सका- धुंधला सा, अस्पष्ट सा- अनेक संभावनाओं के साथ, किंतु वह अपना भविष्य नहीं देख सका। जब मैंने उससे कहा कि तुम भिक्षु बनोगे तो वह मानने को ही तैयार न था और इस बात पर मेरे साथ शर्त लगा रहा था।

चौदह वर्ष की आयु में मैं अपने पिता के साथ वाराणसी गया था। उनको वहां पर काम था और मैंने उनके साथ जाने की जिद की थी। जब मैं वहां पर घूम रहा था तो वाराणसी और सारनाथ के बीच की सड़क पर एक भिक्षु को रोका और उससे पूछा ‘क्या आपने मुझे पहचाना?’ उसने उत्तर दिया- ‘मैंने तो तुम्हें पहले कभी नहीं देखा- फिर पहचानने का सवाल ही नहीं उठता।’ मैंने कहा- ‘आपको मेरी याद नहीं है किंतु मुझे तो आपकी याद है। बताइए वह हीरों की जड़ी सोने की घड़ी कहां है? मैं वही बच्चा हूं जिसके साथ आपने शर्त लगाई थी। मैंने घोषित किया था कि आप भिक्षु बनेंगे और अब आप बन गए हैं। अब वह घड़ी मुझे दे दीजिए।’ वह वृद्ध खूब हंसा और अपनी जेब से वह घड़ी निकाली।

उसकी आंखें आंसुओं से भरी हुई थी। उसने मेरे पैर छुए। मैंने आपत्ति करते हुए कहा, ‘नहीं! नहीं! आप भिक्षु हैं, आप मेरे पैर नहीं छू सकते।’ उसने कहा- वह सब भूल जाओ। तुम मुझसे बड़े ज्योतिषी सिद्ध हुए।’ मुझे तुम्हारे पैर छूने दो।’

मैंने वह घड़ी अपनी प्रथम संन्यासिन को दे दी थी। उस प्रथम संन्यासिन का नाम है मा आनंद मधु।

मैं उस व्यक्ति का अभारी हूं जिसने मेरे बारे में भविष्यवाणी की जब मैं केवल सात साल का था। कितना अद्भुत व्यक्ति था वह। मेरी जन्मकुंडली बनाने के लिए उसने सात साल प्रतिक्षा की। कितना धैर्य था उसमें! और यह वाराणसी से मेरे गांव आया। उस समय न सड़कें थी, न रेलगाड़ी थी। उसे घोड़े पर सवार होकर यात्रा करनी पड़ी। और जब मैं उसे सारनाथ जाने वाली सड़क पर मिला और उसने कहा कि मैं शर्त जीत गया हूं तो उसने तुरंत मुझे वह घड़ी दे दी और कहा, कि मैं तुम्हें समस्त संसार दे देता किंतु मेरे पास और कुछ नहीं है। यह घड़ी भी मेरे पास न रहती किंतु मुझे मालूम था कि एक दिन तुम अवश्य मेरे पास आओगे। जब मैं भिक्षु बना तो मेरे दिमाग में बुद्ध नहीं तुम थे- सात साल का नंगा बच्चा जो देश के सबसे बड़े ज्योतिषी के बारे में भविष्यवाणी कर रहा था! कैसे की तुमने भविष्यवाणी?’ मैंने कहा- ‘मुझे नहीं मालूम। मैंने तुम्हारी आंखों में देखा कि इस संसार की कोई भी चीज तुम्हें संतुष्ट नहीं कर सकेगी। मैंने दिव्य असंतोष देखा। जब किसी को दिव्य अंसतोष होता है तभी यह भिक्षु बनता है।’

मुझे नहीं मालूम वह वृद्ध ज्योतिषी अभी जीवित है या नहीं। वह जीवित नहीं हो सकता नहीं तो वह मेरी खोज अवश्य करता। उस समय गांव में चारों ओर इसी की चर्चा थी। अभी भी वे उस भोज की बात करते हैं। अभी-अभी एक आदमी उस गांव से आया था और कह रहा था कि, हम लोग अभी भी उस मोज की बात करते हैं जो तुम्हारे पिता ने गांव को दिया था। वैसा न पहले कभी हुआ न बाद में कभी हुआ।’ उनको खुश होते देख मैं भी खुश हो रहा था। मुझे वह सफेद घोड़ा बहुत अच्छा लगा। गुडिया को वह घोड़ा बहुत पंसद आया। सड़क पर जब घोड़े गुजरते तो वह उनको मुझे दिखाती और कहती- देखिए कितना सुंदर घोड़ा है।’ मैंने बहुत घोड़े देखे हैं किंतु कोई भी वैसा न था जैसा उस बूढ़े ज्योतिषी के पास था। मैंने सुंदर से सुंदर घोड़े देखे हैं किंतु उस ज्योतिषी के घोड़े जैसा सुंदर और कोई नहीं देखा। शायद इसका कारण मेरा बचपन था- तब उसको तुलना करने के लिए मेरे पास और कुछ न था। परंतु इस बात का विश्वास करो कि वह घोड़ा बहुत सुंंदर था। वह बहुत मजबूत घोड़ा था।

वे दिन सचमुच सुंदर थे। उन दिनों जो कुछ भी हुआ वह सब मेरी आंखों के सामने एक फिल्म के जैसा चलता है।

उन नौ सालों में जो कुछ भी हुआ मैं एक फिल्म की तरह देख सकता हूं। ये तो सुनहरे दिन थे। सुनहरे से भी अधिक सुंदर। क्योंकि मेरे नाना मुझसे प्रेम करते ही थे, मैं जो कुछ भी करता उसे भी प्यार करते। मैं बहुत शैतान था। मेरी शरारतों का कोई अंत नहीं था। मैं सदा कोई न कोई बखेड़ा खड़ा कर देता। नाना को रोज मेरे बारे में शिकायतें सुननी पड़तीं किंतु इन शिकायतों को सुनकर उन्हें बड़ा मजा आता; उनकी यह एक बड़ी विशेषता थी। वे कभी मुझसे नाराज नहीं हुए न कभी मुझे दंड दिया, न कभी मुझसे कहा कि यह करो और वह

मत करो। उन्होंने मुझे मुझ जैसा ही रहने दिया। उन्होंने मुझे पूरी छूट दे रखी थी कि मैं जो चाहे करूं अपने जैसा ही रहूं, कोई अंकुश नही था मुझ पर। इसलिए न जानते हुए भी उस समय मुझे ‘ताओ’ का स्वाद मालूम हो गया।

लाओत्से कहता है कि, ‘ताओ तो पानी का प्रवाहमार्ग है। पानी तो नीचे की ओर बहता है- जहां भी जमीन उसे जाने दे। ‘मेरे आरंभिक वर्ष ऐसे ही थे मुझे पूरी छूट दे दी गई थी। मेरा विचार है कि हर बच्चे को अपनी इच्छानुसार रहने की छूट मिलनी चाहिए तब यह दुनिया सुनहरी बन जाएगी।

उन दिनों का एक भी क्षण खाली न रहता। कभी कुछ हो रहा है तो कभी कुछ। फुरसत ही
न रहती। एक के बाद एक घटना घटती रहती। मैंने किसी को बताया ही नहीं... ।

मैं झील में तैरता था। स्वाभावतः मेरे नाना को इससे डर लगा रहता। उन्होंने मेरी सुरक्षा के लिए एक अजीब आदमी को नाव में तैनात किया। उस पुराने गांव में नाव को डोंगी कहते थे। पेड़ का खोखला तना ही डोंगी होता था। वह साधारण नाव जैसी नहीं होती, गोल होती है और इसलिए खतरा होता है, वह कभी भी लुढ़क सकती है। जब तक कोई उसको खेने मैं निपुण न हो तब तक उसको खेया नहीं जा सकता। थोड़ा-सा भी संतुलन बिगड़ने से वह उलट जाती है और उसमें बैठने वाले की जान खतरे में रहती है। इस डोंगी को खेकर ही मैंने संतुलन सीखा-मध्यमार्ग सीखा क्योंकि उसमें ठीक मध्य में बैठना होता है- जरा-सा भी इधर-उधर होने से तुम डूब जाओगे। तुम डोंगी खेने के समय सांस भी नहीं ले सकते और चुपचाप बैठना पड़ता है।

जो आदमी मेरी रक्षा के लिए तैनात किया गया था उसे मैंने ‘अजीब’ कहा है। उसका नाम ‘भूरा’ था अर्थात गोरे रंग का था। हमारे गांव में वही एक गोरा था। वह अंग्रेज नहीं था किंतु वह भारतीय दिखाई नहीं देता था। वह अंग्रेज दिखाई देता था किंतु था नहीं। शायद उसकी मां ब्रिटिश फौज की छावनी में काम करते समय वहीं गर्भवती हो गई थी। उसको सब ‘भूरा’ कहते थे, उसके असली नाम का किसी को पता ही नहीं था। भूरा उसका नाम नहीं था किंतु लोग उसको ‘भूरा’ नाम से ही जानते थे। वह अच्छे डील-डौल का आदमी था। वह बचपन से ही मेरे नाना के पास काम करता था और परिवार के सदस्य जैसा ही था।

मैंने उसे ‘अजीब’ कहा है क्योंकि यद्यपि मैंने इस दुनियां में अनेक प्रकार के लोग देखे हैं फिर भी ‘भूरा’ जैसा तो कोई नहीं मिला। वह विश्वासपात्र था। उसे कुछ भी बताया जा सकता था- वह उस बात को सदा गुप्त ही रखता। इसका पता तब चला जब मेरे नाना की मृत्यु हुई। मेरे नाना ने घर की चाबियां, घर के सब काम और जमीन भूरा को सौंपी हुई थी। जैसे ही हम लोग गाडरवाड़ा पहुंचे मेरे परिवार के लोगों ने इस स्वामीभक्त नौकर से पूछा कि चाबियां कहां हैं? भूरा ने कहा, ‘मेरे स्वामी ने मुझसे कहा था कि मेरे सिवाय कभी किसी को ये चाबियां मत देना इसलिए जब तक वे स्वयं न कहें तब तक मैं इनको नहीं दे सकता।’ और उसने चाबियां नहीं दी। न जाने उसने उनको कहां पर छुपाकर रखा। बहुत वर्षों के बाद जब मैं बम्बई में था तो भूरा के बेटे ने वे चाबियां मुझे दीं और कहा- हम लोग आपका इंतजार करते रहे किंतु कोई नहीं आया। हमने जमीन और फसल को अच्छी तरह से देखा और उसके पैसे भी अलग रखें हैं।’ मैंने उन चाबियों को उसको वापस देते हुए कहा- ‘अब सब कुछ तुम्हारा है। घर, फसल और पैंसे सब तुम्हारे हैं। मुझे मालूम नहीं था कि तुम हमारा इंतजार कर रहे हो।’ कोई भी वहां आकर पुरानी यादों के कारण दुखी नहीं होना चाहता था।

भूरा जैसे लोग कभी इस जमीन पर होते थे। धीरे-धीरे अब वे लुप्त होते जा रहे हैं। अब उनकी जगह चालाक और चंट लोगों ने ले ली है। भूरा जैसे लोग तो इस पृथ्वी का नमक थे। मैं भूरा को अजीब इसीलिए कहता हूं कि इस चालाक दुनिया में उसके जैसा सीधा आदमी अवश्य ही अजीब है। इस दुनिया के लिए तो वह अजनबी ही था।

मेरे नाना के पास बहुत जमीन थी। उन दिनों भारत के उस भाग में जमीन बिल्कुल मुफ्त में मिलती थी। इसके लिए बस राजधानी के सरकारी दफ्तर में जाकर जमीन लेने के

लिए कहना होता था और यह आपको दे दी जाती थी। हमारे पास चौदह सौ एकड़ जमीन थीं जिसको भूरा देखता था।

जब मेरे नाना बीमार पड़े तो भूरा ने कहा मैं उनके बिना जिंदा नहीं रह सकता। वे दोनों एक-दूसरे के इतने निकट आ गए थे। जब मेरे नाना मर रहे थे तो हम लोग उनको कुचवाड़ा से गाडरवाड़ा ले गए क्योंकि कुचवाड़ा में उनका इलाज करने की कोई सुविधा नही थी। मेरे नाना का मकान ही एकमात्र मकान था उस गांव में। जब हम गांव से चले तो भूरा ने चाबियां अपने बेटे को दी थीं। गाडरवाड़ा जाते-जाते

रास्ते में ही मेरे नाना मर गए। उनकी मृत्यु का शॉक भूरा को इतना लगा कि दूसरे दिन सुबह वह नींद से उठा ही नहीं- वह रात की ही मर गया। मेरी नानी और मेरे माता-पिता वापस कुचवाड़ा जाकर दुखी नहीं होना चाहते थे क्योंकि मेरे नाना की याद उन्हें आती। मेरे नाना बहुत ही अच्छे आदमी थे।

भूरा का बेटा मेरी ही आयु का है। कुछ वर्ष हुए तब मेरा भाई निकलंग और चैतन्य भारती उस घर के और तालाब के फोटो लेने उस गांव गए थे। जिस घर में मैं जन्मा था उस घर के लिए अब वे दस लाख रूपये मांग रहे हैं क्योंकि वे सोच रहे हैं कि मेरा कोई शिष्य इतने में उसे खरीद लेगा। दस लाख! और जब मेरे नाना मरे तब उसकी कीमत तीस रूपये थी। वह भी बहुत अधिक ही था। हमें आश्चर्य होता अगर इतना भी हमें कोई देता। वह तो देश का अविकसित, आदिकालीन भाग था। क्योंकि वह आदिकालीन था इसलिए उसमें ऐसी कोई विशेष बात थी। जो अब कहीं दिखाई नहीं देती। कभी-कभी मनुष्य को भी आदिकालीन होने की आवश्यकता होती है। उसको जंगल, समुद्र और तारों भरा आकाश भी चाहिए। मनुष्य को केवल अपने पैसे जमा करने की चिंता नहीं करनी चाहिए- वह तो बहुत ही कुरूप बात है। इसका अर्थ है कि मनुष्य मर गया है। उसे गाड़ दो। उत्सव मनाओ। उसे जला दो और नाचो। बैंक का खाता ही तो मनुष्य नहीं है। मनुष्य बनने के लिए मनुष्य को पहाड़ियों, चट्टानों, नदियों और फूलों की भांति स्वभाविक होना चाहिए।

मेरे नाना ने यह जानने को मेरी सहायता की कि सरलता क्या है- जीवन क्या है; मृत्यु को जानने में भी सहायता की। वे मेरी गोद में मरे। उसके बारे में मैं बाद में बताऊंगा।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (5)

मैं तुमसे उस समय की बात कर रहा था जब मैं उस ज्योतिषी से मिली जो अब संन्यासी हो गया था। उस समय मैं लगभग चौदह वर्ष का था और अपने दादा के साथ था। मेरे नाना अब नहीं रहे थे; मैं केवल सात साल का था जब उनकी मृत्यु हुई। उस वृद्ध भिक्षु, भूतपूर्व ज्योतिषी ने मुझसे पूछा, ‘मैं धंधे से तो ज्योतिषी हूं, लेकिन शौक से मैं हाथ, पैर और माथे की रेखायें इत्यादि भी पढता हूं। तुम यह कैसे बता सके कि मैं संन्यासी बनूंगा? पहले मैंने इसके बारे में कभी नहीं सोचा था। तुम्हीं ने इसका बीज मेरे भीतर डाला और तब से मैं केवल संन्यास के बारे मैं ही सोचता रहा हूं। तुमने यह कैसे किया?’

मैंने अपने कंधे बिचकाए। आज भी यदि कोई मुझसे पूछे तो मैं कैसे करता हूं, तो मैं सिर्फ कंधे बिचका सकता हूं। क्योंकि मैं कुछ करता नहीं, कोई प्रयास नहीं

करता। मैं तो बस जो हो रहा है उसे होने देता हूं। सिर्फ चीजों से आगे-आगे रहने की कला सीखने की जरूरत है, ताकि सब लोग समझें कि तुम उन्हें कर रह हो। अन्यथा कोई कुछ कर नहीं रहा है, विशेषकर उस दुनिया में जिसमें मेरा संबंध है।

उसे बूढ़े ज्योतिषी से मैंने कहा: ‘मैंने बस तुम्हारी आंखों में झांका और इतनी पवित्रता देखी कि मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि तुम अभी तक संन्यासी नहीं हुए हो। अब तक तो तुम्हें हो जाना चाहिए था। पहले ही बहुत देर हो चुकी थी।’

एक अर्थों में संन्यास के लिए हमेशा बहुत देर हो जाती है और दूसरे अर्थों में संन्यास हमेशा समय से पहले होता है। और दोनों बातें एक साथ सच हैं।

टब बूढ़े आदमी की बारी थी अपने कंधे बिचकाने की। उसने कहा: तुम मुझे उलझन में डाल रहे हो। मेरी आंखें नहीं बता सकतीं थीं!

मैने कहा: अगर आंखें नहीं बता सकतीं तो फिर किसी ज्योतिष की कोई संभावना नहीं रह जाती।’

निश्चित ही, ज्योतिष शब्द का आंखों से संबंध नहीं है, उसको संबंध तारों से है। लेकिन क्या अंधा आदमी तारे देख सकता है? तारों को देखने के लिए आंखें चाहिए।

मैंने उस वृद्ध व्यक्ति से कहा: ज्योतिष तारों को विज्ञान नहीं है, वरन देखने का विज्ञान है-तारों की दिन में भरपूर प्रकाष्ठा में भी देखने को विज्ञान है।

कभी-कभी ऐसा होता है... जब गुरु अपने शिष्य के सिर पर चोट करता है। आज सुबह ही, आशु, तुम्हें याद है जब तुम अपनी घड़ी देख रही थीं और मैंने कनाडा ड्राय सोडा की बोतल से तुम्हारे सिर पर चोट की थी? याद आया? उस समय तुम यह चूक गईं। ज्योतिष जानने का यही मतलब होता है! आज सुबह उसे इसका थोड़ा सा स्वाद मिला। मैं नहीं सोचता हूं कि अ बवह कभी अपनी घड़ी की तरफ देखेगी।

लेकिन कृपा करके, घड़ी की तरफ बार-बार देखो, ताकि मैं बार-बार तुम पर चोट कर सकूं। वह तो सिर्फ शुरुवात थी। नहीं तो तुम अंदर कैसे देखोगे। मुझे माफ कर दो, लेकिन मुझे हमेशा चोट करने दो। मैं माफी मांगने के लिए सदा तैयार हूं, लेकिन यह कहने को कभी तैयार नहीं कि मैं फिर से चोट नहीं करूंगा। असल में पहली तो सिर्फ तैयारी है दूसरी और गहरी चोट के लिए।

यह अजीब संग-साथ है। यहां! मैं एक पुराना यहूदी हूं। एक कहावत है कि ऐ बार जो यहूदी बना वह सदा यहूदी रहता है। और मैं एक बार यहूदी था, और में इस कहावत को सच्चाई को जानता हूं। मैं अभी भी यहूदी हूं। और मेरे दाईं ओर बैठा देवगीत सौ प्रतिशत यहूदी है और बाजू में मेरे पैरों के पास बैठा देवराज आंशिक यहूदी है। तुम उसकी नाक से पहचान सकते हो। नहीं तो ऐसी सुंदर नाक उसे कहां से मिल सकती है और गुड़िया, अगर वह अभी भी यहां है, वह भी अंग्रेज नहीं है। वह भी एक बार यहूदी रह चुकी है। पहली बार मैं तुमको यह बताना चाहता हूं कि कोई और नहीं मैरी मेग्दलीन है। जिसने जीसस को प्रेम किया, लेकिन इनसे चूक गई। उनको बहुत जल्दी सूली लग गई। और स्त्री को समय चाहिए, धैर्य चाहिए। और वे केवल तैंतीस साल के थे। वह तो फुटबॉल खेलने का समय है, या अगर तैंतीस साल में तुम थोड़े प्रौढ़ हुए तो फुटबॉल देखने जान का।

बहुतजल्दी मर गये। लोग उनके प्रति बहुत ही क्रूर थे। मैं चाहता था ि कवे सहिष्णु होते। गुड़िया, इस बार तुम नहीं चूक सकती हो, तुम चाहे कुछ भी करो और चाहे कितनी भी भागने की कोशिश करो। मैं जीसस नहीं हूं, जिनको आसानी से तैंतीस साल की उम्र में सूली दे दी गई! और मैं बहुत धैर्य रख सकता हूं- स्त्री के साथ, जो कि

बहुत कठिन है... वह मैं जानता हू कि बहुत मुश्किल है, कभी-कभी तो बहुत ही मुश्किल है। स्त्री सच में सिरदर्द हो सकती है!

मैं कभी सिरदर्द से परेशान नहीं हुआ, परमात्मा का धन्यवाद, लेकिन मुझे पीठ
के दर्द का पता है। अगर पीठ में इतना कष्ट होता है तो सिर में कितना ज्यादा होता होगा! सिर तो पीठ का शिखर है। लेकिन मेरे साथ, तुम चाहे पीठ में दर्द हो, चाहे सिर में, इससे फर्क नहीं पड़ता- इस बार तुम चूक नहीं सकतीं। अगर इस बार चूक गई तो दुबारा मेरे जैसा आदमी मिलना मुश्किल है।

जीसस दुबारा बहुत आसानी से मिल सकते हैं, लोग हमेशा संबुद्ध होते रहते हैं। लेकिन मेरे जैसा आदमी मिलना बहुत मुश्किल है- जो हजारों जन्मों में हजारों मार्गों पर चला है और जिसने मधुमक्खी की तरह लाखों फूलों की सुगंध को इकट्ठा किया है।

अगर कोई मुझसे चूक जाता है तो शायद वह सदा के लिए चूक जाता है। लेकिन मैं अपने किसी भी साथी के साथ ऐसा नहीं होने दूंगा। मैं उनकी चालाकी, कठोरता और होशयारी को अच्छी तरह से काटना जानता हूं। और मुझे पूरी दुनिया की कोई फिकर नहीं है; मुझे तो केवल अपने उन लोगों से मतलब है जो सच में स्वयं की खोज में हैं।

आज ही मुझे एक नई पुस्तक का अनुवाद मिला जिसे वे जर्मनी में प्रकाशित कर रहे हैं। मैं जर्मन नहीं जानता, इसलिए किसी को उस अंश का अनुवाद करना पड़ा जिसका मुझसे संबंध है। मैं इतना किसी भी चुटकुले पर कभी नहीं हंसा। और यह मजाक नहीं है, यह बहुत गंभीर पुस्तक है।

लेखक ने पचपन पृष्ठों में यह सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि मैं केवल इल्युमिनेटेड हूं, एनलाइटेंड नहीं हूं। वाह! बहुत खूब! सिर्फ इन्युमिनेटेड, एनलाइटेंड नहीं। और तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ ही दिन पहले इसी श्रेणी के एक और मूढ़, एक डच प्रोफेसर की पुस्तक मुझे मिली थी। डच जर्मन से कोई विशेष अगल नहीं है, वे एक ही श्रेणी के लोग हैं।

प्रसंगवश मैं तुम्हें कहूं कि गुरजिएफ एक विशेष योजना के अनुसार हर व्यक्ति को एक श्रेणी में रखता था। उससे मूढ़ों की कुछ श्रेणियां बनाई थीं। अब ये जर्मन और डच महानुभाव, जिनके नाम मैं सौभाग्य से भूल गया हूं, दोनों मूर्खों की प्रथम श्रेणी में आते हैं। नहीं, मूर्ख नहीं-वह तो मेरे यहूदी शिष्य, देवगीत के लिए आरक्षित है-मूढ़ हैं! डच मूढ़ ने एक लंबे शोध प्रबंध में यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि मैं सिर्फ इनलाइटेंड हूं, इल्युमिनेटेड नहीं। अब इन दोनों मूढ़ों को मिलना चाहिए और कुश्ती लड़नी चाहिए और अपनी किताबों और तर्कों से एक दूसरे को मारना चाहिए।

जहां तक मेरा सवाल है, मुझे हमेशा के लिए और अंतिम रूप से दुनिया से कह देनाप हैः न तो मैं इल्युमिनेटेड हूं और न ही इनलाइटेंड हूं। मैं तो बस एक बहुत साधारण और बहुत सरल व्यक्ति हूं- बिना किसी विशेषण के और बिना किसी डिग्री के। मैंने अपने सब सर्टिफिकेटों को जला दिया है।

मूढ़ सदा एक से प्रश्न पूछते हैं-इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह चमत्कार है कि भारत, इंग्लैंड, कैनेडा, अमेरिका और जर्मनी के बीच सब कुछ अलग-अलग है, लेकिन मूढ़ नहीं। मूढ़ सर्वव्यापक हैं, सब जगह एक जैसे हैं- कहीं से भी चखो, सबका स्वाद एक जैसा है। शायद बुद्ध मुझसे सहमत होते। आखिर उन्होंने कहा था कि बुद्धपुरुष को कहीं से भी चखो, और वह समुद्र की तरह है- कहीं से भी चखो, उसका स्वाद नमकीन होता है। शायद जैसे बुद्धों का स्वाद एक जैसा होता

है, वैसे ही बुद्धओं का स्वाद भी एक जैसा होता है। यह भी अच्छा है, लेकिन सिर्फ भारतीय भाषाओं में बुद्धू दोनों शब्द एक ही मूलधातु से आते हैं, करीब-करीब समान शब्द हैं।

मुझे इससे कुछ लेना-देना नहीं कि तुम मुझे इनलाइटेंड मानते हो या नहीं। इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन यह आदमी इतना चिंतित है कि इसकी छोटी सी पुस्तक में पचास पृष्ठ केवल इस बात को दिए गए हैं कि मैं एनलाइटेंड हूं या नहीं। इससे एक बात तो पक्का सिद्ध होती है कि वह प्रथम श्रेणी का मूढ़ है।

मैं बस में हूं। मुझे क्यों एनलाइटेंड या इल्युमिनेटेड होना चाहिए? और क्या विद्वता है! क्या इल्युमिनेशन एनलाइटेनमेंट से भिन्न है? शायद बिजली की रोशनी हो तो तुम एनलाइटेंड होते हो और जब केवल मोमबत्ती की रोशनी हो तो तुम सिर्फ इल्युमिनेटेड होते हो! मुझ नहीं पता कि अंतर क्या है।

मैं दोनों नहीं हूं। मैं तो स्वयं प्रकाश हूं- न एनलाइटेंड हूं, न इल्युमिनेटेड हूं। इन शब्दों को मैंने बहुत बहुत पीछे छोड़ दिया है। मैं उन्हें बहुत दूर उस रास्ते पर अभी भी उड़ती धूल की तरह देख सकता हूं जिस रास्ते मैं फिर कभी नहीं आऊंगा। ये रेत पर छूट गए पद-चिह्न हैं।

ये तथाकथित प्रोफेसर, दार्शनिक और मनोविज्ञान, ये मेरे जैसे सीधे-सादे आदमी के बारे में इतने चिंतत क्यों हैं, जो कि उनके बारे में बिल्कुल चिंतित नहीं हैं? मैं अपना जीवन जी रहा हूं, और यह मेरी स्वतंत्रता है कि मैं इसे जैसा चाहूं वैसा जीऊं। वे क्यों अपना समय मुझ पर बरबाद करते हैं? अच्छा होता कि इतना समय जीने में बिताते! इस बेचारे प्रोफेसर ने न जाने कितने दिन और कितनी रातें बर्बाद की होंगी! इतने में तो वह शायद इल्युमिनेटेड हो जाता, या कम से कम इनलाइटेंड तो हो ही जाता। और वह डच अगर इल्युमिनेटेड न हो पाता तो इनलाइटेंड हो जाता। दोनों समझ जाते कि मैं कौन हूं।

और तब वहां केवल मौन है

कुछ भी कहने को नहीं

शायद गाने को एक गीत

या एक नृत्य

या सिर्फ एक कप चाय बनाना

और चुपचाप उसकी चुस्की लेना...

सारी फिसासफी से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है चाय की खुशबु, चाय का स्वाद!

आशु, याद रखो, इसीलिए मैं कहता हूं कि कैनेडा की केवल एक ही चीज है, जो उल्लेखनीय है, और वह है कैनेडा ड्राय, सोडा। वह सच में अच्छा है-मुझे बहुत पसंद है। दुनिया में वह सबसे अच्छा सोडा है। अब तुम हंस रही हो! तुम्हें घड़ी देखने की अनुमति है। उसे अपने आस्तीन में छुपाने की जरूरत नहीं है और न ही छोड़ आने की जरूरत है कि कहीं गलती से देख न लो। कितना समय हुआ है, इसकी मुझे कोई परवाह नहीं। और जब मैं पूछता भी हूं तो उसका कोई मतलब नहीं होता, वह तो सिर्फ तुम लोगों को दिलासा देने के लिए है। अन्यथा मैं तो अपने ढंग से चलता जाता हूं, समय की कोई चिंता नहीं करता। अब देखो, मूल विषय पर आते मुझे कितनी देर लगी।

मेरे नाना अचानक बीमार पड़ गए। अभी उनकी मृत्यु का समय नहीं था। वे पचास से अधिक उर्म के न थे; पचास से कम थे, शायद अभी मेरी जो उम्र है उससे भी कम। मेरी

नाना सिर्फ पचास साल की थीं। उसनका सौदर्य पूरा निखार पर था। तुम्हें जान कर आचर्श्य होगा कि उनका जन्म तांत्रिकों के प्राचीनतम गढ़ खजुराहो में हुआ था। वे मुझसे हमेशा कहा करती थीं, ‘तुम अब थोड़े बड़े हो जाओ तो खजुराहो जाना कभी न भूलना।’ मैं नहीं सोचता कि कोई माता-पिता अपने बच्चे को ऐसी सलाह देंगे। लेकिन मेरी नानी अद्भुत थीं, खजुराहो जाने के लिए मुझे फुसलाती रहीं।

खजुराहो के मंदिरों में हजारों सुंदर मूर्तियां खुदी हैं-सब नग्न और संभोरत। वहां सैकड़ों मंदिर हैं। उनमें से अधिक तो खंडहर हो चुके हैं, लेकिन कुछ बच गए हैं, शायद क्योंकि लोग उन्हें भूल गये थे। महात्मा गांधी इन बचे हुए मंदिरों को भी मिट्टी में दबा देना चाहते थे, क्योंकि वे मूर्तियां बहुत ही लुभावनी हैं। और फिर भी मेरी नानी मुझे खजुराहो जाने के लिए उत्साहित कर रही थीं। वे स्वयं भी मूर्ति की भांति बहुत सुंंदर थीं-हर प्रकार से यूनानी दिखाई देती थीं।

जब मुक्ता की बेटी सीमा मुझसे मिलने आई तो एक क्षण को मैं भरोसा न कर सका, क्योंकि मेरी नानी का रंगरूप और चेहरा बिल्कुल वैसा था। सीमा यूरोपियन दिखाई नहीं देती। उसका रंग थोड़ा गहरा है और उसकी कद-काठी और चेहरा मेरी नानी जैसा ही है। मैंने सोचा, दुख है कि मेरी नानी मर चुकी है, मैं सीमा के उनसे मिलवाना चाहता। और क्या तुम्हें मालूम है कि अस्सी साल की उम्र में भी वे बहुत सुंदर थीं, जो कि असंभव है।

जब मेरी नानी की मृत्यु हुई तो मैं बंबई से उन्हें देखने गया। मरने के बाद
भी वे सुंंदर थीं। मैं विश्वास ही नहीं कर सका कि वे मर गईं हैं। और अचानक खजुराहों की सारी मूर्तियां मेरे लिए जीवंत हो गई। उनके मृत शरीर में मैंने खजुराहो के समस्त दर्शन को देख लिया। उनको देखने के बाद पहली चीज जो मैंने की वह यह कि मैं फिर से खजुराहो गया। उनको श्रद्धांजलि अर्पित करने का यही एकमात्र तरीका था। अब खजुराहो पहले से भी अधिक सुंदर लगा, क्योंकि हर मूर्ति में, हर जगह में उनको देख सकता था।

खजुराहो अनुपम है, अतुलनीय है। दुनिया में हजारों मंदिर हैं, लेकिन खजुराहो जैसा कोई भी नहीं है। मैं इस आश्रम में एक जिंदा खजुराहो बनाने की कोशिश कर रहा हूं। पत्थर की मूर्तियां नहीं, वरन जीवित लोग, जिनमें प्रेम करने की क्षमता हो, जो सच में जीवित हों, इतने जीवित कि वे संक्रामक हों, कि सिर्फ उनको छूना काफी हो एक करंट, एक बिजली का शॉक अनुभव करने के लिए।

मेरी नानी ने मुझे बहुत कुछ दिया-सबसे महत्त्वपूर्ण था उनको जोर देना कि मैं खजुराहो जरूर जाऊं। उन दिनों खजुराहो को कोई जानता भी न था। लेकिन उन्होंने इतना जोर दिया कि मुझे जाना ही पड़ा। वे बहुत जिद्दी थीं। शायद मैंने भी यह-गुण या तुम इसे अवगुण कह सकते हो-उन्हीं से पाया है।

उनके जीवन के अंतिम बीस वर्षां से मैं पूरे भारत में घूम रहा था। हर बार जब
भी मैं उस गांव से गुजरता, वे मुझसे कहतीं, ‘सुनो, कभी भी चलती गाड़ी में चढ़ना मत और चलती गाड़ी से उतरना मत। दूसरी बात, यात्रा करते समय डिब्बे में किसी भी मुसाफिर से बहस मत करना। तीसरी बात, सदा याद रखना कि मैं जिंदा हूं और तुम्हारे घर आने की प्रतीक्षा कर रही हूं। क्यों तुम देश में घूमते फिर रहे हो जब कि मैं तुम्हारी फिक्र करने के लिए यहां प्रतीक्षा कर रही हूं? तुम्हें देखभाल की जरूरत है, और दूसरा कोई तुम्हारी इतनी अच्छी देखभाल नहीं कर सकता जितनी कि मैं।’

बीस साल तक निंरतर यह सलाह सुननी पड़ी। अब मैं उनसे कह सकता हूं ‘चिंता मत करो, कम से कम उस दूसरे लोक में। पहली तो बात मैं अब रेलगाड़ी से यात्रा नहीं

करता; सच तो यह है कि मैं अब यात्रा ही नहीं करता, सो अब चलती गाड़ी से उतरने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरा, गुड़िया मेरी देखभाल वैसे ही सुंदर ढंग से कर रही है जैसे तुम स्वयं पंसद करती थीं। तीसरा, याद रहे, जिस प्रकार तुमने अपने जीवन-काल में मेरी प्रतीक्षा की, उसी प्रकार अभी भी मेरी प्रतीक्षा करना मैं जल्दी ही आ रहा हूं, घर आ रहा हूं।

पहली बार जब मैं खजुराहो गया था तो नानी के बार-बार कहने पर ही गया था, लेकिन उसके बाद मैं सैकड़ों बार वहां गया हूं। दुनिया में और किसी जगह मैं इतनी बार नहीं गया कारण सीधा-साफ है। वह अनुभव तुम कभी भी पूरा नहीं कर सकते, वह असीम है, वह पूरा हो ही नहीं सकता। जितना ज्यादा जानो, उतना और अधिक जानने की इच्छा होती है। खजुराहो के मंदिरों के कण-कण में रहस्य है। एक-एक मंदिर को बनाने में हजारों कलाकार और सैकड़ो वर्ष लगे होंगे। और खजुराहो के अलावा मैंने कुछ भी नहीं देखा जिसे कि परिपूर्ण कहा जा सके-ताजमहल भी नहीं। ताजमहल में भी कुछ कमियां हैं, लेकिन खजुराहो कोई कमी नहीं है। और फिर ताजमहल सिर्फ एक सुंदर कलाकृति है, लेकिन खजुराहो नये मनुष्य को पूरा दर्शन और मनोविज्ञान है।

जब मैंने उन नेकिड... मैं ‘न्यूड’ नहीं कह सकता, माफ करना। ‘न्यूड’ अश्लील है। ‘नेकिड’ बिल्कुल ही अलग बात है। शब्दकोश में शायद उनका एक ही अर्थ हो, लेकिन शब्दकोश सब कुछ नहीं है, अस्तित्व में और बहुत कुछ है। वे मूर्तियां नेकिड हैं पर न्यूड नहीं। लेकिन वह नेकिड सौंदर्य! ... शायद कभी मनुष्य उसको उपलब्ध कर सकेगा। यह एक स्वप्न है, खजुराहो एक स्वप्न है। और गांधी उसे मिट्टी में दबा देना चाहते थे ताकि कोई भी उन सुंदर मूर्तियों से मोहित न हो सके। हम रवींद्रनाथ टैगोर के आभारी हैं जिन्होंने गांधी को ऐसा करने से रोका। उन्होंने कहा, ‘मंदिर जैसे हैं उन्हें वैसा ही रहने दो।’ वे कवि थे और वे उनके रहस्य को समझ सकते थे।

मैं खजुराहो इतनी बार गया हूं कि गिनती ही भूल गया हूं। जब भी मेरे पास समय होता मैं खजुराहो चला जाता। अगर मैं कहीं और न मिलता तो मेरे परिवार वाले अपने आप कहते कि में अवश्य खजुराहो चला गया होऊंगा, मुझे वहां खोजो। और वे हमेशा सही होते। जब मैं वहां होता तो उन मंदिरों के पहरेदारों को मुझे रिश्वत देनी पड़ती थे, लोगों से यह कहने के लिए कि मैं वहां नहीं हूं। यह एक कन्फेशन है, क्योंकि यही एकमात्र अवसर है जब मैंने किसी को रिश्वत दी। लेकिन वह करने जैसा था, और इसके लिए मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है, इसके लिए मुझे कोई दुख या अफसोस नहीं है।

असल में, तुम्हें आश्यर्च होगा-तुम्हें मालूम है कि मैं कितना खतरनाक हूं- जिस पहरेदार को मैंने रिश्वत दी, वह मेरा संन्यासी बन गया। अब किसने किसको रिश्वत दी? पहले मैंने उसको रिश्वत दी यह कहने के लिए कि भीतर नहीं हूं। फिर धीरे-धीरे वह मुझसे और-और उत्सुक होने लगा। उससे मेरी दी हुई सारी रिश्वत वापस कर दी। वही शायद एक ऐसा आदमी है जिसने ली हुई सारी रिश्वत वापस कर दी। संन्यासी बनने के बाद वह उसे न रख सका।

खजुराहो- इस नाम से ही मुझमें आनंद की घंटियां बजने लगती हैं, जैसे कि वह स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरा हो। पूर्णिमा की रात में खजुराहो को देखना ऐसे ही है जैसे, जो भी देखने योग्य है, सब देख लिया हो। मेरी नानी वहीं जन्मी थीं। कोई नहीं ि कवे एक सुंदर स्त्री थीं, साहसी और खतरनाक भी। सुंदरता हमेशा ही साहसी और खतरनाक होती है। उनमें बहुत साहस था। मेरी मां उनके जैसी नहीं हैं, और मुझे इस बात का अफसोस है। तुम मेरी मां में मेरी नानी में कोई भी प्रमाण नहीं पा सकते। नानी बहुत ही साहसी महिला थीं, और उन्होंने कुछ भी करने में मेरी मदद की- मेरा मतलब है सब कुछ करने में।

यदि मैं शराब पीना चाहता तो वे शराब लाकर देतीं। वे कहतीं, ‘ जब तक तुम पूरी तरह न पीओगे तब तक तुम इससे मुक्त न हो सकोगे।’ औ मैं जानता हूं कि किसी भी चीज से छुटकारा पाने का यही एकमात्र तरीका है। जो कुछ भी मैं चाहता, वे उसको इंतजाम कर देतीं।

मेरे नाना, उनके पति, हमेशा डरे रहते थे-वैसे ही जैसे दुनिया में सभी पति होते हैं, एक चूहा, एक सुंदर चूहा। अच्छे आदमी थे, प्रेमपूर्ण, लेकिन नानी की तुलना में कुछ भी नहीं। जब नाना मेरी गोद में मरे तो नानी रोईं भी नहीं। मैंने उनसे पूछा, ‘वे मर गये हैं। तुमने उन्हें इतना प्यार किया तुम रो क्यों नहीं रहीं?

उन्होंने कहा: तुम्हारे कारण। एक बच्चे के सामने मैं रोना नहीं चाहती। वे एक स्त्री थीं! और मैं तुम्हें दिलासा भी देना नहीं चाहती। यदि मैं ही रोना शुरू कर दूं तो स्वाभावतः तुम भी रोने लगोगे। फिर कौन किसको चुप कराएगा?

उस समय की स्थिति का मुझे वर्णन करना चाहिए... ।

हम लोग बैलगाड़ी में अपने नाना के गांव से पिताजी के गांव जा रहे थे, क्योंकि एकमात्र अस्पताल वहीं था। मेरे नाना बहुत बीमार थे; बीमार ही नहीं, बेहोश भी थे, करीब-करीब कोमा में थे। उनके अतिरिक्त केवल मैं और नानी बैलगाड़ी में थे। मेरे प्रति नानी की करुणा को मैं समझ सकता हूं। वे अपने प्रिय पति की मृत्यु पर रोईं भी नहीं, सिर्फ मेरे कारण; क्योंकि मैं ही अकेला वहां था, और मुझे सात्वना देने के लिए कोई भी वहां नहीं था। मैंने कहा, चिंता मत करो। यदि तुम बिना आंसुओं के रह सकती हो तो मैं भी बिना आंसुओ के रह सकता हूं। और विश्वास करो न करो, एक सात साल का बच्चा बिल्कुल नहीं रोया। यहां तक कि उन्हें भी आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, तुम रो नहीं रहे? मैंने कहा, मैं तुम्हें दिलासा नहीं देना चाहता।

अब बैलगाड़ी में अद्भुत लोग इकट्ठा थे। भूरा, जिसका मैंने सुबह जिक्र किया, गाड़ी चला रहा था। वह जानता था कि उसके मालिक की मृत्यु हो गयी है, लेकिन फिर भी उसने गाड़ी के भीतर नहीं देखा, क्योंकि वह सिर्फ नौकर था और मालिक के व्यक्तिगत मामलों में दखल देना उचित न था। यही उसने मुझसे कहा, ‘ मृत्यु निजी मामला है; मैं कैसे देख सकता हूं? गाड़ी चलाते हुए अपनी जगह से मैंने सब सुना। मैं रोना चाहता था। मैं उनसे बहुत प्रेम करता था। मैं अनाथ जैसा अनुभव कर रहा हूं। लेकिन मैं गाड़ी में पीछे मुड़कर नहीं देख सकता था, अन्यथा वे मुझे कभी क्षमा न करते।’

अनूठे लोग... और नाना मेरी गोद में थे। मैं सात साल का बच्चा मृत्यु के साथ था- कुछ सेकेंड के लिए नहीं, लगातार चौबीस घंटे तक। वहां कोई सड़क नहीं थी, और मेरे पिता के गांव तक पहुंचना मुश्किल था। गाड़ी बहुत धीमे चल रही थी। चौबीस घंटे तक हम मृत शरीर के साथ रहे। मैं रो नहीं सका, क्योंकि मैं अपनी नानी को व्याकुल नहीं करना चाहता था। व न रो सकीं, क्योंकि वे मुझे, सात साल के छोटे बच्चे को दुखी नहीं करना चाहती थीं वे लोहे की बनी सच्ची स्त्री थीं।

जब हम गांव पहुंचे तो मेरे पिताजी ने डाक्टर को बुलवाया। और क्या और तुम कल्पना कर सकते हो कि मेरी नानी हंसी, उन्होने कहा: ‘तुम पढ़े लिखे लोग सब मूर्ख हो! वे मर चुके हैं। अब डाक्टर को बुलाने की जरूरत नहीं है। अब जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी इनका दाह संस्कार करो।’

ये शब्द सुनकर सब स्तब्ध रह गये सिवाय मेरे, क्योंकि मैं उन्हें जानता था। वे चाहती थीं कि मृत-शरीर मूल तत्वों में विलीन हो जाए। पहले ही देर हो चुकी थी। तुम समझ सकते हो।

उन्होंने कहा: ‘ और अब मैं वापस उस गांव नहीं जा रही हूं।’

जब उन्होंने कहा कि वे वापस उस गांव में रहने नहीं जा रहीं, तो इसका यह अर्थ
भी था कि अब मैं उनसे मिलने वहां फिर नहीं जा सकता था। लेकिन वे मेरे पिता के परिवार के साथ कभ्ी नहीं रहीं। वे अलग थीं। जब मैंने अपने पिता के गांव में रहना शुरू किया तो मैं उस गांव में बहुत हिसाब से रहा, सारा दिन अपने पिता के घर उनके परिवार के साथ बिताता और सारी रात मेरी नानी के साथ रहता। वे अकेली एक सुंदर बंगले में रहती थीं। वह छोटा सा घर था, लेकिन बहुत सुंदर था।

मेरी मां मुझसे पूछती: तुम रात को घर पर क्यों नहीं रहते?

मैने कहा: यह असंभव है। मुझे नानी के पास ही जाना है, विशेषकर रात को, अब बिना नाना के वे अकेलापन महसूस करती हैं। दिन में तो ठीक है, वे काम-काज में व्यस्त रहती हैं और बहुत से लोग आस-पास होते हैं, लेकिन रात को अगर मैं वहां न होऊं तो अकेले अपने कमरे में वे शायद रोना शुरू कर दें। मुझे वहां जाना ही है। मैं हमेशा वहां रहा, हर रात, बिना किसी अपवाद के।

दिन में मैं स्कूल में रहता। केवल सुबह और दोपहर को मैं कुछ घंटे अपने परिवार के साथ बिताता- मेरे माता-पिता, मेरे चाचा। वह बड़ा परिवार था और वह मेरे लिए अजनबी ही रहा, वह कभी भी मेरा अंग न बना।

मेरी नानी मेरा परिवार थीं। और वे मुझे समझती थीं, क्योंकि मेरे बचपन से ही उन्होंने मुझे बढ़ते देखा था। और कोई मुझे उतना नहीं जानता था जितना वे जानती थीं, क्योंकि उन्होंने मुझे सब कुछ करने दिया... सब कुछ।

भारत में जब दीवाली आती है तो लोग जुआ खेल सकते हैं। यह अजीब रिवाज है; तीन दिन के लिए जुआ खेलना गैर-कानूनी नहीं है। उसके बाद तुम पकड़े जा सकते हो और सजा हो सकती है। मैंने अपनी नानी सो कहा: ‘मैं जुआ खेलना चाहता हूं।’

उन्होने मुझसे पूछा: कितने रुपये चाहिए तुम्हें?

मैं भी अपने कानों पर विश्वास न कर सका। मैंने सोचा था कि वे कहेंगी कि जुआ कभी नहीं खेलना! लेकिन उन्होने कहा, ‘अच्छा तो तुम जुआ खेलना चाहते हो?’ फिर उन्होंने मुझे सौ रुपये का नौट दिया औ मुझसे कहा, ‘जाओ और जहां खेलना हो खेलो! क्योंकि अनुभव से ही कोई सीखता है।

इस प्रकार से उन्होंने मेरी बहुत सहायता की है।

एक बार मैं एक वेश्या के पास जाना चाहता था। मैं सिर्फ पंद्रह वर्ष का था और मैंने सुना कि गांव में एक वेश्या आई हुई है। मेरी नानी ने मुझसे पूछा: तुम वेश्या का मतलब समझते हो? मैंने कहा: मैं एक दम ठीक-ठीक नहीं समझता हूं। तो उन्होंने कहा: तुम्हें जाकर देखना चाहिए। लेकिन पहले सिर्फ उसको नाचते और गाते देखने के लिए जाओ।

भारत में वेश्याएं पहले नाचती और गाती हैं। लेकिन वह स्त्री कुरूप् थी और उसका नाचना-गाना इना भद्दा था कि मुझे उलटी हो गयी। नाचना-गाना खत्म हो और वेश्यावृत्ति शुरू हो, उसके पहले ही बीच में ही मैं घर आ गया। मेरी नानी ने पूछा, तुम इतनी जल्दी घर क्यों आ गये?

मैंने कहा: मुझे उलटी आ रही थी।

बाद में जब मैंने ज्यांपाल सार्त्र की पुस्तक नॉसिया पढ़ी, तब मेरी समझ में आया कि उस रात मुझे क्या हुआ था।

लेकिन मेरी नानी ने मुझे वेश्या तक के पास जाने दिया। मुझे याद नहीं आता कि उन्होंने कभी भी मुझे न कहा हो। मैं सिगरेट पीना चाहता था। उन्होंने कहा: एक बात याद रखना, सिगरेट पीना ठीक है, लेकिन हमेशा अपने घर में ही पीना।

मैंने पूछा: क्यों?

उन्होंने कहा: दूसरों को शायद आपत्ति हो। इसलिए तुम घर में पी सकत हो। मैं तुम्हें सिगरेट लाकर दूंगी। और वे तब तक मुझे सिगरेट लाकर देती रहीं जब तक मैंने नहीं कहा, बस! मुझे और नहीं चाहिए।’

मुझे स्वयं अनुभव प्राप्त हो, इसके लिए मेरी नानी किसी भी हद तक जाने को तैयार थीं।

जानने का रास्ता है: स्वयं अनुभव करना। बताने से कोई लाभ नहीं। यहीं माता- पिता से चिढ़ पैदा होती है: वे सदा तुम्हें बताते रहते हैं। बच्चा परमात्मा का पुनर्जन्म है। उसका आदर होना चाहिए और उसको बढ़ने और होने का पूरा मौका दिया जाना चाहिए- तुम्हारे हिसाब से नहीं, बल्कि उसकी अपनी क्षमताओं और संभावनाओं के अनुसार।

अगर मेरा समय पूरा हो गया है तो ठीक है। अगर पूरा नहीं हुआ है तो यह और भी अच्छा है। अब यह तुम पर निर्भर है कि तुम इसे कितना खींचते हो। याद रखना, तुम अकेले ही यहूदी नहीं हो। तुम तो सिर्फ जन्म से यहूदी हो, मैं तो आत्मा से यहूदी हूं। अब सब तुम पर निर्भर है।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (6)

बचपन में मैं अपने नाना-नानी के पास रहता था तो बहुत उपद्रव करता था लेकिन मुझे कभी कोई सजा नहीं मिली। नाना ने यह कभी नहीं कहा कि ‘यह करो और वह न करो।’ उन्होंने अपने सबसे आज्ञाकारी, नौकर, भूरा को मेरी सुरक्षा के लिए नियुक्त कर दिया। भूरा अपने पास सदा एक बहुत पुरानी बंदूक रखता था और थोड़ी दूरी पर मेरे साथ-साथ चलता था। गांव वालों को डराने के लिए यही काफी था और मुझे मनमानी करने का मौका मिल जाता था।

तुम कल्पना नहीं कर सकते कि मैं क्या-क्या करता था- जैसे भैंस पर उलटी सवारी करना। भूरा पीछे-पीछे चलता था। बहुत समय बाद विश्वविद्यालय के अजायबघर में मैंने भैस पर उलटे बैठे हुए लाओत्से की मूर्ति देखी। उसको देखकर मैं इतनी जोर से हंसा कि अजायबघर का निदेशक भागा-भागा आया, उस समय मैं हंसी से लोटपोट हो रहा था, पेट पकड़कर जमीन पर बैठा हुआ था। उसने पूछा, ‘क्या तुम्हें कोई तकलीफ है?’ मैंने कहा, ‘नहीं। तकलीफ तो नहीं है लेकिन इस समय आप मुझे अकेला ही छोड़ दें। मुझे अपने बचपन की याद आ रही है। मैं भी इसी प्रकार भैंस की उलटी सवारी किया करता था।’

मेरे गांव में तो क्या समस्त भारत में कोई भी भैंस की सवारी नहीं करता। परंतु चीनी लोग बड़े अजीब है और लाओत्से तो सबसे अजीब था। परंतु भगवान जाने कैसे मुझे बाजार में भैंस पर उलटी सवारी करने की सूझी। शायद इसलिए कि मुझे बेतुकी बातें बहुत पसंद थीं।

बचपन के वे दिन अगर मुझे फिर से मिल सकें तो मैं दोबारा जन्म लेने को तैयार हूं। लेकिन तुम भी जानते हो और मैं भी जानता हूं कि कुछ भी पुनरुक्त नहीं होता।
इसीलिए मैंने भी कह दिया कि मैं दोबारा जन्म लेने को तैयार हूं। वे दिन कितने भी सुंदर हों कोई ऐसा चाहता नहीं है।

मैं तो गलत नक्षत्र में पैदा हुआ। मैं उस ज्योतिषी से यह पूछना ही भूल गया कि मैं इतना शैतान क्यो हूं? मैं तो शैतानी के बिना रह ही नहीं सकता।

अब मेरी समझ में आता है कि मेरी शैतानियों के कारण मेरे नाना को कितनी परेशानी होती थी। दिन भर अपनी गद्दी पर बैठकर वे अपने ग्राहकों की बातें तो कम, मेरी शिकायतें अधिक सुनते थे। वे शिकायत करने वालों से कहते ‘आपका जो नुकसान हुआ है उसका हर्जाना मैं देने को तैयार हूं किंतु इसके लिए मैं उसको कोई सजा नहीं दूंगा।’ उनमें इतना धीरज था। किसी की इतनी अधिक शैतानी तो मैं भी सहन न कर सकता। ऐसा बच्चा अगर मुझे मिल जाता तो मैं तो उसे जल्द ही घर के बाहर निकाल देता।

नाना के उस धैर्य का परिणाम यह हुआ कि वे धीरे-धीरे मौन होते गए। कभी-कभी मैं स्वयं ही उनसे कहता ‘नाना! आप मुझे दंड दे सकते हैं। इतना सहन करने की क्या आवश्यकता है?’ यह सुनकर उनकी आंखों में आंसू आ जाते, ‘मैं तुम्हें सजा दूं? मैं अपने आपको सजा दे सकता हूं लेकिन तुम्हें नहीं।’

और सच मानो कि उन्होंने कभी भी मुझे गुस्से से नहीं देखा। शैतानी में तो मैं एक हजार बच्चों के बराबर था। सुबह से रात तक मुझे शैतानी ही शैतानी सूझती; कभी- कभी तो मैं रात को तीन बजे घर वापस आता लेकिन उन्होंने कभी नहीं कहा कि ‘तुमने इतनी देर क्यों की? कोई बच्चा इतनी देर से घर नहीं आता।’ नहीं, एक बार भी उन्होंने ऐसा नहीं कहा और मेरे सामने तो वे दीवार पर लगी हुई घड़ी की और भी न देखते।

इस प्रकार से मैंने धार्मिकता सीखी। जब वे मंदिर जाते तो वे मुझे अपने साथ कभी न ले जाते। मैं भी उस मंदिर में जाता था लेकिन जब वह बंद होता था- कांच के मोती चुराने के लिए। धीरे-धीरे, मैंने सब मोती चुरा लिए। उस मंदिर में बड़े सुंदर फानूस लगे हुए थे। जब मेरे नाना को बताया गया कि मैंने फानूसों में लगे सब मोती चुरा लिए हैं तो नाना ने कहा ‘यह मंदिर मैंने बनवाया है। उसमें ये फानूस भी मैंने लगवाए हैं। उसने चोरी तो नहीं की- यह तो उसके नाना की संपत्ति है। मैं फिर से ये फानूस लगवा दूंगा।’

नाना रोज सुबह मंदिर जाते किंतु उन्होंने मुझे कभी नहीं कहा कि ‘तुम भी मेरे साथ चलो।’ उन्होंने कभी कोई सिद्धांत मेरे दिमाग में नहीं डाला। छोटे बच्चे पर सब लोग अपने विश्वास थोप देते हैं। किंतु नाना ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने मुझसे ये कभी न कहा कि तुम जैन हो।’

मुझे याद है एक बार सरकार द्वारा जनसंख्या की जा रही थी। जनसंख्या के अफसर ने हमारे घर आकर बहुत प्रकार की पूछताछ की। उसने जब नाना से उनका धर्म पूछा तो उन्होंने कहा कि उनका धर्म जैन है। तब उसने नानी का धर्म पूछा। नाना ने कहा, ‘यह तो आप खुद उनसे पूछिए क्योंकि धर्म तो व्यक्तिगत मामला है। इसके बारे में मैंने कभी उनसे पूछा नहीं है।’ अदभुत आदमी थे। मेरी नानी ने कहा, मैं किसी धर्म में विश्वास नहीं करती क्योंकि सब धर्म मुझे बचकाने लगते है।’ वह अफसर भौचक्का रह गया! यह सुनकर मैं भी बहुत हैरान हुआ। भारत में शायद ही ऐसी कोई स्त्री होगी जिसका धर्म में कोई विश्वास न हो। किंतु नानी तो खजुराहो में जन्मी थी; शायद तांत्रिकों के परिवार में। तांत्रिक ध्यान करते हैं- वे किसी धर्म में विश्वास नहीं करते।

पश्चिम के लोगों को आश्चर्य होता है कि बिना धर्म के ध्यान कैसे हो सकता है? सच तो यह है कि अगर किसी धर्म विशेष में विश्वास हो तो ध्यान नहीं हो सकता। धर्म ध्यान में बाधा डालता है। ध्यान करने के लिए किसी परमात्मा, किसी स्वर्ग या नर्क, दंड का डर या सुख के लोभ की कोई आवश्यकता नहीं है। ध्यान मन के पार है और धर्म केवल मन है, मन के भीतर है।

नानी कभी मंदिर नहीं गई लेकिन उन्होंने मुझे एक मंत्र सिखाया। वह जैन मंत्र है किंतु उसका संबंध केवल जैनियों से नहीं है। यह तो केवल संयोग की बात है कि वह मंत्र जैन धर्म के साथ संबंधित है। वह मंत्र है-

‘नमो अरिहन्ताणं नमो नमो।

नमो सिद्धाणं नमो नमो।

नमो आयरियाणं नमो नमो।

नमो लोए सव्व साहुणं।

पांचवीं पंक्ति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अपने जीवन में और कोई दूसरा ऐसा सुंदर वाक्य मुझे नहीं मिला। बड़ी विचित्र बात है कि जब मैं छोटा बच्चा था तब नानी ने इसे मुझे प्रदान किया। मेरे समझाने पर तुम भी इसके सौंदर्य को देख सकोगे। केवल नानी ही इसको मुझे दे सकती थीं। सब जैन इस मंत्र को अपने मंदिरों में दोहराते रहते हैं किंतु इसकी घोषणा करने का साहस किसी और में न था। दोहराना एक बात है और अपने किसी प्रिय व्यक्ति को यह मंत्र सिखाना बिल्कुल दूसरी बात है।

‘मैं उन सब लोगों के चरणों में झुकता हूं जिन्होंने जाना है’ अर्थात बिना किसी भेदभाव के उन सब लोगों के चरणों में झुकता हूं चाहे वे हिंदू हो, चाहे जैन, चाहे बौद्ध, चाहे ईसाई, चाहे मुसलमान। जहां तक मैं जानता हूं यही एकमात्र मंत्र है जो धर्म निरपेक्ष है, जो सब धर्मों पर लागू होता है, जो किसी संप्रदाय तक सीमित नहीं है।

शेष चार भाग पांचवें से भिन्न नहीं है। वे सब इसी में समाए हुए है। परंतु इसमें जो विस्तार है वह दूसरों में नहीं हैं। इस पांचवी पंक्ति को तो सब मंदिरों और चर्चों पर लिखा जाना चाहिए। क्योंकि इसमें कहा गया है कि ‘मैं उन सब के चरणों में झुकता हूं जिन्होंने जाना है।’ इसमें यह भी नहीं कहा गया कि जिन्होंने ‘परमात्मा’ को जाना है? लोग पूछ सकते हैं कि ‘क्या और किसको जाना है? जानकारी का लक्ष्य क्या है?’ जानने का कोई लक्ष्य नहीं है, जानने को कुछ है नहीं, केवल जानने वाला है।

मेरी नानी ने मुझे एकमात्र यही मंत्र दिया था जिसे धार्मिक कहा जा सकता है।

एक रात जब मुझे नींद नहीं आ रही थी तो जब मेरी नानी ने मेरे जागे रहने का कारण पूछा तो मैंने कहा- ‘एक प्रश्न मुझे परेशान कर रहा है। सबका कोई न कोई धर्म है लेकिन जब लोग मुझसे पूछते है कि मेरा कौन सा धर्म है तो मैं कंधे बिचका देता हूं। अब यह तो कोई उत्तर नहीं है। अब आप ही मुझे बताओ कि मैं उन लोगों को क्या उत्तर दूं?’

नानी ने कहा, ‘मैं स्वयं किसी विशेष धर्म को नहीं मानती परंतु मुझे यह मंत्र बहुत प्रिय है और इसे मैं तुम्हें देती हूं। इसलिए नहीं कि यह प्राचीन जैन मंत्र है वरन इसलिए कि यह अतिसुंदर है। मैंने इसे लाखों बार दुहराया है और इससे मुझे बहुत शांति मिली है- केवल इस भाव के कारण कि उन सबके चरणों का स्पर्श करती हूं

जिन्होंने जाना है। यही मंत्र मैं तुम्हें दे सकती हूं। इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकती।’

अब मैं यह कह सकता हूं कि वह महिला सचमुच महान थी। क्योंकि जहां तक धर्म का संबंध है बस लोग झूठ बोल रहे हैं। वे सब बातें करते हैं परमात्मा के बारे में, स्वर्ग और नर्क के बारे में, देवता और देवदूतों के बारे में परंतु जानते कुछ भी नहीं हैं। नानी महान थीं। इसलिए नहीं कि वे स्वयं जानती थी बल्कि इसलिए कि उन्होंने बच्चे से झूठ नहीं बोला। झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए और बच्चे से तो कभी नहीं।

शताब्दियों तक बच्चों का शोषण किया गया है क्योकि वे जल्दी विश्वास कर लेते हैं। आसानी से उनसे झूठ बोला जा सकता है, क्योंकि वे विश्वास कर लेते हैं। अपने माता-पिता की हर बात को बच्चे सच मान लेते हैं। बच्चों को सदियों से झूठ बोला जा रहा है। इसीलिए मानवता इतनी गिर गई है। अगर हम बच्चों से झूठ न बोले और उनके सामने अपने अज्ञान को स्वीकार कर लें तो हम धार्मिक बन जाएंगे और वे धर्म के मार्ग पर चलने लगेंगे। बच्चे तो सरल होते हैं- उनके ऊपर अपना तथाकथित ज्ञान मत थोपो।

मेरे नाना ने मुझसे मंदिर जाने के लिए या उनका अनुसरण करने के लिए कभी नहीं कहा। मैं जब कभी उनके पीछे जाता तो वे कहते कि ‘अगर तुम्हें मंदिर जाना है तो अकेले जाओ। मेरे साथ नहीं।’ मैं कई बार उनसे उनके अनुभव के बारे में पूछता किंतु वे टाल देते। जब वे मेरी गोद में अंतिम सांस ले रहे थे तो उन्होंने अपनी आंखें खोलीं और पूछा कि समय क्या है? मैंने कहा कि नौ बज रहे होंगे। एक क्षण चुप रह कर उन्होंने उस मंत्र का जाप किया---

‘नमो अरिहंताणं नमो नमो।

नमो सिद्धाणं नमो नमो।

ओम शांति शांति शांति।’

और वे सूर्य की प्रथम किरण में ओस की बूंद की भांति लुप्त हो गए।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (7)

मैं अपने नाना की मृत्यु के बारे में बात कर रहा था।

वे हमसे सदा के लिए बिछुड़ रहे थे किंतु वह विदाई भी बहुत सुंदर थी- उनके उस मंत्र के बोलने से वह और भी सुंदर हो गई थी। वे शायद हार्ट-अटैक से मर रहे थे। मैंने उनके कान में पूछा, ‘नाना! जाने से पहले क्या आप मुझसे कुछ कहना चाहते है या कोई अपनी निशानी देना चाहते हैं। जो सदा आपकी याद दिलाती रहे? उन्होंने अपने हाथ से अपनी अंगूठी निकाल कर मेरे हाथ में रख दी। वह अंगूठी अब किसी संन्यासी के पास है। मैंने उसे दे दी थी।

वह अंगूठी बड़ी रहस्यपूर्ण थी। नाना बार-बार उस अंगूठी के भीतर देखते रहते थे, किंतु अपने जीवन में उन्होंने किसी को यह देखने नहीं दिया कि उसके भीतर क्या है। उस अंगूठी के दोनों और कांच की खिड़की थी जिसमें से देखा जा सकता था। ऊपर एक हीरा लगा हुआ था। उसके भीतर महावीर की मूर्ति थी जो बहुत छोटी किंतु बहुत सुंदर

थी। वे दोनों खिड़कियां वास्तव में खुर्दबीन जैसी थी। इसके कारण वह छोटी सी मूर्ति बहुत बड़ी दिखाई देती थी। वह मेरे किसी काम की न थी। क्योंकि मेरे लाख कोशिश करने के बावजूद मुझे अफसोस है कि मैं महावीर से उतना प्रेम नहीं कर सका जितना मैं बुद्ध से करता हूं। ये दोनों समकालीन थे।

महावीर में किसी प्रकार की कोई कमी है जिसके कारण मेरा हृदय उनके लिए धड़कता नहीं है। महावीर बिल्कुल पत्थर की मूर्ति जैसे ही दिखाई देते है। बुद्ध अधिक जीवित दिखाई देते हैं। परंतु मेरे स्तर की जीवित अवस्था तक वह भी नहीं पहुंचे। इसीलिए मैं चाहता हूं कि वे जोरबा भी बनें। अगर कभी वे मुझे परलोक में मिल गए तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी। वे अवश्य मुझ पर चिल्लाएंगे और कहेंगे- ‘तुम चाहते थे कि मैं ज़ोरबा बन जाऊं।’ लेकिन मैं भी तो चिल्लाना जानता हूं। वे मुझे चुप नहीं करा सकते। मैं तो अपने ही ढंग पर चलूंगा। अगर वे जोरबा नहीं बनना चाहते तो उनकी मर्जी। किंतु फिर यह संसार समाप्त हो जाएगा और उनका कोई भविष्य नहीं रहेगा। अगर अपना भविष्य चाहते हैं तो उनको मेरी बात माननी पड़ेगी। उन्हें जोरबा बनना ही पड़ेगा। ज़ोरबा भी अकेले नहीं बच सकता। वह हिरोशिमा में समाप्त हो जाएगा। बुद्ध भी अकेले नहीं बच सकते। भविष्य में इन दोनों के अलग-अलग रहने की कोई संभावना नहीं है। मनुष्य के भावी मनोविज्ञान को अध्यात्म और भौतिकवाद, पूर्व और पश्चिम के बीच एक पुल बनना होगा। आज तक तो मुमुक्षु पूर्व जाते थे किन्तु अब एक जीवित बुद्ध का संदेश पश्चिम में पहुंचा है। इसके लिए एक न एक दिन संसार मेरा आभार मानेगा। किंतु पश्चिम के लिए बुद्ध को पहचानना मुश्किल है। क्योंकि उसने कभी बुद्ध को जाना ही नहीं। उसने समग्र बुद्ध को नहीं जाना। उन्होंने आंशिक बुद्धों को जाना है- जीसस को, पाइथागोरस को, डायोजनीज को। इसीलिए यह स्वाभाविक है कि वे मेरे बारे में इतना वाद-विवाद कर रहे हैं।

... मैं तुम्हें बता रहा था कि नाना के मरने से पहले अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु जो मुझे दी वह थी महावीर की मूर्ति जो अंगूठी में हीरे के पीछे छुपी हुई थी। आंखों में आंसू भरकर उन्होंने कहा था- ‘तुम्हें देने के लिए मेरे पास और कुछ नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार मेरा सब कुछ यहां रह जाएगा उसी प्रकार तुम्हारा भी एक दिन यहीं रह जाएगा, मेरा प्रेम उसके लिए है जिसने स्वयं को जाना है और वही मैं तुम्हें देता हूं।’

यद्यपि मैंने उस अंगूठी को अपने पास नहीं रखा फिर भी मैंने उनकी इच्छा को पूरा कर दिया है। मैंने उस एक को जाना है और उसे अपने भीतर जाना है। मेरे नाना जिस प्रकार महावीर से प्रेम करते थे उसी प्रकार मुझसे भी प्रेम करते थे। मेरे मन में उनके इस प्रेम के प्रति बहुत आदर का भाव है। नाना के अंतिम शब्द थे, ‘चिंता मत करो। मैं मर नहीं रहा।’ हम सब ने सोचा कि वे और कुछ कहेंगे किंतु इसके बाद उन्होंने सदा के लिए आंखें बंद कर लीं।

अभी भी मुझे वह मौन याद है। बैलगाड़ी नदी के पाट में से गुजर रही थी। मैं कुछ नहीं बोला क्योंकि मैं नानी को परेशान नहीं करना चाहता था। मैं कुछ समय तक तो चुप रहा लेकिन फिर मुझे नानी की चिंता हुई। मैंने उनसे कहा, ‘कुछ तो बोलो! यह मौन अब सहा नहीं जाता।’ तुम्हें विश्वास नहीं होगा कि उन्होंने उस समय एक गाना गाया। यहीं से मैंने सीखा कि मृत्यु का उत्सव मनाना चाहिए।

नानी ने वही गीत गाया जो उन्होंने उस समय गाया था जब उनको नाना से प्रेम हुआ था। यह भी अचरज की बात है कि आज से नव्वे वर्ष पहले के भारत में नानी में साहस था प्रेम करने का। आश्चर्य कि वे चौबीस साल की आयु तक अविवाहित रही। एक बार मैंने उनसे पूछा भी था कि, ‘इतनी सुंदर होते हुए भी आप इतनी उम्र तक अविवाहित कैसे रहीं?’ मैंने मजाक में कहा- ‘छत्तरपुर का राजा भी आप पर मोहित हो गया होगा, आपके

प्रेम में पड़ गया होगा।’ इस पर नानी बोलीं- ‘तुमने यह बात कैसे कह दी? हां! यह बिल्कुल ठीक है। उसको मुझसे प्रेम हो गया था किंतु मैंने उसे इनकार कर दिया, उसको ही नहीं दूसरों को भी।’

उन दिनों भारत में लड़कियों की शादी सात या आठ साल की आयु में हो जाती थी। क्योंकि माता-पिता को यह डर रहता था कि लड़की का किसी से प्रेम न हो जाए। किंतु मेरी नानी के पिता कवि थे। उनके गीत अभी भी खजुराहो तथा आसपास के गांवों में गाए जाते हैं। उन्होंने यह सोच रखा था कि जब तक उनकी बेटी राजी नहीं होगी तब तक वे उसकी शादी नहीं करेंगे। किंतु संयोगवश नानी का प्रेम नाना से हो गया। मैंने नानी से पूछा- ‘बड़े आश्चर्य की बात है कि आपने छतरपुर के राजा को तो इनकार कर दिया और इस गरीब आदमी से प्रेम किया! किस लिए? ये बहुत सुंदर नहीं थे- असाधारण भी नहीं थे।’ नानी ने कहा, ‘तुम गलत प्रश्न पूछ रहे हो। प्रेम के लिए ‘क्यों’ नहीं पूछा जाता।’ मैंने उनको देखा और बस!

मैंने उनकी आंखों को देखा और मेरे भीतर उनके प्रति गहरा विश्वास पैदा हुआ-अटूट विश्वास जो आज तक कंपित नहीं हुआ। मैंने नाना से भी पूछा-‘नानी कहती हैं कि उनका आपसे प्रेम हो गया था किंतु आप विवाह के लिए क्यों तैयार हो गए?’ उन्होंने कहा- ‘मैं भले ही बहुत बड़ा कवि या विचारक नहीं हूं किंतु सौंदर्य की परख तो मुझ में भी है।’ मैंने नानी से अधिक सुंदर स्त्री कहीं नहीं देखी। मैं स्वयं अंत तक उनसे बहुत प्रेम करता रहा।

अस्सी साल की आयु में जब वे मरीं तो मैं बंबई से तुरंत घर पहुंचा। सब लोग मेरा इंतजार कर रहे थे क्योंकि नानी ने उनसे कहा था कि जब तक मैं वहां न पहुंच जाऊं तब तक उनका अंतिम संस्कार न किया जाए और उन्होंने कहा था कि उनकी चिता को मैं आग लगाऊं। मैं वहां गया और उनके चेहरे पर से कपड़ा हटाया और वे वैसी की वैसी थीं- अति सुंदर! शायद और भी अधिक सुंदर क्योंकि अब वे बिल्कुल शांत थीं- जीवन की भागदौड़ समाप्त हो गई थी, सांस की आवाज भी- बंद हो गई थी। अब वे केवल उपस्थित मात्र थीं, उनकी चिता को आग लगाना मेरे लिए जीवन का सबसे मुश्किल काम था। वह तो ऐसा था जैसे कि लिओनार्डो या विन्सन्ट वानगॉग के सबसे सुंदर चित्र को आग लगाना। मेरे लिए तो वे मोनालीसा से भी अधिक मूल्यवान थीं और क्लीयोपेट्रा से भी अधिक सुंदर थीं। सौंदर्य की जो परख मेरे भीतर है वह उन्हीं की देन है। मैं आज जो हूं, जैसा हूं उसको बनाने में मेरी नानी का बहुत बड़ा हाथ है। उनके बिना तो मैं शायद एक दुकानदार, एक डाक्टर या एक इंजीनियर होता। क्योंकि जब मैंने मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा पास की तो मुझे विश्वविद्यालय में पढ़ाने के लिए मेरे पिता के पास पैसे न थे। क्योंकि वे गरीब थे। किंतु वे कर्ज लेकर भी मुझे पढ़ाना चाहते थे। मैं भी पढ़ना चाहता था किंतु मैं इंजीनियर या डाक्टर नहीं बनना चाहता था। मैंने उनसे कहा, ‘सच बात तो यह है कि मैं संन्यासी बनना चाहता हूं। मैंने कहा, ‘मैं तो विश्वविद्यालय में दर्शन पढ़ना चाहता हूं।’ इस पर उन्होंने कहा कि, ‘इसके लिए तो मैं कर्ज नहीं लूंगा।’ परंतु मेरी नानी ने मुझसे कहा-‘बेटा! तुम बेफिक्र होकर जो करना चाहते हो करो। मैं अपना सब कुछ बेच-बाचकर भी तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगी और तुमसे यह कभी नहीं पूछूंगी कि तुम कहां जाना चाहते हो, क्या करना चाहते हो या क्या पढ़ना चाहते हो।’ सो उन्होंने कभी कुछ नहीं पूछा। वे बराबर मुझे पैसा भेजती रहीं। जब मैं प्रोफेसर बन गया तो मैंने उन्हें कहा कि अब तो मैं स्वयं कमा रहा हूं और अब तो मुझे उनको पैसा भेजना चाहिए। उन्होंने कहा-‘इसकी तुम चिंता मत करो। इस पैसे का मैं क्या करूंगी। तुम इसका अच्छा उपयोग करोगे- इसका मुझे विश्वास है।’

मेरे पास हजारों पुस्तकें थी और लोग आश्चर्य करते थे कि उनको खरीदने के लिए मेरे पास कहां से इतना पैसा आता है। जब मैं हाईस्कूल का विद्यार्थी था उस समय भी मेरे पास हजारों पुस्तकें थीं। मेरा सारा घर पुस्तकों से भरा हुआ था। मेरी नानी मुझसे कहती थीं कि, ‘कभी किसी को मत बताना मैं तुमको पैसे देती हूं क्योंकि अगर तुम्हारे माता-पिता को पता लग गया तो वे भी मुझसे पैसा मांगना शुरू कर देंगे और उनको इनकार करना मेरे लिए मुश्किल होगा।’ वे मुझे बराबर पैसे भेजती रहीं। यहां तक कि जिस महीने वे मरीं उस महीने भी उन्होंने मुझे मनी-आर्डर भेजा। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उस सुबह उन्होंने चेक पर हस्ताक्षर किए थे और तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि वही आखिरी रकम थी उनके बैंक में। शायद उन्हें मालूम था कि अब उनके लिए कोई ‘कल’ नहीं होगा। मैं अनेक प्रकार से भाग्यवान हूं किंतु ऐसे नाना- नानी पाने के लिए विशेष भाग्यवान हूं- वे मेरे सुनहरे दिन थे।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (8)

मैं कोई पांच साल का रहा होऊंगा, जब मैंने पहली बार एक नंगे जैन मुनि को देखा जो मेरी नानी के घर पर आमंत्रित था। उसको देखकर मैं अपनी हंसी न रोक सका। मेरे नाना ने मुझे डांटते हुए कहा- ‘चुप करो! तुम अपनी शरारतों से लोगों को परेशान करते हो तो, मैं तुम्हें कुछ नहीं कहता, परंतु यदि तुमने मेरे गुरु के साथ कोई शैतानी की तो मैं तुम्हें क्षमा नहीं करुंगा। ये मेरे गुरु हैं। इन्होंने मुझे धर्म के आंतरिक रहस्यों की दीक्षा दी है।’

मैंने कहा- ‘आंतरिक रहस्यों से मेरा कोई संबंध नही है। मैं तो बाहरी रहस्यों के बारे में पूछना चाहता हूं। ये नंगे क्यों हैं? ये कम से कम चड्डी या लंगोटी तो पहन सकते हैं। यह सुनकर मेरे नाना भी हंस पड़े और उन्होंने कहा कि, तुम अभी समझते नही हो।’ मैंने उनसे कहा, ‘अच्छा! तो मैं खुद ही उनसे पूछ लेता हूं।’ तब मैंने अपनी नानी से कहा- क्या मैं इस पागल आदमी से कुछ प्रश्न पूछ सकता हूं? ये इस प्रकार पुरुष और स्त्रियों के सामने नंगे चले आते हैं?’ मेरी नानी ने हंस कर कहा- तुम्हें जो पूछना हो इनसे पूछो! नाना की बात का ख्याल मत करो। मैं तुम्हें इजाजत देती हूं। अगर वह कुछ कहें तो तुम मुझे इशारा कर देना। मैं उसे ठीक कर दूंगी।’

नानी बहुत ही अच्छी थीं, बहुत साहसी; वे मुझे पूर्ण स्वतंत्रता देने को तैयार थी। उन्होंने यह भी नहीं पूछा कि मैं क्या पूछना चाहता हूं? बस इतना ही कहा... ‘जो चाहो पूछो।’

गांव के सब लोग जैन मुनि के दर्शन करने के लिए एकत्रित हो गए थे। उनके उस तथाकथित उपदेश के बीच में मैं खड़ा हो गया। यह चालीस साल पहले की बात है और तब से लेकर आज तक मैं निरंतर इन मूढ़ों से लड़ाई करता रहा हूं। उस दिन से जो लड़ाई शुरू हुई उसका अंत मेरी मृत्यु के साथ ही होगा। शायद तब भी समाप्त न हो- मेरे लोग इसे जारी रखेंगें। मैंने तो बहुत ही सरल प्रश्न पूछे थे, किंतु वह जैन मुनि उनका उत्तर न दे सका। मुझे बड़ी हैरानी हुई और मेरे नाना को बहुत शर्म आई। किंतु नानी ने मेरी पीठ थपथपाई और शाबाशी दी।

मैंने तो सीधे सरल प्रश्न पूछे थे। मैंने पूछा था, ‘आप दोबारा जन्म क्यों नहीं लेना चाहते?’ जैन धर्म का यह सरल सा प्रश्न है क्योंकि जैन धर्म का एकमात्र उद्देश्य है ‘दोबारा जन्म न लेना।’ इसलिए मैंने उनसे पहला बुनियादी प्रश्न यही

पूछा कि क्या आप दोबारा कभी भी पैदा होना नही चाहेंगें? उन्होंने उत्तर दिया, ‘नहीं, कभी नहीं। फिर मैंने पूछा, ‘आप आत्महत्या क्यों नहीं कर लेते? आप सांस क्यों ले रहे हैं? आप क्यों खा रहे हैं? क्यों पानी पी रहे हैं? आप आत्महत्या क्यों नहीं कर लेते? छोटी-छोटी बातों के लिए क्यों इतना परेशान हो रहे हैं?’ उस समय उस जैन मुनि की आयु चालीस साल के लगभग थी। मैंने कहा- ‘इस प्रकार तो आप और चालीस साल तक या उससे भी अधिक जीवित रहेंगें।’

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि जो लोग कम खाते हैं वे अधिक समय तक जीवित रहते हैं। यह तो प्रमाणित हो चुका है कि किसी भी प्राणी को अगर उसकी आवश्यकता से अधिक खिलाया जाए तो वह मोटा और सुंदर हो जाता है किंतु जल्दी मर जाता है। अगर उसकी आवश्यकता से आधा खिलाया जाए तो वह सुंदर तो नहीं दिखाई देगा किंतु वह औसत आयु से दौगुनी आयु तक जीवित रहेगा। इसका अर्थ है आधा खाना और दौगुनी आयु- दौगुना खाना और आधी आयु। ये सब तथ्य उस समय मुझे मालूम नहीं थे। मैंने जैन मुनि से पूछा, ‘अगर आप दोबारा पैदा नहीं होना चाहते तो आप जीवित क्यों हैं? क्या केवल मरने के लिए? तब आप आत्महत्या क्यों नहीं कर लेते?’ ऐसा प्रश्न उससे शायद ही कभी किसी ने पूछा होगा। शिष्टाचार की इस दुनिया में कभी कोई वास्तविक प्रश्न नहीं पूछता और आत्महत्या का प्रश्न सबसे अधिक वास्तविक है।

मार्शल कहता है कि आत्महत्या ही एक मात्र फिलॉसफी का प्रश्न है। उस समय मैं मार्शल को नहीं जानता था। उस समय तो शायद न मार्शल था न उसकी पुस्तक ही थी। परंतु जैन मुनि से मैंने यह अवश्य कहा, ‘अगर आप की इच्छा है कि आप दोबारा पैदा न हों तो आप जीवित क्यों हैं? आप क्यों जी रहे हैं? आत्महत्या क्यों नहीं कर लेते? जबकि इसके बारे में मैं अधिक नही जानता, फिर भी कोई न कोई रास्ता अवश्य बता सकता हूं- जैसे कि आप गांव की पहाड़ी के ऊपर से कूद सकते हैं या नदी में डूब सकते हैं।’

वह नदी गांव से तीन मील दूर थी। वह इतनी गहरी और इतनी चौड़ी थी कि उसे तैरकर पार करने में मुझे बड़ा मजा आता था। पार करते समय कई बार तो मुझे लगा कि बस अब मेरा अंत आ गया है, अब मैं दूसरे किनारे पर नहीं पहुंच सकता। इस बात की अधिक संभावना होती थी कि मैं दूसरे किनारे पर पहुंच नहीं सकूंगा। बरसात के दिनों में तो वह नदी समुद्र जैसी बड़ी हो जाती थी, उस समय उसका दूसरा किनारा दिखाई ही नहीं देता था। जब उसमें बाढ़ आती तो मैं उसमें कूद पड़ता- दूसरे किनारे पर पहुंचने के लिए या मरने के लिए। दूसरे किनारे पर पहुंचना तो असंभव-सा ही मालूम होता।

मैंने जैन मुनि से कहा- ‘बरसात में आप मेरे साथ नदी में कूद सकते हो। मुझे तो तैरना आता है। इसलिए मैं तो दूसरे किनारे पर पहुंच जाऊंगा। आप डूब मरना।’ उन्होंने इतने गुस्से से मुझे देखा कि मुझे कहना ही पड़ा, ‘आप में अभी भी इतना क्रोध है, आपको दोबारा जन्म लेना पड़ेगा। इस प्रकार से संसार से मुक्ति नही हो सकती। आप इतने गुस्से से मुझे क्यों देख रहे हैं? मेरे प्रश्नों का उत्तर शांति से दीजिए। अगर आप नहीं जानते तो कह दीजिए कि आप नहीं जानते लेकिन इतना क्रोध मत कीजिए।’

उसने कहा, ‘आत्महत्या पाप है। इसलिए मैं आत्महत्या नहीं कर सकता। मैं दोबारा जन्म भी नहीं लेना चाहता। धीरे-धीरे त्याग करके मैं उस स्थिति को प्राप्त कर लूंगा।’ मैंने कहा- ‘लेकिन आपके पास है क्या? आप तो नंगे खड़े हैं। आपके पास तो कुछ नही है!’ इस पर मेरे नाना ने मुझे चुप कराना चाहा। मैंने अपनी नानी की ओर इशारा करते हुए उनसे कहा- ‘मैंने नानी से इजाजत ले ली थी- अब कोई भी मुझे रोक नहीं सकता- आप भी नहीं। मैंने नानी से इसलिए पूछ लिया था क्योंकि मुझे डर था कि अगर मैंने आपके गुरु के उपदेश के बीच में टोका तो आप नाराज हो जाएंगे और नानी ने कहा था कि, ‘मुझे इशारा कर देना। मैं जैसे ही उनकी ओर देखूंगी, वे चुप हो जाएंगे।’

आश्चर्य! ठीक ऐसा ही हुआ। नानी ने देखा भी नही और नाना चुप हो गए। बाद में मैं और नानी, दोनों बहुत हंसे। मैंने कहा- ‘उन्होंने आपकी ओर देखा भी नही।’ नानी ने कहा, ‘उनको डर था कि कहीं मैं उन्हें यह न कहूं कि बच्चे की बात में दखल मत दो। इसलिए उन्होंने मेरी ओर देखा ही नहीं।’ नाना तो आंख बंद करके बैठ गए मानों ध्यान में हों। मैंने कहा- ‘नाना! आप तो क्रोध में जल रहे हो और आप दिखा रहे हो कि आप ध्यान कर रहे हो। आपका गुरु मुझसे नाराज है क्योंकि वह मेरे प्रश्नों से नाराज है। आप नाराज हैं क्योंकि आपका गुरु मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सका। किंतु मैं आपसे कहता हूं कि इस आदमी में कोई दम नहीं। यह मूर्ख है।’

उस समय मैं चार-पांच साल का बच्चा था। उसी समय से मैं ऐसी भाषा में ही बोलता हूं। मैं मूढ़ को एकदम पहचान लेता हूं। मेरी दृष्टि मानसिक-अपंगता को तुरंत देख लेती है।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (9)

कल मैं आपको बता रहा था उस घटना के बारे मे जो एक जैन मुनि और मेरे बीच घटी थी। कहानी वहीं पर समाप्त नही हुई। दूसरे दिन फिर उसे मेरे नाना के घर भिक्षा मांगने के लिए आना था क्योंकि उस गांव मे मेरे नाना ही एक मात्र जैन मुनि थे और जैन मुनि केवल जैन घर से ही भिक्षा मांग सकता है, दूसरो से नही। अतः न चाहते हुए भी उन्हें हमारे घर आना पड़ा।

मैं और नानी, हम दोनो उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। भोजन करने के बाद बड़ी सावधानी से उसने थोडे़ से शब्द कहे। उसने अस्तित्व के सौंदर्य के बारे में कुछ कहा-यह सोचकर कि उसके बारे में तो कोई प्रश्न नही उठेगा और न कोई झंझट होगी। लेकिन मैं तो खड़ा हो गया, और उससे पूछा-‘इस सुन्दर विश्व का निर्माण किसने किया है?’ जैन ईश्वर को नहीं मानते, लेकिन फिर भी उसको नास्तिक धर्म नही कहा जा सकता। जैन धर्म शुद्ध धार्मिकता है। इसलिए जब मैंने उस जैन मुनि से पूछा; इस सौन्दर्य का सृजन किसने किया है? उसने उत्तर दिया, ‘किसी ने नही।’ इस पर मैंने पूछा, अगर किसी ने इसका सृजन नही किया है तो यह बना कैसे?’ जैन मुनि ने इधर-उधर देख कर मुझ से पूछा, ‘क्या तुम्हे मालूम है कि ये विश्व कैसे बना? मैंने उत्तर दिया कि यह तो सदा से ही है। इसको किसी ने बनाया नही।’ पैंतालीस साल बाद भी, समाधि प्राप्त करने या न करने के बाद भी-आज भी मैं इस बात कि पुष्टि करता हूं। बहुत अध्ययन करके और उसे भूलकर और उसको जानकर ‘जो है’ तथा उसके प्रति ध्यान न देकर, मै अभी भी इसी बात को कहता हूं, जो उस समय कही थी, जब मैं छोटा सा बच्चा था कि-यह विश्व सदा से है यह कहीं से नही आया और न ही किसी ने इसका सृजन किया।

वह जैन मुनि तीसरे दिन नही आया। वह हमारे गांव से दूसरे गांव चला गया जहां पर जैन परिवार थे। परंतु मैं उसका अत्यंत आभारी हूं, क्योंकि अनजाने ही उसने एक छोटे बच्चे को सत्य की यात्रा आरंभ करा दी। तब से लेकर आज तक सैंकड़ों विद्वानों, असंख्य पंड़ितों और महात्माओं से मिला हूं और उन सबसे मैंने यही प्रश्न पूछा है, जो उस छोटे से बच्चे ने पूछा था, और इसका कोई उत्तर नही दे सका।

सच तो यह है कि वास्तविक प्रश्न का कभी उत्तर नही दिया गया। क्योंकि वास्तविक प्रश्न का एकमात्र उत्तर होता है- ‘मौन’ किसी पंडित, साधु या महात्मा का मौन नही, बल्कि तुम्हारा अपना मौन। दूसरे का मौन नही, अपने भीतर जो उपजता है, वह। इसके अतिरिक्त और कोई मौन नही। अपने भीतर का मौन ही तुम्हारा उत्तर है और उनका भी उत्तर है, जो अपने प्रेम के कारण तुम्हारे मौन में समा गया है।

इस संसार में ऐसे बहुत से मौन लोग हो चुके हैं जो दूसरों की कोई सहायता नहीं कर सके। जैन उनको ‘अरिहंत’ कहते हैं और बौद्ध उन्हें ‘अर्हत’ कहते हैं। दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। केवल भाषा का अन्तर है। एक प्राकृत्त है और दूसरी पाली ‘अरिहंत’ और ‘अर्हत’ दोनों एक ही शब्द हैं। ‘अरिहंत’ और ‘अर्हत’ तो बहुत हुए है। इनको अपने उत्तर तो मिल गए, किन्तु ये उनकी घोषणा न कर सके। और जब तक जोर से इसकी घोषणा न की जाए तब तक तुम्हारे उत्तर का कोई मूल्य नही है। प्रश्नों से भरे हुए लोगों के समूह में केवल एक व्यक्ति को उत्तर मिलता है। अरिहंत और अर्हत की मृत्यु के साथ ही उसका मौन भी समाप्त हो जाता है।

असली सद्गुरु स्वयं तो उत्तर जानता ही है, वह दूसरो को भी सहायता करता है उसको जानने में। उसका ज्ञान निजी नही है, उस तक ही सीमित नही है, वह उन सबको देने के लिए तैयार रहता है, जो उसे ग्रहण करने को उत्सुक हैं। मुझे उत्तर मिला है, लेकिन प्रश्न तो मेरे साथ कई जन्मों से, कई शरीरों मे चल रहा था और उत्तर अब पहली बार घटा है। वह घटा, क्योंकि मैं निर्भय होकर निरंतर इस प्रश्न को पूछता ही रहा।

मैं इन प्रश्नों को इसलिए याद कर रहा हूं ताकि तुम्हें यह बता सकूं कि जब तक दूसरों से समग्रता से न पूछ लिया जाए तब तक स्वयं से नही पूछा जा सकता। जब सब द्वार बंद हो जाते हैं तब हम स्वयं के भीतर मुड़ते हैं। वहीं उत्तर मिलता है। वह लिखा हुआ नही है। वहां कोई बाइबिल नही है, कोई तोहरा, कोई कुरान, कोई गीता नही है, वहां कुछ भी लिखा हुआ नही है। न वहां पर परमात्मा है, न ही वहां पर परम पिता है, जो कहे कि, ‘शाबाश बेटे! तुम घर आ गए। मैं तुम्हारें सब पाप क्षमा कर दूंगा।’ वहां पर तो पूरी तरह से अभिभूत कर देने वाला जबर्दस्त मौन है। वह मौन इतना घना होता है कि लगता है कि उसको छू लें।

जब वह जैन मुनि हमारे गांव से भाग गया तो मैं और नानी कई दिन तक हंसते रहे। उस समय वह 50 वर्ष की थीं किंतु उत्साह और फ्रुल्लता में बिल्कुल बच्चे जैसी थीं। उन्होंने मुझ से कहा- ‘तुमने ठीक किया।’ अभी भी मुझे उस भागते हुए जैन मुनि की पीठ दिखाई दे रही है। जैन मुनि सुन्दर नहीं होते। हो नही सकते, क्योंकि उनका सारा दृष्टिकोण ही कुरुप है।

मैंने तो सदा सौंदर्य से प्रेम किया है-जहां कहीं भी सौंदर्य दिखायी दिया- तारों में, मनुष्य के शरीर में, फूलों में, पक्षी की उड़ान में- मैं तो सौंदर्य का उपासक हूं। मेरी समझ में यह नही आता कि अगर तुम्हे सौंदर्य दिखाई नही देता तो तुम सत्य कैसे जान सकते हो? रास्ता और मंजिल अलग-अलग नहीं है- रास्ता ही अंत में मंजिल बन जाता है। प्रथम कदम ही अंतिम कदम है। जैन मुनि से जो सामना हुआ, तो उसके बाद में हजारों लोगों का मैंने सामना किया-हिंदू, मुसलमान, ईसाई सबका। लोगों से बहस करने को, मैं कुछ भी करने को तैयार था।

तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि 27 वर्ष की आयु में समाधि प्राप्त करने के बाद मैंने अपनी सुन्नत करायी केवल सूफीमत में प्रवेश पाने के लिए-वे लोग बिना सुन्नत के लोगों को स्वीकार नहीं करते थे। इसलिए मैंने उनसे कहा ‘अच्छा! करो यह शरीर अंत मे नष्ट तो होने ही वाला है, और तुम तो केवल थोड़ी सी चमड़ी काटने वाले हो।’ उन्हें मेरी इस बात पर विश्वास ही नही हो रहा था। सुन्नत के बाद जब

मैंने उनसे तर्क करना आरम्भ किया तो उन्होंनें मुझ से कहा ‘सुन्नत कराने के लिए तुम एकदम तैयार हो गए, लेकिन हम जो भी कहते हैं उसे तुम स्वीकार नहीं करते।’ मैंने कहा- मेरा यही तरीका है। अनावश्यक और गौण बातों को मैं स्वीकार कर लेता हूं, लेकिन सारभूत और महत्त्वपूर्ण बातों के लिए मैं अड़ जाता हूं, उनके लिए कोई भी मुझसे हां नही करा सकता।’ उन्होंनें मुझे सूफी-मत से निष्कासित कर दिया। ‘मैंने उनसे कहाः मुझे निकाल कर तुमने यह सिद्ध कर दिया कि तुम लोग नकली सूफी हो। असली सूफी तो तुम निकाल रहे हो। मैं तुम लोगों को निष्कासित करता हूं।’ वे हैरान होकर एक दूसरे की तरफ देखने लगे। लकिन सच बात यही थी।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (10)

मैं जब राजकुमारी डायना की शादी के जलूस की तस्वीरें देख रहा था तो मुझे उसमें घोड़े सबसे सुंदर लगे। उन नाचते हुए घोड़ों को देखकर मुझे अपने घोड़े की याद आयी। मेरे पास एक नहीं वरन चार घोड़े थे। एक घोड़ा तो मेरा अपना था जिस पर और कोई सवार नही हो सकता था- मेरे नाना भी नहीं। हां! मैं दूसरों के घोड़ों की सवारी करता था। मेरे नाना और नानी का एक-एक घोड़ा था। भारतीय गांव में औरत का घोड़े की सवारी करना कुछ अजीब सा लगता था, किंतु नानी तो विचित्र थीं ही। चौथा घोड़ा था भूरा का, जो सदा थोड़े फासले पर मेरे पीछे बंदूक के साथ चलता था। वह अंग्रेज दिखायी देता था, इसलिए उसको ‘भूरा’ कहते थे।

मैंने तो अपने जीवन में कभी किसी का कोई नुकसान नहीं किया, किंतु बचपन से ही मेरी रक्षा के लिए एक पहरेदार मेरे साथ रहता था। भूरा ने जो खेल आरंभ किया, वह आज तक चल रहा है। मेरे पहरेदार या तो मेरे आगे रहते हैं या पीछे।

भूरा का असली नाम ‘भूरा’ नहीं था। वह बहुत गोरा था और बिल्कुल अंग्रेज दिखायी देता था इसलिए सब लोग उसको ‘भूरा’ कहते थे। भूरा को मेरी निगरानी करनी पड़ती क्योंकि जब मैं बच्चा था तो दो बार मेरे अपहरण की कोशिश की गयी थी। अब मेरी समझ में आता है कि ऐसा क्यों किया गया था? मेरे नाना जबकि बहुत अमीर नहीं थे फिर भी उस गांव में वे बहुत अमीर माने जाते थे। उस समय भारत में अमीरों के बच्चों का अपहरण करके उनके मां-बाप को डरा-धमकाकर कि बच्चे की जान खतरे में है, फिरौती की रकम मांगी जाती थी। दो बार मुझे चुराने की कोशिश की गयी लेकिन अपने घोड़े; और भूरा के कारण मैं बच गया। मेरे नाना ने भूरा से कहा हुआ था कि खतरे के समय वह हवा में गोली चला सकता है, किंतु जो लोग मुझे चुराने की कोश्शि करें, उन पर नहीं क्योंकि ऐसा करना जैन धर्म के विरुद्ध होगा। किंतु मेरी नानी ने भूरा के कान में कहा था कि, ‘अगर जरूरत पड़े तो उन लोगों पर भी गोली चला देना, नहीं तो मैं तुम पर गोली चला दूंगी।’ वे बहुत अच्छी निशानेबाज थीं। उनका निशाना कभी चूकता नहीं था।

नानी का हर काम का ब्यौरा ठीक-ठीक होता और उन्हें जो भी कहना होता वे सीधे स्पष्ट ढंग से कहतीं। प्रायः लोग अपनी बात को इतना घुमा-फिरा कर कहते हैं कि पता ही नहीं चलता कि वे कहना क्या चाहते हैं? किंतु नानी की तो हर बात गणित की तरह स्पष्ट होती। इसलिए उन्होंने भूरा से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि, ‘अगर तुम कभी इस बच्चे के बिना घर आए यह बताने के लिए कि उसको चुरा लिया गया है, तो मैं तत्क्षण तुम्हें गोली मार दूंगी।’

दो बार मैं अपहृत होने से बच गया। एक बार तो मेरा घोड़ा मुझे घर ले आया और दूसरी बार भूरा को हवा में गोली चलानी पड़ी। अगर जरुरत पड़ती तो वह अपहरण की कोशिश करने वाले आदमी पर भी गोली चला देता किंतु उसकी जरुरत नहीं हुई और इस प्रकार उसने अपने आप को और मेरे नाना के धर्म को बचा लिया।

बड़ी अजीब बात है कि तब से कई बार मेरी जान खतरे में पड़ी। कई बार मुझे मार डालने की कोशिश की गयी। मैंने तो कभी किसी का कोई नुकसान नहीं किया। इसलिए मुझे बड़ा आश्चर्य होता है यह जानकर कि लोग मेरे जीवन को समाप्त करना चाहते हैं। इससे उन्हें क्या मिलेगा? अगर एक बार भी वे मुझे समझा दें कि इससे उन्हें क्या लाभ होगा तो मैं अभी इसी क्षण सांस लेना बंद कर दूंगा।

एक बार मैंने एक आदमी से पूछा भी कि वह मुझे क्यों मारना चाहता था? बाद में वह मेरा संन्यासी बन गया था। उस समय बंबई के ‘वुडलैंड’ में मैं अकेले ही अपने कमरे में लोगों को संन्यास देता था। इसलिए मैंने उससे कहा कि, ‘इस समय हम दोनों अकेले हैं। पहले तुम संन्यास ले लो और उसके बाद मुझे बताओ कि तुम क्यों मुझे मारना चाहते थे? क्या उद्देश्य था? अगर तुम अपने उद्देश्य के औचित्य को सिद्ध कर दो तो मैं अभी यहीं अपने प्राण त्याग दूंगा।’ यह सुनकर वह रोने लगा और उसने मेरे पैर पकड़ लिए। मैंने उसे कहा कि, ‘यह सब नहीं चलेगा। तुम्हें मुझे समझाना होगा कि मुझे मार डालने का उद्देश्य क्या था?’ उसने कहा- ‘मैं क्या बताऊं? बताने को कुछ है नहीं। मैं मूर्ख था! मैं सनक गया था।’ शायद लोगों की इस सनक के कारण ही मुझ जैसे निरीह व्यक्ति पर कई बार हमले हुए और मुझे जहर भी दिया गया।

मेरी नानी भी कभी-कभी सनक जाती थीं, किंतु उनकी झल्लाहट से मैं परेशान नहीं होता था। एक बार मैंने उन्हें अपनी बंदूक निकालकर नाना के कमरे की ओर जाते देखा, किंतु मैं चुपचाप बैठा रहा- जो काम कर रहा था, करता रहा। यह देखकर नानी ने मुझ से पूछा- ‘तुम्हें डर नहीं लगता?’ मैंने कहा, ‘तुम्हें जो करना है, करो। मुझे अपना काम करने दो!’ नानी ने हंसते हुए कहा, तुम अजीब लड़के हो! मैं तुम्हारे नाना को मारने जा रही हूं और तुम बैठे हुए ताश के पत्तों का घर बना रहे हो?’ मैंने कहा, ‘तुम जाओ और उनको मार डालो। मुझे चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। मुझे परेशान मत करो।’ यह सुनकर नानी मेरे पास बैठ गई और ताश का महल बनाने में मदद करने लगीं। परंतु भूरा को उन्होंने इन शब्दों में स्पष्ट आदेश दे दिया था कि, ‘अगर कोई मेरे बच्चे को हाथ भी लगाए तो तुम केवल हवा में गोली नहीं चलाओगे। जैन धर्म का अहिंसा का यह नियम मंदिर तक ही सीमित है, सारा संसार जैन नहीं है। इसलिए बाजार में तो हमें वैसा ही व्यवहार करना पड़ेगा जैसा दूसरे लोग करते हैं।... जब कोई डाकू मेरे बच्चे को चुराने की कोशिश करे तो उससे उसी भाषा में बोलना जो वह समझता हो। उस समय जैन धर्म के नियमों को भूल जाना।’ मेरे नाना ने भी जब यह सुना तो उन्होंने अपनी आंखें बंद कर लीं और ‘नमोकार’ का मंत्र जपने लगे। इस पर मैं हंस पड़ा और नानी भी हंसी। भूरा केवल मुस्करा दिया सब लोग स्थिति को समझ गए कि नानी सदा की भांति ठीक ही थीं।

मेरी नानी में सदा ठीक होने का यही गुण था। उसने भूरा से कहा, ‘डाकू तो जैन नहीं हैं। तो फिर हवा में गोली चलाने से क्या होगा? (नाना की ओर इशारा करके) इनको अपने मंत्र का जाप करने दो। इनको कौन कह रहा है गोली चलाने को? तुम तो जैन नहीं हो।’ भूरा की तो शामत आ गई। मैं प्रार्थना करने लगा- किसकी मुझे मालूम नहीं। क्योंकि जैन परमात्मा में विश्वास नहीं करते। मुझे कोई विश्वास सिखाया नहीं गया था किंतु फिर भी मैं प्रार्थना कर रहा था कि, ‘हे भगवान! अगर तुम कहीं हो तो इस आदमी की नौकरी न जाए।’ उस परिस्थिति में भी मैं यही कह रहा था कि ‘अगर तुम हो।’

सौभाग्य से भूरा जैन नहीं था इसलिए उसे मेरी नानी के आदेश को मानने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

मेरे सब भाई-बहिन- जो कि लगभग एक दर्जन हैं- वे सब मेरी मां को ‘मां’ कहते हैं किंतु मैं अकेला उसे ‘भाभी कहता हूं। मेरे सब चाचा उसे भाभी कहते थे जो कि बिल्कुल ठीक था। किंतु मेरा उसे ‘भाभी’ पुकारने का कारण यह था कि मैं अपनी नानी को अपनी मां मानता था। बचपन के उन दिनों में नानी को अपनी मां समझने के बाद मैं किसी और को कैसे अपनी मां मान सकता था। मैं जानता हूं कि नानी मेरी मां नहीं थी किंतु उन्हांने ही मुझे मातृत्व का दुलार दिया। मेरी असली मां तो मुझसे कुछ दूर रही। मेरी नानी मर गई हैं लेकिन फिर भी मैं उन्हें ‘भाभी’ ही कहता हूं। मैं उन्हें मां नहीं कह सकता। क्योंकि ऐसा कहना एक प्रकार से मेरी नानी के प्रति विश्वासघात होगा।

मेरी नानी ने भी कई बार मुझे कहा था कि, ‘अपनी मां को भाभी क्यों कहते हो- उसे मां कहो।’ मैं इस बात को टाल देता था।

मेरी नानी तो मेरी आत्मा का अंग थीं। वे मुझसे बहुत प्रेम करती थी। एक बार जब एक चोर हमारे घर में घुस आया तो वे निहत्थी उसके साथ लड़ीं- तब मुझे मालूम हुआ कि वे कितनी भयंकर भी हो सकती थीं। अगर मैं बीच-बचाव न करता तो वे तो उस बेचारे आदमी को मार ही डालतीं। मैं रो रहा था और कह रहा था, ‘नानी! आप क्या कर रही हैं? इसको छोड़ दीजिए।’ मेरे रोने और कहने पर उन्होंने उस आदमी को छोड़ दिया। वे उसकी छाती पर बैठकर उसके गले को दोनों हाथों से दबा रही थीं। थोड़ा सा और दबाती तो बेचारा मर ही जाता।

दो बार मुझ पर आक्रमण (हमला) हुआ। मुझे तो बड़ा मजा आया! मेरे लिए वह रोमांचक अनुभव था। मेरे चरित्र की विशेषता यही है कि मुझे जोखिम उठाकर या खतरे का सामना करके बहुत मजा आता है। मैं अपने घोड़े पर सवार होकर नाना के जंगलों में घूमा करता था। नाना ने वायदा किया था कि वे अपना सब कुछ अपनी वसीयत में मेरे नाम कर देंगे और उन्होंने ऐसा किया भी। उन्होंने और किसी को एक पैसा भी नहीं दिया। उनके पास हजारों एकड़ जमीन थी। उन दिनों उसका कोई मूल्य नहीं था। मूल्य से मुझे कोई मतलब नहीं था। उसका सौंदर्य अनुपम था। वे बड़े-बड़े वृक्ष, बड़ी-सी झील और गर्मी में पके हुए आमों की सुगंध! मैं वहां अपने घोड़े पर इतनी बार जाता था कि घोड़ा भी रास्ते को पहचान गया था।

अभी भी मैं वैसा ही हूं। अगर कोई जगह मुझे पसंद न आए तो मैं दोबारा वहां नहीं जाता। मैं मद्रास केवल एक बार गया था। फिर दोबारा नहीं क्योंकि मुझे वह शहर और वहां की भाषा बिल्कुल पसंद नहीं आई। उस भाषा को सुनकर ऐसा लगता था जैसे कि सब लोग एक दूसरे से झगड़ा कर रहे हों। मुझे ऐसी भाषा पसंद नहीं है इसलिए मैंने अपने मेजबान से कहा कि, ‘उनके यहां ठहरने का यह मेरा पहला और अंतिम अवसर है।’ उन्होंने पूछा कि, ‘ऐसा क्यों कह रहे हैं कि यह अंतिम बार है।’ मैंने कहा कि, ‘मुझे मद्रास पसंद ही नहीं आया।’ हां! कृष्णमूर्ति को मद्रास पसंद है। वे हर वर्ष वहां जाते हैं। उनका जन्म मद्रास के निकट हुआ था और वे हैं भी तमिल। वे मद्रासी हैं इसलिए उन्हें मद्रास पसंद होना ही चाहिए। किंतु मैं क्यों वहां जाऊं?

मैं बहुत जगहों पर घूमता था। मुझे सदा यहां वहां जाने में बड़ा मजा आता था।

राजकुमारी डायना के विवाह के जलूस के घोड़ों को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इंग्लैंड में भी ऐसे सुंदर घोड़े हो सकते हैं! उनकी महारानी तो देखने में निपट घरेलू है और राजकुमार चार्ल्स भी राजकुमार जैसा दिखाई नहीं देता। शेष सब मेहमान भी वैसे ही थे। उनका सबसे बड़ा पुरोहित- जिसको ‘दी आर्चबिशप ऑफ केंटरबरी’ कहते

हैं- अजीब ही दिखाई देता है। मुझे तो केवल वे घोड़े ही अच्छे लगे! कितनी खुशी से वे नाच रहे थे। उनको देखते ही मुझे अपने घोड़े की याद आई; बचपन के वे दिन मेरे सामने साकार हो उठे- वह सुंदर झील, घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ मैं और वे जंगल- अभी मुझे नीम के पेड़ों की और आम की तथा मेरे घोड़े की सुगंध आ रही है। उन दिनों मुझे सुगंध की ‘एलर्जी’ नहीं थी। अगर थी भी तो उस समय मुझे उसका पता नहीं था। समाधि प्राप्त करने के बाद मुझे इस ‘एलर्जी’ का पता लगा।

मैं अस्तित्व से यही कहता हूं कि इस ‘एलर्जी’ को अब दूर कर दो ताकि मैं घोड़े की सवारी कर सकूं- वह दिन मेरे और मेरे संन्यासियों के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण होगा!

मेरी एक तस्वीर है जिसमें मैं काश्मीरी घोड़े पर सवार हूं। सारी दुनिया में इस तस्वीर को प्रकाशित किया जा रहा है। मैं सचमुच सवारी नहीं कर रहा था। मैं तो उस फोटोग्राफर के कहने पर घोड़े पर बैठ गया था। वह सारा सामान लेकर आया था। मुझे वह आदमी बहुत प्रिय था इसलिए उसने जो कहा मैंने कर दिया। उसमें मेरी मुस्कराहट भी नकली है। अगर इस ‘एलर्जी’ से छुटकारा हो जाए तो मैं बचपन की वैसी ही दुनिया फिर से बना लूं। किंतु नानी को कहां से लाऊंगा? ----...

ओशो का स्वर्णिम बचपन(11)

जिस गांव में मेरा जन्म हुआ था वह ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा नहीं था। वह एक छोटी सी रियासत थी जिस पर एक मुसलमान बेगम शासन करती थी। देखने में वह भी इंग्लैंड की महारानी जैसी ही थी। वह बुर्का पहनती थी। कभी-कभी वह हमारे गांव आती थी और सारे गांव में केवल हमारा ही घर ऐसा था जहां पर वह ठहर सकती थी। इसके अतिरिक्त उसका नानी से बहुत प्रेम था। मैंने पहली बार इस बेगम को बिना बुर्के के तब देखा जब वह नानी से बात कर रही थी। उसको देखकर मुझे तो विश्वास ही नहीं हुआ कि यह अति साधारण सी दिखाई देने वाली औरत बेगम है। तब मेरी समझ में आया कि ऐसी औरतों को पर्दे के भीतर क्यों रहना चाहिए? वह कुरूप थी लेकिन उसकी मुस्कान सुंदर थी। यह संसार भी विचित्र है। बहुत से सुंदर लोग जब मुस्कराते हैं तो कुरूप दिखायी देते हैं। मैंने बचपन में महात्मा गांधी को देखा था। वे बिल्कुल कुरूप थे किंतु वे मुस्कराना जानते थे। उनकी मुस्कान बहुत ही सुंदर थी। मुझे तो बस उनकी मुस्कान ही पसंद है, उनकी दूसरी सब बातें तो बेकार हैं।

मेरा गांव भोपाल रियासत में था और भोपाल की बेगम कभी-कभी हमारे यहां आती थी। वह मेरी नानी से इतनी प्रभावित थी कि उसने नानी को आगामी उत्सव के लिए भोपाल निमंत्रित किया, मेरी नानी ने कहा कि,’मैं अपने इस छोटे बच्चे को छोड़कर नहीं जा सकती।’ इस पर बेगम ने कहा कि,’इसको भी अपने साथ ले आना। मुझे भी यह बच्चा बहुत प्यारा लगता है।’ किंतु उस समय उस औरत को देखकर बहुत डर लगता था। लेकिन बेगम के मेहमान बन कर भोपाल जाना और वहां उसके सुंदर महल में रहने की उत्सुकता के कारण मैं अपनी नानी के साथ उस वार्षिक उत्सव को देखने गया।

वह महल तो सचमुच बहुत ही सुंदर था। वह पांच सौ एकड़ जमीन से बना था और पांच सौ एकड़ की उसकी झील थी। बेगम ने हम मेहमानों की बहुत खातिर की। बाद में उस महल के बारे में एक अजीब संयोग की बात हुई। जिस दिन मैं हिमालय में रहने के लिए तैयार हो गया उसी दिन उस बेगम के बेटे ने फोन किया कि अगर हमें पसंद हो तो वे अपना महल

हमें देने को तैयार हैं। मुझे तो इस पर विश्वास ही नहीं हुआ। उनकी तो सारी रियासत का विलय भारत में हो चुका था और उनके पास केवल एक हजार एकड़ जमीन और वह महल ही बचा था।

भारत में भोपाल की झील सबसे बड़ी झील है। वह इतनी बड़ी है कि संसार में उतनी बड़ी दूसरी झील शायद ही हो। किंतु मैंने उत्तर दिया कि,’अब तो बहुत देर हो गयी है। मैंने हिमालय जाने का निर्णय कर लिया है। भोपाल के राजकुमार और उसकी मां से कहना कि मैं उनका बहुत आभारी हूं।’सात साल से मैं कोशिश कर रहा था कुछ हजार एकड़ जमीन लेने की किंतु ये राजनीतिज्ञ सदा बीच में अपनी टांग अड़ा देते थे।

मेरी सेक्रेटरी को भी मेरी यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि,’ ये लोग मुफ्त में आपको इतना बड़ा महल भेंट कर रहे हैं और आप इंकार कर रहे हैं।’उस राजकुमार को भी यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने उस महल को बचपन में और अपनी युवावस्था में भी देखा था और मुझे मालूम है कि वह बहुत ही खूबसूरत इमारत है। लेकिन मुझे इंकार करना पड़ा क्योंकि तब तक मैं हिमालय जाने का निर्णय ले चुका था। किंतु कभी-कभी इंकार करके मुझे संतोष होता है। मुझे मालूम था कि अगर मैं उस महल को लेना स्वीकार कर लेता तो मुसीबत शुरुहो जाती। एक के बाद एक कोई न कोई अड़चन डाली ही जाती। ये अशिक्षित, अनैतिक, बेईमान राजनेता जो इतने शक्तिशाली बन गए हैं अवश्य ही बीच में कूद कर बात को बिगाड़ देते। मैंने इंकार कर दिया है किन्तु उनको इस पर विश्वास नहीं हो रहा है और वे अभी भी बीच में टांग अड़ाने की कोशिश कर रहे हैं। मैंने सुना है कि वे राजकुमार को बहुत पेरशान कर रहे हैं कि उसने वह महल मुझे भेंट देने का प्रस्ताव क्यों किया।

मुझे खेद है कि मुझे उस आदमी को इंकार करना पड़ा जो उस महल के प्रस्ताव को लेकर आया था। किंतु मैं क्या करता? तब तक मैं निर्णय कर चुका था और एक बार निर्णय लेने के बाद में पीछे नहीं हटता।

मैं भोपाल की बेगम के बारे में बता रहा था कि उसका मेरी नानी से बहुत प्रेम था। एक बार उसने मेरी नानी से पूछाः’आप लोग इस लड़के को राजा क्यों कहते हो?’ उस रियासत में किसी को भी राजा नाम से नहीं पुकारा जा सकता था। मेरी नानी ने बेगम को उत्तर दिया,’यह मेरे हृदय का राजा है। मैं इस रियासत को छोड़ दूंगी लेकिन इसका नाम नहीं बदलूंगी।’मैंने नानी से कहा कि,’नाम में क्या रखा है? इसके लिए गांव छोड़ने की क्या जरूरत है? किंतु नानी ने कहा,’मुझे ऐसा लगता है कि जल्द ही हमें यह रियासत छोड़नी पड़ेगी।’और ऐसा ही हुआ। एक वर्ष के बाद जब मैं नौ वर्ष का था हम लोगों ने गांव को सदा के लिए छोड़ दिया। नानी मुझे दुलार से सदा राजा कह कर ही पुकारती। बाद में मैंने स्वयं अपना नाम बदल दिया क्योंकि राजा कहने का अधिकार केवल मेरी नानी का था और किसी का नहीं। लेकिन वह बेगम इस नाम से अप्रसन्न हो गई। ये राजा, रानी, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि ये बड़े-बड़े लोग वस्तुतः कितने छोटे हैं। कितने गरीब हैं। अत्यंत शक्तिशाली होते हुए भी ये मूढ़ होते हैं।

मैंने नानी से कहा,’बेगम मेरे नाम के कारण अप्रसन्न नहीं है। उसको तुमसे ईर्ष्या हो रही है। और इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है कि मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूं-तुम मुझसे सहमत हो या न हो, इससे मुझे कोईफर्क नहीं पड़ता।’ सच तो यह है कि उस दिन से मैंने कभी किसी से यह नहीं पूछा कि मैं ठीक हूं या गलत, न किसी को मैंने अपनी बातों से दखल देने दिया है। इसलिए मैं सत्य का, सौंदर्य का, प्रेम का, स्व का स्वाद चख सका हूं-उनका आनंद प्राप्त कर सका हूं।

मैं पहले बता चुका हूं कि मेरे नाना कैसे रास्ते में ही मर गए। मृत्यु से वह मेरा पहला साक्षात्कार था और वह बहुत सुंदर साक्षात्कार था। मेरे नाना बहुत

धीरे-धीरे मरे और सौभाग्य से उस समय मैं उनके पास था। मैंने मृत्यु को धीरे-धीरे घटते देखा और मैं मृत्यु के महान मौन को भी देख सका।

इतना अच्छा हुआ कि उस समय नानी भी वहीं थीं। शायद उनके बिना मैं मृत्यु के सौंदर्य को न देख सकता क्योंकि प्रेम और मृत्यु दोनों एक जैसे हैं-शायद एक ही हैं। नानी मुझसे बहुत प्रेम करती थीं। उनका प्रेम मुझ पर बरसता रहा और मृत्यु धीरे-धीरे घटती रही। एक बैलगाड़ी-अभी भी मुझे उसके पहियों की आवाज आ रही है-भूरा बैलों पर निरंतर चिल्ला रहा है--उनको चाबुक मार रहा है-चाबुक की आवाज। मेरी नानी मेरा हाथ पकड़े हुए थी। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है, किंतु मैं उन क्षणों को भूल नहीं सकता। मेरे भीतर वे इस प्रकार अंकित हो गए हैं कि शायद मेरी मृत्यु भी उनको नहीं मिटा सकेगी। मरते समय भी मुझे उस बैलगाड़ी की आवाज सुनाई देगी।

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है, किंतु मैं उस क्षण में पूर्णतः उपस्थित था। मेरे नाना का सिर मेरी गोद में था। मेरे हाथ उनकी छाती पर थे और धीरे-धीरे उनकी सांस बंद हो गयी। जब मैंने देखा कि वे सांस नहीं ले रहे तो मैंने नानी से कहा-’अब वे सांस नहीं ले रहे।’ नानी ने कहा,’ठीक है! तुम चिंता मत करो। वे बहुत दिन तक जी लिए। इससे अधिक मांगने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे क्षण भूलने के योग्य नहीं होते किंतु इतना याद रखना कि कभी और अधिक की मांग मत करना। जो है पर्याप्त है।’

ओशो का स्वर्णिम बचपन(12)

मेरे नाना ने मरते समय कहा था, ‘त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुम्य एव समर्पयेत्।’ अर्थात हे गोविन्द! तुमने मुझे जो जीवन दिया था वह तुम्हें समर्पित करता हूं।’ नाना हिंदू नहीं थे और परमात्मा में उनका विश्वास नहीं था। यह वाक्य हिंदू सूत्र है। किंतु भारत में सब अच्छी चीजें मिश्रित हो गयी हैं। मृत्यु से पहले उन्होंने बार-बार कहा कि ‘चक्र को रोक दो।’ उस समय तो मैं नहीं समझ सका। उस समय तो अपनी बैल-गाड़ी का चक्र (पहिया) ही चल रहा था, अगर उसको रोक देते तो अस्पताल कैसे पहुंचते? जब बार-बार उन्होंने कहा कि ‘चक्र को रोको, पहिए को रोको’, तो मैंने नानी से पूछा कि, ‘क्या ये पागल हो गए हैं? यह सुनकर वे हंस पड़ीं। उनकी यही विशेषता मुझे बहुत पसंद थी। उनको भी मालूम था और मुझे भी मालूम था कि नाना के प्राण जल्दी ही निकल जाएंगे किंतु फिर भी वे पहिए को रोकने के लिए कह रहे थे। ऐसे क्षण में भी वह हंस सकीं।

आज भी मैं उनको हंसते हुए देख सकता हूं। उस समय वह अभी पचास वर्ष की भी नहीं थीं। मैंने देखा है कि जो स्त्रियां अपने आप को बहुत सुन्दर समझती है वेपैंतालीस साल की उम्र में बहुत ही कुरूप और भद्दी दिखाई देती हैं। अगर मेरी बात पर विश्वास न होता हो तो पूरी दुनिया में घूमकर देख लो कि इस उम्र की जो स्त्रियां लिपस्टिक आदि लगाकर, बन-ठन कर सुंदर दिखाई देने की कोशिश करती हैं तो वे कितनी कृत्रिम और हास्यास्पद हो जाती है? अगर स्त्री सचमुच सुंदर है तो पैंतालीस साल की आयु में तो वह अपने सौंदर्य की पराकाष्ठा पर होती है। स्त्री, पुरुष से दस वर्ष अधिक जीवित रह सकती है। जो कि बिल्कुल न्यायोचित है क्योंकि बच्चों को जन्म देने में उसे इतना कष्ट उठाना पड़ता है। इस कष्ट के बदले में थोड़ी-सी अधिक आयु उसे मिलनी चाहिए।

मेरी नानी उस समय पचास वर्ष की थीं और अभी भी उनका यौवन और सौंदर्य चरम सीमा पर था। मैं उस क्षण को कभी भूल नहीं सका। वह क्षण ही ऐसा था। मेरे नाना मर रहे थे और हमसे कह रहे थे कि ‘चक्र को रोको, पहिए को रोको।’ किंतु मैं बैलगाड़ी के पहिए को कैसे रोकता? हमें अस्पताल पहुंचना था और अगर बैलगाड़ी के पहिए को रोक देते तो हम जंगल में खो जाते।

नानी इतने जोर से हंस रही थीं कि बैलगाड़ी हांकने वाले हमारे नौकर, भूरा ने भी उनसे पूछा कि, ‘क्या बात है? आप क्यों हंस रही हैं? मैं उन्हें ‘नानी’ कहता था तो भूरा भी इसलिए उन्हें ‘नानी’ ही कहता था। भूरा ने कहा, ‘नानी, मेरे मालिक इतने बीमार हैं और आप इतने जोर से हंस रही है। क्या बात है? और राजा इतना चुप क्यों है?’ मृत्यु और मेरी नानी की हंसी, दोनों ने मुझे चुप कर दिया था। क्योंकि मैं समझना चाहता था कि क्या घट रहा है? कुछ ऐसा हो रहा था जिसको मैं पहले नहीं जानता था और इसलिए उस पर मैं अपना पूरा ध्यान दे रहा था।

मेरे नाना ने कहा, ‘राजा! तुम्हें सुनाई नहीं दे रहा? पहिए (चक्र) को रोको। मुझे तुम्हारी नानी की हंसी सुनाई दे रही है तो तुम्हें भी मेरी बात सुनाई देती होगी। यह विचित्रस्त्री है-मैं इसे कभी नहीं समझ सका।’ मैंने उत्तर दिया, ‘नाना! जहां तक मैं नानी को जानता हूं वह तो अति सरल स्त्री है।’ इस समय मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि जितना मैं नानी को जानता था उतना और कोई नहीं जानता था। किंतु मरते हुए नाना को तसल्ली देने के लिए मैंने कहा, ‘नानी की हंसी के बारे में चिंता मत करें। वह आपके शब्दों पर नहीं हँस रहीं, वे तो मेरे चुटकुले पर हँस रही है जो अभी मैंने उनको सुनाया है।’ इस पर नाना ने कहा, ‘यदि वह चुटकुले पर हंस रही हैं तो ठीक है किंतु इस चक्र को रोको, इस पहिए को रोको!’

अब तो मुझे मालूम है कि ‘चक्र’ से उनका क्या तात्पर्य था, किंतु उस समय मैं इस शब्दावली को नहीं जानता था। चक्र का अर्थ है-‘जीवन और मृत्यु का चक्र।’ भारत में हजारों वर्षों से लाखों लोग इसी चेष्टा में लगे रहे हैं कि इस चक्र को कैसे रोका जाए? अब तो मैं जानता हूं कि ‘चक्र’ का क्या अभिप्राय है, लेकिन उस समय नहीं जानता था। नाना बैलगाड़ी के पहिए को रोकने के लिए नहीं कह रहे थे। बैलगाड़ी के पहिए को रोकना मुश्किल नहीं था-वह तो मुश्किल से चल रहा था क्योंकि कोई सड़क तो थी नहीं।

उस समय मैंने समझा कि बैलगाड़ी के चलने से बहुत शोर हो रहा है इसलिए नाना पहिए को रोकने के लिए कह रहे हैं। उनको कष्ट भी बहुत हो रहा था। किंतु मेरी नानी हंसी और अब मैं उनकी हंसी का कारण जानता हूं। नाना तो जीवन और मृत्यु के चक्र के बारे में बोल रहे थे। सब भारतीयों को एक ही धुन होती है कि कैसे इस आवागमन के चक्र से बाहर निकला जाए?

इसलिए मेरे नाना कह रहे थे कि ‘इस चक्र को, इस पहिए को रोको।’ मैं उनके लिए ही नहीं, संसार के सब लोगों के लिए इस चक्र को रोक देता, उसे नष्ट कर देता ताकि दोबारा कोई उसे चला ही न सके लेकिन यह मेरे हाथ में नहीं है।

नाना की मृत्यु के समय मैं बहुत सी चीजों के प्रति सचेत हुआ। उस क्षण जिन बातों पर मेरा ध्यान गया उनकी चर्चा मैं बाद में करुंगा। उस क्षण ने मेरे समस्त जीवन को एक विशेष दिशा की ओर मोड़ दिया।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(13)

मैं तो नियमित रूप से हर रात को मग्गा बाबा के पास जाता था। और मेरी नानी मुझे बाहर न जाने देती, तब भी मैं नानी के सो जाने पर चुपके से भाग कर मग्गा बाबा के पास पहुंच जाता। दिन में एक बार तो उनके पास मैं जाता ही। वे एक प्रकार से मेरे लिए आध्यात्मिक-तृप्ति थे। उन्होंने कभी मुझे कोई मार्ग-निर्देश नहीं दिया, स्पष्ट शब्दों में कुछ नहीं कहा, किंतु उनके ‘होने’ मात्र सेही मुझे बड़ी सहायता मिली। उनकी उपस्थिति से ही मुझमें सोई हुई अज्ञात शक्तियां जाग्रत हो उठीं। मैं मग्गा बाबा का बहुत आभारी हूँ। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वे केवल मुझसे बोलते थे-उस समय मैं छोटा-सा बच्चा था। वह जानते हुए कि वे और किसी से बात नहीं करते, उनके साथ बिताए हुए निजी क्षण मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनसे मुझे नई जीवन-शक्ति मिलती।

अगर कभी मैं उनके पास जाता और कोई दूसरा आदमी वहां बैठा होता तो वे कुछ ऐसा विचित्र व्यवहार करते कि वह आदमी वहां से भाग जाता। वे चीजें फेंकने लगते, कूदने लगते या पागल की भांति नाचने लगते-देखने वाला डर जाता कि पागलपन के दौरे में ये कुछ कर न बैठें। जब वह भाग जाता तो हम दोनों खूब हँसते। उनके साथ मैं जिस प्रकार खुलकर हँसता था वैसी हँसी मैं दोबारा कभी नहीं हँसा। इस जीवन में तो फिर वैसे नहीं हँसा और मेरा दूसरा जीवन नहीं है क्योंकि चक्र रुक गया है, थोड़ा-सा पिछली गति के कारण चल रहा है किंतु अब इसे नई ऊर्जा नहीं मिल रही।

मग्गा बाबा इतने सुंदर थे कि मैंने उनके जैसा और कोई नहीं देखा। वे तो साक्षात रोम की मूर्तिकला के प्रतीक थे, बल्कि यूं कहना चाहिए कि उससे भी सुंदर थे क्योंकि वे पूर्णतः जीवंत थे। उनके जैसा दूसरा आदमी मिलना मुश्किल है और मैं चाहता भी नहीं कि वैसा आदमी दोबारा मिले क्योंकि एक मग्गा बाबा काफी है, उन्होंने मुझे पूर्णतः संतुष्ट कर दिया और मैं जानता हूं कि उनसे बढ़कर और कोई नहीं है। मैं भी ऊंचाई के उस बिंदु पर पहुंच गया हूं जहां से और ऊपर नहीं उठा जा सकता। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक विकास में ऐसा क्षण भी आता है जिसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता।

जिस दिन मग्गा बाबा हिमालय जा रहे थे उस दिन पहली बार उन्होंने मुझे बुलाया। रात को किसी ने मेरे घर के दरवाजे को खटखटाया। मेरे पिता ने दरवाजा खोला और एक आदमी ने कहा कि मग्गा बाबा मुझे बुला रहे हैं। पिताजी बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा, ‘मग्गा बाबा। उनको मेरे बेटे से क्या काम है? वे तो बोलते भी नहीं हैं तो मेरे बेटे को क्यों बुलाया है?’ उस आदमी ने कहा कि, ‘मुझे कुछ मालूम नहीं। मुझे यह संदेश देना था सो दे दिया। अब आप अपने बेटे को बता दीजिए’ इतना कहकर वह आदमी चला गया। मेरे पिता ने आधी रात को मुझे जगाकर कहा कि, ‘मग्गा बाबा ने तुम्हें बुलाया है लेकिन वे तो बोलते नहीं।’ मैं हँस पड़ा क्योंकि मैं जानता था कि वे मुझसे बोलते हैं किंतु इसके बारे में मैंने पिताजी से कुछ नहीं कहा। वे बोलते गए, ‘आधी रात को उन्हें तुमसे क्या काम है? तुम इस पागल आदमी से इस वक्त मिलना चाहते हो?’ ‘कभी-कभी मुझे लगता है कि तुम भी थोड़े पागल हो। अच्छा जाओ। दरवाजे को बाहर से ताला लगाकर जाओ ताकि वापस आकर मुझे नींद से मत उठाओ।’

मैं तो दौड़ा हुआ गया क्योंकि मग्गा बाबा ने पहली बार मुझे बुलाया था, उनके पास पहुंचकर मैंने उनसे पूछा कि, ‘क्या बात है? मुझे क्यों बुलाया।’ तो उन्होंने उत्तर दिया। ‘यहां पर यह मेरी अंतिम रात है। मैं सदा के लिए जा रहा हूं। एक तुम्हीं हो जिससे मैं बोलता था। जिस आदमी को तुम्हें बुलाने भेजा था उससे भी मुझे बोलना पड़ा। लेकिन वह कुछ नहीं जानता। मेरा संदेश तुम्हें देने के लिए मैंने उसे एक रुपया दिया था। वह अजनबी-सा लगता था।’ मैंने कहा, ‘हां! मैंने भी उसे यहां पर कभी नहीं देखा-शायद कोई राहगीर होगा। किंतु आपने मुझे बुलाया क्यों?’

मग्गा बाबा ने कहा, ‘मैं जा रहा हूं और यहां पर ऐसा कोई नहीं है जिससे मैं विदा लूं-सिवाय तुम्हारे।’ उन्होंने मुझे गले लगाया और मेरे माथे को चूमा, विदा ली और बस चले गए।

मग्गा बाबा इससे पहले भी कई बार गायब हो गए थे इसलिए इस बार लोगों ने उनके गायब हो जाने पर कोई ध्यान नहीं दिया। कुछ महीनों के बाद लोगों के ध्यान में आया कि वे अभी तक वापस नहीं आए हैं। तब उन्होंने उनकी उन सब जगहों पर खोज की जहां पर वे पहले जाते थे किंतु कहीं उनका पता नहीं लगा।

उस रात जाने से पहले उन्होंने मुझसे कहा, ‘मैं तुम्हें पूर्ण विकसित फूल की तरह न देख सकूंगा लेकिन मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा। किसी को कुछ नहीं बताना।’ जब वे इस विषय में मुझे बता रहे थे तो बहुत आनंदित थे। हिमालय जाने का विचार ही उन्हें आनंदित कर रहा था। हिमालय तो उन सब का घर है जिन्होंने खोजा और पाया।

मुझे नहीं मालूम था कि मग्गा बाबा हिमालय पर कहां गए क्योंकि हिमालय तो संसार में सबसे बड़ा पर्वत है और दूर-दूर तक फैला हुआ है। परंतु एक बार जब मैं हिमालय की यात्रा कर रहा था तो एक ऐसे स्थान पर पहुंचा जहां उनकी कब्र थी। आश्चर्य की बात तो यह कि उनकी कब्र मोजे़ज और जीसस की कब्र के पास थी। ये दोनों भी हिमालय में दफनाए गए हैं। मैं तो वहां पर जीसस की कब्र देखने गया था, संयोग से मुझे वहां पर मोज़ेज़ और मग्गा बाबा की कब्र भी मिल गई। बड़ा आश्चर्य हुआ मुझे!

मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मग्गा बाबा का जीसस या मोज़ेज़ से कोई संबंध है। उनकी कब्र को देखकर तत्क्षण मेरी समझ में आया कि उनका चेहरा इतना सुंदर क्यों था और क्यों उनकी मुखाकृति हिंदू जैसी न होकर मोजे़ज़ जैसी दिखाई देती थी। शायद वे मोजे़ज़ के खोए हुए कबीले के थे। जब मोज़ेज़ इज्ऱायल की खोज में जा रहे थे तो रास्ते में ही उनका एक कबीला खो गया था। वह कबीला हिमालय में कश्मीर में बस गया था।

मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूं कि इज्ऱायल को खोजने में वह कबीला मोजे़ज से अधिक सही था। मोज़ेज़ ने जो इज्ऱायल खोजा वह बिल्कुल रेगिस्तान था, बंजर था। लेकिन इन्होंने कश्मीर में जो खोजा वह सचमुच परमात्मा का बगीचा था। अपने इसी खोए हुए कबीले को खोजने के लिए मोजे़ज वहां गए थे। जीसस भी अपनी तथाकथित सूली के बाद वहीं गए थे।

मैं ‘तथाकथित’ इसलिए कहता हूं क्योंकि वास्तव में सूली पर वे मरे नहीं थे। वे जीवित थे। सूली पर छह घंटे तक लटके रहने से वे मरे नहीं थे। यहूदियों का लोगों को सूली देने का ढंग ऐसा अजीब और असभ्य था कि आदमी को सूली पर चढ़ कर मरने में छत्तीस घंटे लगते थे। जीसस के एक धनवासन शिष्य ने ऐसा इंतजाम कर रखा था कि जीसस को सूली शुक्रवार को लगाई जाए क्योंकि यहूदी शनिवार को कोई काम जारी नहीं रखते क्योंकि वह उनका पवित्र दिन है। इसलिए जीसस को सूली से उतार कर एक गुफा में सोमवार तक रखना था। किंतु वे गुफा से चुरा लिए गए, ईसाई ऐसा कहते हैं। परंतु तथ्य यह है कि जिस रात उनको सूली से उतार कर गुफा में रखा गया उसी रात उनको इज्ऱायल से बाहर भेज दिया गया। उनका खून तो बहुत बहा था किंतु वे जीवित थे। उनको ठीक होने में कुछ दिन लगे किंतु वे ठीक हो गए और वे एक सौ बारह साल तक जीवित रहे कश्मीर के एक छोटे से पहलगाम नामक गांव में।

उन्होंने पहलगाम को इसलिए चुना क्योंकि वहां पर उन्हें मोजे़ज की कब्र मिली। उनसे पहले मोज़ेज वहां पर अपने खोए हुए कबीले को खोजने गए थे। और जब जीसस

अपने प्रिय शिष्य, थॉमस, को अपना उपदेश सुनाने के लिए भारत भेज दिया किंतु स्वयं वे कश्मीर में ही रहे, मोजे़ज की कब्र के नजदीक वे अंत तक रहे।

मग्गा बाबा की कब्र उस छोटे से गांव, पहलगाम, में है।

मुझे पता लगा उस विचित्र संबंध-सूत्र का जो मोजे़ज से जीसस, मग्गा बाबा और मुझ तक चला आ रहा था।

मेरा गांव छोड़ने से पहले मग्गा बाबा ने मुझे अपना कंबल देते हुए कहा कि, ‘मेरे पास तो यही एकमात्र संपत्ति है और इसे मैं तुम्हें देना चाहता हूं।’ मैंने कहा-ठीक है! लेकिन मेरे पिता इसको मुझे घर के भीतर नहीं ले जाने देंगे।’ हम दोनों खूब हंसे। उनको भी मालूम था कि मेरे पिता उस गंदे कंबल को अपने घर में नहीं रखेंगे। मुझे अफसोस था कि मैं उस कंबल को नहीं रख सका। माना कि वह गंदा चिथड़ा था किंतु वह जीसस और बुद्ध की हैसियत के आदमी का था। किंतु उसे मैं अपने घर नहीं ले जा सकता था क्योंकि मेरे पिता कपड़ों के व्यापारी थे और कपड़ों पर वे विशेष ध्यान देते थे। उसे मैं नानी के घर भी नहीं ले जा सकता था क्योंकि गंदगी को वे सहन नहीं कर सकती थीं, उनको सफाई का बहुत ध्यान रहता था। मुझे भी सफाई की झक उन्हीं से विरासत में मिली है। मैं भी गंदगी को सहन नहीं कर सकता न ही इस्तेमाल की हुई चीज को हाथ लगा सकता हूं। मैं मजाक में नानी से कहता भी था कि आप मुझे बिगाड़ रही हैं।’ बात बिल्कुल सच है। उन्होंने मुझे सदा के लिए बिगाड़ दिया उन्होंने मुझे साफ-सफाई, शुद्धता और सौंदर्य के पक्ष में बिगाड़ा।

यद्यपि मग्गा बाबा मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण थे फिर भी अगर मुझे नानी और मग्गा बाबा में चुनाव करना पड़ता तो मैं नानी को ही चुनता। उस समय मग्गा बाबा संबुद्ध थे, नानी अभी संबुद्ध नहीं हो पाई थीं किंतु फिर भी उनका अंतस बहुत सुंदर था, इसलिए मैं उन्हीं को चुनता। परंतु लाखों-करोड़ों लोगों में से अगर मुझे दो को चुनना पड़ता तो मैं इन दोनों को ही चुन लेता-मग्गा बाबा मेरे घर में प्रवेश न पाते, वे अपने नीम के पेड़ के नीचे ही रहते। नानी तो उनके पास बैठ नहीं सकती थीं। वे कहतीं, ‘उसके पास जब भी जाओ, आकर नहा लो।’ उनको सदा यही डर था कि मग्गा बाबा नहाते नहीं है इसलिए उन्हें जूएं पड़ी रहती हैं। शायद वे ठीक हीकहती थीं-मैंने उनको नहाते हुए कभी नहीं देखा था। वे दोनों एक साथ नहीं रह सकते थे इसलिए सबसे बढ़िया इंतजाम तो यही था कि मग्गा बाबा बाहर नीम के पेड़ के नीचे रहते और नानी अपने घर में रानी बनी रहती और मुझे उन दोनों का प्रेम मिलता रहता।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(14)

जिस समय मेरे नाना मर रहे थे उस समय मेरी नानी हंस रही थीं-वास्तव में वह उनकी हंसी की अंतिम झलक थी। फिर उन्होंने अपने आप को नियंत्रित कर लिया। वे बहुत आसानी से अपने आपको संयत और नियंत्रित कर सकती थीं किंतु मुझे उनके नियंत्रण ने नहीं, वरन उनकी हंसी ने प्रभावित किया। मैंने बार-बार उनसे पूछा, ‘नानी! क्या आप मुझे बताएंगी कि जब मृत्यु इतनी निकट थी तब आप क्यों हंसीं? जब मेरे जैसे बच्चे को भी पता लग गया था कि बस अब मृत्यु होने ही वाली है तो ऐसा तो हो नहीं सकता कि आपको इसका पता न चला हो।’ इस पर उन्होंने उत्तर दिया, ‘मुझे मालूम था इसलिए मैं हंसी। मुझे हंसी आई तुम्हारे नाना पर क्योंकि वे चक्र को रोकने का अनावश्यक प्रयास कर रहे थे।’ वास्तव में उस अंतिम स्थिति में तो जन्म और मृत्यु का कोई अर्थ ही नहीं है। इस बारे में उनसे तर्क करने के लिए मुझे उस समय तक की प्रतीक्षा करनी पड़ी जब इसके बारे में मैं उनसे पूछने के योग्य हो जाता।

उस समय मैं यही सोचकर चुप हो गया कि जब मुझे समाधि मिल जाएगी तभी मैं उनसे पूछूंगा और मैंने वही किया। इक्कीस वर्ष की आयु में समाधि प्राप्त करने के बाद सबसे पहले मैं जल्दी से उस गांव पहुंचा जहां मेरी नानी रहती थीं और जो मेरे पिता का गांव था। उस गांव में मेरे नाना की मृत्यु हुई थी इसलिए मेरी नानी ने उसे कभी नहीं छोड़ा, वे वहीं रहीं और वही स्थान उनका घर बन गया। वे अपनी उन सब सुख-सुविधाओं को भूल गई जिनकी उन्हें आदत थी। वे भूल गई अपने बाग-बगीचों को, अपनी खेती-बाड़ी को और अपनी झील को। उनकी देखभाल करने या उनका कोई बंदोबस्त करने के लिए भी वे कभी नहीं गई।

उन्होंने कहा, ‘अब क्या बंदोबस्त करना है? क्या इंतजाम करना है? मेरे पति की मृत्यु हो गई है और जिस बच्चे को मैं चाहती हूं वह भी यही पर है।’

समाधि प्राप्त करने के तुरंत बाद मैं सीधा उस गांव गया दो लोगों से मिलने। एक तो थे मग्गा बाबा, जिनके बारे में मैंने सुना था कि वे गांव लौट आए हैं। शायद तुम जानना चाहोगे कि क्यों? इसलिए कि मैं चाहता था कि कोई मुझे कहे कि मैं संबुद्ध हो गया हूं। मुझे तो यह मालूम था परंतु इसके बारे में दूसरे से भी सुनना चाहता था। उस समय केवल मग्गा बाबा से ही मैं पूछ सकता था। वह गांव स्टेशन से दो मील दूर था, मैं उनसे मिलने के लिए अधीर हो रहा था इसलिए बड़ी तेजी से चलकर मैं उस नीम के पेड़ के पास पहुंचा जिसके नीचे मग्गा बाबा बैठे हुए थे। जैसे ही उन्होंने मुझे देखा उन्होंने मेरे पैर छुए और रो पड़े। मैं तो शर्म से गड़ा जा रहा था। वहां पर लोगों की भीड़ एकत्रित थी और वे सब लोग यही सोच रहे थे कि आज मग्गा बाबा सचमुच पागल हो गए हैं। उनके सामने ही मग्गा बाबा ने मुझसे कहा, ‘बेटे! आखिर तुमने कर ही लिया-तुमने प्राप्त कर ही लिया। मुझे तो मालूम था कि एक दिन तुम ऐसा कर सकोगे।’ मैंने उनके पैर छुए किंतु उन्होंने ऐसा करने से मुझे पहली बार रोका। मैंने उनसे कहा, ‘आप अपना काम कीजिए और मुझे अपना काम करने दीजिए। आप कहते हैं कि मैं संबुद्ध हूं तो संबुद्ध व्यक्ति जो चाहता है वह उसे करने दीजिए।’ उन्होंने हंसकर कहा, ‘तुम संबुद्ध तो हो गए हो किंतु बहुत शैतान हो।’

इसके बाद मैं भागा हुआ अपने घर पहुंचा, अपनी नानी के घर। वे द्वार पर ही खड़ी थीं। मैं उनको भी बताना चाहता था कि मुझे क्या घटा? वे आश्चर्य से मुझे देख रही थीं और उन्होंने पूछा, ‘क्या हुआ तुम्हें? तुम तो अब पहले जैसे नहीं हो?’ उस समय वे संबुद्ध नहीं थीं किंतु मेरे आंतरिक परिवर्तन को वे तुरंत पहचान गई। मैंने कहा, ‘हां, अब मैं वही नहीं हूं। मैं पहले जैसा नहीं रहा। जो अनुभव मुझे हुआ है उसे मैं अब बांटने आया हूं।’ इस पर उन्होंने कहा, ‘मेरे लिए तो तुम मेरे छोटे से राजा ही बने रहो।’ इसलिए मैं चुप रहा, इसके बारे में उनसे कुछ नहीं कहा किंतु एक दिन के बाद मध्यरात्रि को उन्होंने मुझे नींद से जगाया और कहा, ‘मुझे क्षमा करना। अब तुम वही नहीं हो, मुझे मालूम हो गया है इसलिए अब मुझे बताओ कि तुम्हें क्या घटा? जिस बच्चे को मैं जानती थी वह तो न जाने कहां खो गया। उसका स्थान तो अब उससे कहीं अच्छे और तेजस्वी व्यक्ति ने ले लिया है। अब तुम केवल मेरे नहीं रहे, अब तो लाखों लोग तुम्हें अपना मानेंगे और हर एक को यही लगेगा कि तुम बस उसी के हो। तुम पर मेरा जो अधिकार था उसे मैं वापस ले लेती हूं परंतु अब तुम मुझे भी वह मार्ग बताओ।’

मैं पहली बार किसी को यह बता रहा हूं कि मेरी नानी मेरी प्रथम शिष्या थीं। प्रथम ही नहीं वरन प्रथम संबुद्ध शिष्या थीं। मेरे लोगों को संन्यास की दीक्षा देने से पहले ही वे संबुद्ध हो चुकी थीं। वे मेरी संन्यासिन नहीं थीं। सन 1970 में जब मैंने संन्यास देना आरंभ किया तब उनकी मृत्यु हुई थी। मैंने उनके अंतिम शब्द स्वयं तो नहीं सुने किंतु मेरे भाई ने मुझे बताया कि नानी ने कहा-‘राजा!

तुमने संन्यास देना आरंभ किया है। किंतु अब तो बहुत देर हो गई है। मैं तुम्हारी संन्यासिन नहीं बन सकती क्योंकि जब तक तुम यहां पहुंचोगे तब तक मैं इस शरीर में नहीं रहूंगी। किंतु कोई न कोई तुम्हें यह बता ही देगा कि मैं तुम्हारी संन्यासिन बनना चाहती थी।’ मेरे वहां पहुंचने के ठीक बारह घंटे पहले उनका देहांत हो गया था। बंबई से उस गांव तक का सफर बहुत लंबा था इसलिए मुझे पहुंचने में देर हो गई।

नानी की इच्छा थी कि जब तक मैं वहां न पहुंच जाऊं तब तक कोई भी उनके शरीर को हाथ न लगाए और मैं ही यह निर्णय करूं कि उनके शरीर को जलाना है या दफनाना है या कुछ और करना है। उस समय वे अस्सी साल की थीं। मैं जब वहां पहुंचा और उनके मृत शरीर को देखा तो मुझे सहसा अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ। उनका शरीर बिल्कुल विकृत न हुआ था-वैसा का वैसा ही ताजा था। वे बहुत सुंदर और कम उम्र की दिखाई दे रही थी। यद्यपि उनकी मृत्यु बारह घंटे पहले हो चुकी थी। मैंने कहा, ‘नानी! मैं आ गया हूं। इस बार तुम मुझे कोई जवाब नहीं दे सकोगी लेकिन फिर भी मैं तुम्हें बता रहा हूं कि मैं आ गया हूं।’ अचानक एक चमत्कार हुआ! वहां पर मैं ही नहीं, मेरे पिताजी, सारा परिवार और अड़ोस-पड़ोस के लोग भी उपस्थित थे। सबने देखा कि नानी की बाई आंख से एक आंसू निकलकर लुढ़क गया। हां। मृत्यु के बारह घंटे बाद ऐसा हुआ! मुझे उस समय ऐसा लगा कि उन्होंने मेरी बात का उत्तर दे दिया। नानी की जैसी इच्छा थी वैसा ही मैंने किया। उनकी चिता को मैंने आग लगाई। उनके दाह-संस्कार के बाद मैंने किसी का दाह-संस्कार नहीं किया-अपने पिता का भी नहीं। उसी दिन मैंने पिताजी से कहा कि, ‘मैं अभी से आपको बता देता हूं कि आपकी अंतिम क्रिया के समय मैं वहां उपस्थित नहीं रहूंगा। यह सुनकर उन्होंने कहा, ‘अभी तो मैं जिंदा हूं। मैंने कहा-‘हां! यह तो ठीक है किंतु अभी से मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इसके बाद मैं किसी का दाह-संस्कार नहीं करूंगा। इसलिए अभी से मैं आपसे क्षमा मांग रहा हूं क्योंकि जब आप नहीं रहोगे तो किससे क्षमा मागूंगा? तब तो यह संभव न होगा।’ पिताजी को यह सुनकर थोड़ा आघात पहुंचा। उन्होंने कहा, ‘अगर यही तुम्हारा फैसला है तो ठीक है किंतु मेरी चिता को आग कौन देगा?’ बाद में जब पिताजी की मृत्यु हुई तो उनके अंतिम संस्कार में मैं शामिल न हुआ। किंतु इसकी आज्ञा मैं पहले से ही उनसे ले चुका था।

नानी मेरी संन्यासिन नहीं थी। मैंने उन्हें नाम नहीं दिया था। किंतु वे अपने ढंग की संन्यासिन थीं। जब वे मरी तो वे गेरुए वस्त्रों में थीं। जिस दिन वे संबुद्ध हुई थी उसी दिन से उन्होंने सफेद वस्त्र छोड़कर गेरुए वस्त्र पहन लिए थे। मुझे अभी तक याद है और मैंने कहीं पर नोट कर रखा है कि उनको समाधि किस दिन प्राप्त हुई। 16 जनवरी 1967 को उन्हें समाधि प्राप्त हुई।

ओशो का स्वर्णिम बचपन (15)मिसिंग

ओशो का स्वर्णिम बचपन(16)

मेरे नाना की मृत्यु के बाद मुझे नानी से दूर रहना पड़ा, मैं अपने पिता के गांव वापस आ गया। चाहता तो नहीं था किंतु बेमन से मुझे ‘हां!’ कहना ही पड़ा।

मेरी नानी ने अपने लाड़ में मुझे बहुत बिगाड़ रखा था। वे मुझे अपना भी कोई काम नहीं करने देती थीं, यहां तक कि मेरे दांत भी वे स्वयं साफ करती थीं। मैं कोई काम नहीं करता था जिसके परिणामस्वरूप मेरी सारी ऊर्जा शैतानी में खर्च होती थी या

दूसरों को सताने में। एक बार मैंने एक डाक्टर को अपने बैग के साथ गांव में देखा। बस मैं नानी के पीछे पड़ गया कि ‘मुझे भी ऐसा बैग लेकर दो नहीं तो मैं खाना नहीं खाऊंगा।’ नानी ने भूरा से कहा कि, ‘अपनी बंदूक लेकर जाओ और उस डाक्टर से वह बैग छीन लो।’ डाक्टर ने जब भूरे को बंदूक के साथ देखा तो उसने समझा कि कोई अंग्रेज आ रहा है। वह डर के मारे कंपने लगा। भूरे ने उससे उसका बैग लेकर मुझे दे दिया और तब मैं उस बैग को लेकर घूमता रहता था।

मैं नानी के गांव वापस जाना चाहता था किंतु अकेला कैसे जाता? नानी तो वहां जाना ही नहीं चाहती थीं। बचपन की इस घटना ने मेरे जीवन को एक विशेष ढांचे में ढालते हुए मुझे यह सिखा दिया कि अगर मैं एक बार किसी स्थान को छोड़ता हूं तो दोबारा वहां पर वापस नहीं जाना चाहता।

नानी नाना के गांव वापस नहीं गईं और उन्होंने मेरे पिता के गांव में नदी के किनारे एक छोटा-सा मकान खरीद लिया था। मेरी मां चाहती थीं कि मैं उनके साथ रहूं क्योंकि सात साल तक मैं अपने अर्थात पिताजी के परिवार के साथ नहीं रहा था। और पिताजी का परिवार बहुत बड़ा था-चाचे-चाची, ताऊ-ताई और उनके बच्चें-इनके अतिरिक्त अनेक मेहमान सदा घर में जमा रहते थे। पिताजी समझते कि मां के मेहमान हैं और मां समझती कि पिताजी के मेहमान हैं। मेरे दादा तो बहुत झगड़ालू स्वभाव के थे-कारण-अकारण झगड़ा किए बिना उनको चैन ही नहीं आता था। वे मेरे नाना से बिल्कुल उल्टे थे।

मेरे पिता की कपड़ों की एक छोटी-सी दुकान थी। कभी-कभी मैं भी वहां पर बैठकर देखता था कि क्या हो रहा है? सबसे दिलचस्प बात तो यह थी कि कुछ लोग आकर पिताजी से पूछतेः ‘बाबा कहां हैं? मुझे बहुत हैरानी होती क्योंकि मेरे पिता बहुत सरल सीधे- सादे और ईमानदार थे। वे जब कपड़ा दिखाते तो उसी समय कह देते कि, ‘मेरी लागत की कीमत इतनी है अब वह आप पर निर्भर है कि इससे अधिक आप कितना देना चाहते हैं? एक रुपया या दो रुपये? दो रुपये का अर्थ है दस प्रतिशत तो मेरे लिए इतना ही काफी है।’ परंतु लोगों को तो दादा के साथ ही सौदा करने में मजा आता था। पहले तो इनकी यह बात मेरी समझ में न आई। फिर बाद में इसका कारण मेरी समझ में आया और वह था मोल-भाव का रस-एक-एक पैसे की खींचातानी में घंटों बहस करना! यह सब देखकर मैं बहुत हंसता था, इसलिए दादा मुझे बाद में डांटते हुए कहते, ‘ऐसे समय पर तुम हंसा मत करो। तुम्हारे चेहरे पर तो ऐसा भाव आना चाहिए मानो हमारा बहुत नुकसान हो रहा है। तुम्हारा पिता तो बेवकूफ है। जिस चीज को वह बीस रुपये में बेच देता है उसको मैं आसानी से तीस रुपये में बेचता हूं।’

मेरे दादा बहुत ही चालाक और चंट थे। जब भी उनके बारे में सोचता हूं तो मुझे सियार की याद आती है। वे सचमुच बहुत ही चालाक और जटिल थे। मेरे पिता न जाने कैसे इतने सरल थे! शायद प्रकृति का यह नियम है कि वह सदा संतुलन बनाए रखती है। जटिल व्यक्ति को इसलिए इतना सरल पुत्र दिया। गांव में किसी को पता न चलता कि दादा कब क्या करने वाले हैं? उनके बाएं हाथ को भी पता न चलता कि दायीं हाथ क्या कर रहा हैं? अगर नदी को जाते समय रास्ते में कोई पूछ लेता कि वे कहा जा रहे हैं तो वे कह देते वे स्टेशन जा रहे हैं। जब मैं उनकी ओर देखता तो वे मुझे आंख मार देते। मैं जब पूछता कि, ‘आपने आंख क्यों मारी और आपने झूठ क्यों बोला?’ तो वे कहते, ‘तुम अभी नहीं समझ सकते। अगर सच बोलने की आदत पड़ जाए तो व्यापार में भी सच बोला जाएगा। तुम्हें आंख मारने का मतलब है कि तुम चुप रहो।’ सो दादा अपने बच्चों के साथ रहते थे-मेरे पिताजी, चाचा, बुआएं और उनके पति। मैं लोगों को आते तो देखता था किंतु जाते कभी नहीं देखता था।

हम लोग बहुत अमीर तो न थे किंतु सब के खाने के लिए पर्याप्त था। इसलिए मैंने अपनी मां से कहा कि, ‘मैं इस परिवार में नहीं रह सकता। मैं अकेला ही नाना के गांव चला जाऊंगा। मैं रास्ता जानता हूं और गांव के लोग मेरी देखभाल कर लेंगे। बड़ा होकर मैं उनका ऋण चुका दूंगा। परंतु अगर आप लोग मुझे इसी गांव में रखना चाहते हो तो मैं नानी के पास रहूंगा, इस घर में-इस बाजार में नहीं।’ यह सुनकर मेरी मां को दुख तो अवश्य हुआ और तब से न जाने कितनी बार मैंने उन्हें दुख पहुंचाया है। किंतु मैं भी क्या करता, असहाय था। इतने वर्षों की स्वतंत्रता, शांति और खुले स्थान में रहने के बाद मैं इस परिवार में कैसे रह सकता था?

नानी के घर में तो मेरे सिवाय और किसी की आवाज ही न सुनाई देती थी। नाना मंत्र का जाप करते रहते थे और नानी के साथ बोलने वाला और कोई था ही नहीं। इतने सुंदर वातावरण में रहने के बाद उस परिवार की अनजानी भीड़ में रहना असंभव था। बाद में जब मैं प्रोफेसर बना तो लोग मेरे पास आकर कहते, ‘तुम मुझे नहीं जानते? मैं तुम्हारी मां का भाई हूं,’ मैं उस आदमी की ओर देखकर कहता, ‘किंतु मेरी मां का तो कोई भाई नहीं है।’ इस पर वह आदमी कहता, ‘हां! तुम ठीक कहते हो किंतु मैं तुम्हारी मां का चचेरा भाई हूं।’ तब मुझे उससे पूछना पड़ता, ‘अच्छा! तो आपको कितने रुपये चाहिए?’ वह कहता, ‘अरे! तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मुझे पैसे चाहिए?’ तब वह कुछ रुपये कर्ज लेकर चला जाता और मैं सोचता कि सस्ते में एक रिश्तेदार से छुटकारा हुआ। सैकड़ों लोगों ने मुझसे पैसे उधार लिए और कभी वापस नहीं किए। और मैं खुश था कि उन्होंने मेरे पैसे वापस नहीं किए क्योंकि फिर दोबारा वे मांगने नहीं आए।

मैं नाना के गांव वापस जाना चाहता था किंतु न जा सका। मां का दिल न दुखे इसलिए मुझे उनसे समझौता करना पड़ा लेकिन सच तो यह है कि जाने-अनजाने मैं सदा उनके दिल को चोट पहुंचाता रहा हूं। वे जो भी चाहती थीं मैं ठीक उसका उल्टा ही करता था। धीरे-धीरे उनके लिए मेरा होना न होना बराबर हो गया। कभी-कभी तो ऐसा होता कि मैं उनके ठीक सामने बैठा होता और वे मुझसे पूछतीं, ‘तुमने किसी को देखा है? मुझे बाजार से सब्जी मंगवानी है।’ बाजार दूर नहीं था। गांव भी छोटा-सा था। बाजार बिल्कुल निकट था। मैं कहता, ‘नहीं! मैंने तो किसी को नहीं देखा! न जाने कहां चले गए वे सब लोग! घर खाली लगता है।’ मुझे देखकर भी मां मुझे बाजार से सब्जी लाने को न कहतीं क्योंकि एक-दो बार मुझसे सब्जी मंगवाकर वे बहुत पछताई थीं। उन्होंने मुझसे केले लाने को कहा और मैं ले आया टमाटर। जाते समय रास्ते में मैं याद करता हुआ जा रहा था कि केले लाने हैं किंतु किसी ने मुझसे कोई बात की और मैं भूल गया केले को और ले आया टमाटर। उन्हें देखकर मां ने सिर ठोंक लिया क्योंकि जैन घर में टमाटर नहीं लाए जाते और उनको तो चाहिए थे केले। मां ने पूछा, ‘क्या ये केले हैं?’ मैंने कहा, ‘हे भगवान! मैं तो भूल गया!’ मां ने कहा, ‘अगर तुम भूल ही गए तो टमाटर के अतिरिक्त और कुछ नहीं ला सकते थे?’ जैनी टमाटर नहीं खाते क्योंकि उनका रंग खून जैसा लाल होता है। तब मेरे पास और कोई चारा न रहा सिवाय इसके कि उन टमाटरों को भिखारियों को दे दूं।

भिखारी मुझे देखकर बहुत खुश हो जाते थे क्योंकि मुझे सदा कुछ न कुछ घर से बाहर फेंकने को कहा जाता और मैं जाकर भिखारियों को दे देता। मैं उस परिवार में उनके अनुसार नहीं रह सकता था। उस घर में न जाने कितने लोग थे और औरतें तो सदा बच्चें पैदा करती रहती थीं। हर औरत सदा गर्भवती दिखाई देती थी। अब भी जब मुझे उस परिवार की याद आती है तो मैं घबरा जाता हूं।

मैंने मां से कहा कि, ‘मैं आपका दिल नहीं दुखाना चाहता किंतु मैं तो नानी के साथ ही रहूंगा। वे मुझे अच्छी तरह से समझती हैं और वे ही मुझे प्रेम और स्वतंत्रता दे सकती हैं।’ एक बार मैंने नानी से पूछा था, ‘ आपने केवल मां को ही

क्यों जन्म दिया?’ नानी ने कहा, ‘ऐसा क्यों पूछ रहे हो?’ मैंने कहा, ‘मरे पूछने का मतलब यह है कि आपने मां के लिए एक भाई क्यों नहीं जन्मा? इस परिवार में तो एक-एक स्त्री के अनेक बच्चे हैं।’ नानी ने उत्तर दिया, ‘तेरे नाना चाहते थे कि बच्चा हो, तो हम दोनों में यही समझौता हुआ कि केवल एक बच्चे को मैं जन्म दूंगी-चाहे वह बेटा हो या बेटी। अच्छा हुआ कि मेरे बेटी हुई और उसके कारण तुम मुझे मिल गए। अगर मेरे बहुत से बच्चे होते तो तुमको यहां पर भीड़-भाड़ में रहना बिल्कुल अच्छा न लगता।’

मैं अपने पिता के गांव में ग्यारह बरस रहा। मुझे वहां पर जबर्दस्ती स्कूल में भर्ती किया गया। वह एक दिन का मामला नहीं था। हर रोज मेरा कोई न कोई चाचा खींच-खींचकर, धर-पकड़कर स्कूल ले जाता और वही पर मास्टर के सुपुर्द कर दिया जाता मानों मैं कोई बेजान चीज थी जिसको दूसरे व्यक्ति को सौंपा जाना जरूरी था। मुझे तो कैदी की तरह ले जाया जाता था। अभी भी शिक्षा का यही ढंग है-हिंसात्मक।

हर पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को भ्रष्ट करती है। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक बलात्कार है। माता-पिता बच्चे से अधिक शक्तिशाली होते हैं इसलिए वे बच्चे को अपनी इच्छानुसार चलने के लिए मजबूर कर सकते हैं। जिस दिन प्रथम बार मैं जबरन स्कूल ले जाया गया उसी दिन से मैंने अपना विद्रोह आरंभ कर दिया। स्कूल को देखते ही मैंने अपने पिता से पूछा कि, ‘यह स्कूल है या जेल?’ पिता जी ने कहा, ‘डरने की तो कोई बात नहीं है। यह स्कूल है।’ इस पर मैंने उनसे कहा कि, ‘अगर यह स्कूल है तो इतने बड़े फाटक की क्या जरूरत है?’ एक बार जब बच्चें स्कूल के भीतर जाते हैं तोफाटक बंद कर दिया जाता और जब छुट्टी होती तो खोल दिया जाता।

आज भी मुझे वह फाटक दिखाई देता है और मुझे वह दिन भी याद है जब मैं पिताजी के पास खड़ा था और वे मुझे उस स्कूल में दाखिला दिलाने की व्यवस्था कर रहे थे। स्कूल तो भद्दा और कुरुप था ही, उसका फाटक और भी भद्दा था। उसको ‘हाथी द्वार’ कहा जाता था वह इतना बड़ा था कि एक हाथी आसानी से उसमें से गुजर सकता था। सर्कस के हाथियों के लिए यह बहुत अच्छा था, किंतु छोटे-छोटे बच्चों के लिए इतने बड़े फाटक की क्या जरूरत थी?

इन नौ सालों के बारे में मुझे तुम्हें कई बातें बतानी हैं।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(17)

जिन सज्जन की मैं बात कर रहा था उनका नाम था पंडित शंभुरत्न दुबे। हम सब उनको शंभुबाबू कहा करते थे। वे कवि थे-बहुत ही अनोखे, क्योंकि वे अपनी कविताओं को प्रकाशित नहीं करना चाहते थे। मैं सैकड़ों कवियों से मिला हूं किंतु वे सब चाहते है कि उनकी कविताएं छप जाएं-प्रकाशन के लिए उनकी उत्सुकता इतनी होती है कि उनके लिए काव्यकृति गौण हो जाती है। इस प्रकार के महत्त्वाकांक्षी लोगों को मैं राजनीतिज्ञ कहता हूं। परंतु शंभुनाथ दुबे महत्त्वाकांक्षी नहीं थे। वे निर्वाचित उपसभापति भी नहीं थे क्योंकि निर्वाचित होने के लिए चुनाव में खड़ा होना पड़ता है। वे सभापति द्वारा मनोनीत थे। सभापति तो गोबरगणेश था-उसे कुछ आता- जाता नहीं था इसलिए उसे ऐसे एक बुद्धिमान व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उसके सब काम कर दे। सभापति ने समझदारी का केवल एक ही काम किया और वह था शंभुनाथ बाबू को उपसभापति बनाना।

जिस क्षण शंभुनाथ बाबू की आंख से मेरी आंख मिली, उस क्षण हम दोनों के हृदय एक हो गए-विचित्र मिलन हो गया। मैं एक छोटा सा जंगली बच्चा जो अशिक्षित था और वे थे अति शक्तिशाली और अत्यंत सम्मानित व्यक्ति। उनकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र थी। सब लोग उनसे डरते भी थे। और मैं था एक छोटा सा बच्चा! दोनों के बीच कोई समानता न थी। वे सारे गांव के सभापति थे, वकीलों की एसोसिएशन और रोटरी क्लब आदि के भी सभापति थे, अत्यंत शिक्षित थे। उन्होंने वकालत की परीक्षा भी पास की थी किंतु वकालत करते नहीं थे। वे कवि थे किंतु जब तक वे जीवित रहे अपनी कविताओं को प्रकाशित नहीं किया। वे अच्छे लेखक भी थे।

संयोगवश एक फिल्म-निर्देशक उनसे और उनकी कहानियों से परिचित हो गया। शंभुबाबू तो मर चुके हैं किंतु उनकी कहानी पर एक बहुत प्रसिद्ध फिल्म बनी है जिसका नाम है ‘झांसी की रानी’। इसको बहुत से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिले हैं।

उस गांव में वही मेरे एकमात्र मित्र थे। वहां पर मुझे अपनी शिक्षा के लिए ग्यारह वर्ष रहना पड़ा। वास्तव में शिक्षा प्राप्त करने में मुझे कई वर्ष बर्बाद करने पड़े। प्राइमरी-स्कूल में चार वर्ष लगे, मिडल स्कूल में चार वर्ष, तीन वर्ष हाई स्कूल में और छह वर्ष विश्वविद्यालय में-जीवन के सत्रह वर्ष नष्ट हो गए। मैं आठ या नौ वर्ष का था जब मैंने स्कूल जाना शुरू किया और जिस दिन मैंने विश्वविद्यालय छोड़ा उस समय मैं छब्बीस वर्ष का था। विश्वविद्यालय को छोड़ते समय मैं बेहद खुश था क्योंकि अब मैं पढ़ाई की झंझट से मुक्त हो गया था। अब मैं स्वतंत्र था। वहां से जाने के लिए मैं इतना उतावला हो रहा था कि मैंने अपने प्रोफेसर से कहा-‘आप मेरा समय नष्ट मत कीजिए। इस गेट के भीतर दोबारा प्रवेश करने के लिए कोई भी मुझे राजी नहीं कर सकता। जब मैं नौ साल का था तो मेरे पिताजी मुझे घसीटकर स्कूल के भीतर ले गए थे, लेकिन अब तो कोई भी ऐसा नहीं कर सकता। मेरे प्रोफेसर फिर भी मुझे समझाने की कोशिश करते रहे कि ‘पी.एच.डी. के लिए ऐसी छात्रवृत्ति बहुत मुश्किल से मिलती है। पी.एच.डी. के बाद तुम्हें डी.लिट. भी करनी चाहिए।’ मैंने उनसे कहा, ‘मेरा समय बर्बाद मत कीजिए, मुझे बस पकड़नी है। मेरा सामान उस पर चढ़ चुका है और उसका ड्राइवर बेसब्री से मेरा इंतजार कर रहा है।’

जब हमारी मित्रता आरंभ हुई, उस समय शंभुबाबू तो शिक्षित थे और मैं था अशिक्षित। उनका अतीत सुनहरा था और मेरा कोई अतीत न था। सारे गांव को हमारी मित्रता पर आश्चर्य होता था। किंतु शंभुबाबू को इस मित्रता से कोई संकोच नहीं होता था। उनकी इस विशेषता का मैं आज भी बहुत आदर करता हूं। वे मेरे पिता की उम्र के थे और उनके बच्चे मुझसे भी बड़े थे। किंतु हम दोनों हाथ में हाथ डाले घूमते रहते थे। वे मेरे पिता से दस साल पहले मरे थे। मृत्यु के समय वे पच्चास वर्ष के लगभग थे। उस समय मुझे ठीक से पहचानने वाले केवल वही थे। उस गांव में उनका बड़ा दबदबा था इसलिए उनके ऐसे व्यवहार ने मेरी बड़ी सहायता की।

काना मास्टर तो फिर कभी स्कूल में देखा नहीं गया। सेवा-निवृत होने से पहले ही उसकी छुट्टी पर भेज दिया गया और उसका सेवाकाल बढ़ाया नहीं गया। इसलिए गांव के लोग बहुत खुश हो गए। काना मास्टर बहुत प्रभावशाली माना जाता था किंतु मैंने एक दिन में ही उसका पत्ता काट दिया। लोग मुझे सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। मैंने कहा कि मैंने तो कुछ नहीं किया-केवल उसके गलत कामों का विरोध किया और उनके विरुद्ध आवाज उठाई। उसने जीवनभर छोटे-छोटे बच्चों को सताया। उस समय लोग समझते थे कि बिना मार-पीट के बच्चों को पढ़ाया ही नहीं जा सकता। मेरे पिताजी को भी शंभुबाबू और मेरी मित्रता पर आश्चर्य होता था। वे उनसे पूछते भी थे कि इस शैतान लड़के से आपकी इतनी दोस्ती क्यों है? शंभुबाबू हंसकर कहते ‘एक दिन आप समझ जाएंगे।

अभी तो मैं कुछ नहीं बता सकता। सच तो यह है कि इस लड़के से मुझे दोस्ती नहीं वरन उसके प्रति मुझे सम्मान दिखाना चाहिए।’ उनके इन शब्दों को सुनकर मैं भी चौक उठा।

एक दिन जब हम दोनों अकेले थे तो मैंने उनसे पूछा कि आप पिताजी से ऐसा क्यों कह रहे थे कि आपको मेरा आदर करना चाहिए?’ उन्होंने उत्तर दिया-‘हां! मैं तुम्हारा आदर करता हूं क्योंकि मुझे धुंधला-धुंधला सा दिखाई देता है कि एक दिन तुम क्या बनोगे।’ मैंने अपने कंधे बिचकाते हुए कहा, ‘भला मैं क्या बनूंगा? मैं तो अभी भी वही हूं!’ इस पर वे बोले, ‘बस! इसी बात पर मुझे हैरानी होती है। तुम बच्चे हो और सब लोगों को हमारी मित्रता पर आश्चर्य होता है किंतु उन्हें नहीं मालूमकि तुम क्या हो। दिन जब तुम बड़े हो जाओगे तो सबको मालूम हो जाएगा।’ आज मैं यह निस्संकोच कह सकता हूं कि मग्गा बाबा के बाद शंभुबाबू दूसरे आदमी थे जो यह समझ सके कि मेरे साथ कुछ विशेष और अवर्णनीय घटा है। वे रहस्यदर्शी तो नहीं थे किंतु अच्छे कवि थे और अनोखे व्यक्ति थे क्योंकि उन्होंने अपनी कविताओं को प्रकाशित करने की कोई कोशिश नहीं की। न कभी उन्होंने कवि सम्मेलनों में भाग लिया। वे अपनी कविता केवल मुझे, नौ वर्ष के बालक को ही सुनाते थे और उसके बारे में मेरी राय पूछते थे कि वह अच्छी है या नहीं। उनकी मृत्यु के बाद अब उनकी कविताएं प्रकाशित की गई हैं उनकी स्मृति में। किंतु इनमें उनकी सबसे बढ़िया कविताएं संकलित नहीं की गई क्योंकि उनका संकलन करने वाले कवि नहीं थे और उनकी कविताओं का चुनाव तो कोई रहस्यदर्शी ही कर सकता है। मुझे तो मालूम है कि उन्होंने क्या-क्या लिखा- कुछ लेख लिखे, कुछ कहानियां लिखीं, कुछ कविताएं लिखीं; परंतु अजीब बात तो यह है कि उन सबका विषय एक ही है और वह है ‘जीवन’। काल्पनिक जीवन नहीं, जीवन जैसा है वैसा-क्षण-क्षण में परिवर्तनशील जीवन। वे कहा करते थे कि मुझे छोटी-छोटी चीजें प्रिय हैं-चाय का छोटा सा प्याला, नदी में तैरना, आराम से लेटकर धूप सेंकना आदि। मैं उन्हें अच्छी तरह से समझता था। यद्यपि वे संबुद्ध नहीं थे किंतु समाधि के बहुत निकट थे। मग्गा बाबा के बाद शायद उन्होंने ही मुझे पहचाना और समझा। उस समय तो शायद मुझे भी अपने बारे में उतना मालूम नहीं था जितना उन्हें था। जब मैंने उपसभापति के कक्ष में पहली बार प्रवेश किया और हम दोनों की आंखें मिली, तब एक क्षण के लिए तो हम चुप रहे, फिर वे उठे और मुझसे बोले, बैठिए। मैंने कहा, लेकिन आप क्यों खड़े हो गए? उन्होंने उत्तर दिया, तुम्हें देखकर खड़े होने का मन चाहा, इसलिए। मैं अनेक बड़े लोगों को और गवर्नरों को देख चुका हूं। किसी का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा; किंतु न जाने क्यों तुम्हें देखकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है, बड़ी प्रसन्नता भी हो रही है। यह बात किसी को बताना मत। और यह बात मैंने किसी को नहीं बताई। आज चालीस साल के बाद इसका उल्लेख करते हुए मुझे बहुत संतोष हो रहा है।

शंभुबाबू संबुद्ध हो सकते थे किंतु अपनी अतिबौद्धिकता के कारण वे चुक गए। उनकी मृत्यु के समय मैं उनके पास था। यह भी विचित्र संयोग है कि मुझे उन सबकी मृत्यु देखनी पड़ी जिनसे मुझे प्रेम था। मरने से पहले उन्होंने मुझे टेलीफोन किया कि, जल्दी आ जाओ। मैं शायद ही कुछ दिन जीवित रह सकूं। जबलपुर उस गांव से केवल अस्सी मील दूर था। मैं तुरंत चल पड़ा। मुझे देखकर वे बहुत खुश हुए। उसी दृष्टि से मुझे देखा जैसे उन्होंने पहली बार मुझे देखा था। कुछ भी कहा नहीं गया। किंतु उस समय का मौन बहुत मुखर था। उनका हाथ पकड़कर मैंने उनसे कहा, आंखें बंद कीजिए। इस पर उन्होंने कहा, आंखें तो जल्दी ही बंद होने वाली हैं, तब मैं उनको खोल न सकूंगा! इस समय मैं तुम्हें देखना चाहता हूं इसलिए आंखें बंद नहीं कर रहा। मैं तुम्हें दोबारा नहीं देख सकूंगा क्योंकि यह निश्चित है कि तुम इसके बाद जन्म नहीं लोगे। मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी। तुमने कितनी बार मुझसे मौन होने को कहा। अब तो समय नहीं रहा।’ उनकी आंखों में आंसू थे। मैं उनके पास चुपचाप बैठा

रहा। उन्होंने आंखें बंद की और प्राण निकल गए। उनका चेहरा और आंखें बहुत सुंदर थीं। अभी तक उन्होंने शरीर धारण नहीं किया।

इस कम्यून के उद्देश्य हैं कुछ तुम जानते हो और कुछ केवल मैं जानता हूं। एक उद्देश्य तो यह है कि मैं कुछ आत्माओं की प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं कुछ ऐसे दंपत्तियों को भी तैयार कर रहा हूं जो उन आत्माओं को ग्रहण कर सकेंगी। जल्दी ही शभुबाबू यहां आ जाएंगे। मरते समय उनके चेहरे पर गहरा संतोष और शांति थी, खुशी थी। वे बुद्ध बनने के योग्य थे; किंतु खेद है कि छलांग नहीं लगा सके। कई बार मैं पूछता कि आखिर आप क्यों झिझक रहे हैं? वे कहते, मुझे मालूम नहीं। अब तो वे जीवित नहीं है इसलिए मैं कह सकता हूं कि यद्यपि वे बुद्ध न बन सके, फिर भी वे बुद्धत्व के बहुत निकट थे।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(18)

मैं शंभुबाबू से अपनी मित्रता की चर्चा कर रहा था। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह मित्रता अजीब थी। मैं उस समय नौ साल का था और वे मेरे पिता की उम्र के थे। नामी वकील थे-हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में भी वकालत करते थे। कानून के अधिकारी थे। और उनकी मित्रता किससे थी-एक अशिक्षित, जंगली और शैतान बच्चे से। प्रथम भेंट के समय जब उन्होंने मुझसे कहा बैठिए, तो मैं हैरान रह गया। मैंने तो कभी सोचा भी न था कि उपसभापति खड़े होकर मुझसे कहेगा कि बैठिए, मैंने उनसे कहा, ‘नहीं पहले आप बैठिए क्योंकि आप मेरे पिता से भी बड़े हैं, आपसे पहले बैठने में मुझे संकोच होता है। उस समय उन्होंने मेरी ओर देखा और मैंने उनकी ओर देखा-उस क्षण जो घटा?’ उन्होंने अपनी आंखें बंद कर ली और दस मिनट तक सोचते रहे और फिर आंखें खोलकर बोले, ‘माफ करना मुझे नहीं मालूम कि क्या हुआ; किंतु कुछ घटा अवश्य है। तो उस समय से हम मित्र बन गए। यह 1940 की बात है। वे 1950 में मरे। उनके मरने के एक साल पहले मैंने उन्हें वह शब्द बताया जिसे वे वर्षों से खोजरहे थे और वह शब्द था कार्ल गुस्तोव जुंग द्वारा गढ़ा गया अंग्रेजी का शब्द ‘सिक्रोनिसिटी’। हम दोनों में सिक्रोनिसिटी हो गई थी। उन्हें भी मालूम था कि क्या हुआ और मुझे भी मालूम था कि क्या हुआ; किंतु उसको अभिव्यक्त करने के लिए ठीक-ठीक शब्द नहीं मिल रहा था। सिक्रोनिसिटी शब्द के एक साथ कई अर्थ है। वह बहुआयामी शब्द है। इसका अर्थ है एक लयात्मक भाव या प्रेम या मित्रता या इसका अर्थ है ‘दो हृदयों का अकारण एक साथ धड़कना। यह एक रहस्य है-संयोगवश ही कभी ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाता है जिसके साथ अच्छी तरह से अपनी पट जाती है-सारा जिगसा पज़ल का नक्शा फिट हो जाता है।

जब मैंने अपनी नानी को बताया कि गांव के उपसभापति से मेरी दोस्ती हो गई है। उन्होंने आश्चर्य से पूछा, क्या पंडित शंभुरत्न दूबे से? इस पर मैंने उनसे पूछा कि इसमें आश्चर्य की क्या बात है? नानी की आंखों में आंसू आ गए और उन्होंने कहा, मुझे चिंता इस बात की है कि अब तुम्हें बहुत कम मित्र मिलेंगे-तुम अभी छोटे हो तुम्हें तो शायद मिल भी जाएं लेकिन शंभुबाबू को इस दुनिया में और कोई मित्र नहीं मिलेगा।

मेरी इस कहानी में मुझे बार-बार नानी का उल्लेख करना पड़ेगा क्योंकि उनकी अंतर्दृष्टि बहुत गहरी थी-वे बहुत दूर तक देख सकती थीं। और यह सच है कि सिवाय मेरे शंभुबाबू का और कोई मित्र नहीं था।

मैं अपने गांव साल में एक-दो बार ही जाता था और जैसे-जैसे मैं अपने काम में- संन्यास आंदोलन और ध्यान-शिविरों में व्यस्त होता गया, वैसे-वैसे गांव जाना और

भी कम हो गया। उनके मरने के कुछ साल पहले तो मैं तब तक ही गांव में रुकता था जब तक स्टेशन पर मेरी गाड़ी रुकती थी। स्टेशन मास्टर मेरा संन्यासी था। वह गाड़ी को निर्धारित समय से दस-बीस या तीस मिनट अधिक रोक देता था-इससे अधिक नहीं रोक सकता था। क्योंकि स्टेशन के बाहर दूसरी गाड़ियां इंतजार में खड़ी रहतीं।

शंभुबाबू का और कोई मित्र नहीं था, इसलिए मुझे उनके एकाकीपन का अनुमान था। वे प्रायः हर रोज मुझे पत्र लिखते थे और कभी-कभी लिफाफे में कोरा कागज डालकर भेज देते थे-मैं उसको भी समझ जाता था। वे अकले थे और उनको मेरा साथ चाहिए था। मैं भी उनका बहुत ख्याल रखता था। उनके कारण मैं जैसे-तैसे कोशिश करके उस गांव पहुंचता था-यद्यपि उस गांव में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनके मरने के बाद तो मैं वहां पर बहुत कम गया हूं। मैं यह बहाना बना देता था कि वहां मुझे शंभुबाबू की बहुत याद आती है। और वह सच है कि उनके बिना मेरे लिए गांव में कोई आकर्षण नहीं था। मेरे कारण शंभुबाबू की जो निंदा और आलोचना हुई, उसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनको निंदा का कोई डर नहीं था। उन दिनों में भी मुझसे संबंधित होना बहुत खतरनाक था। लोग उनको समझाते थे कि इस लड़के की दोस्ती के कारण कोई आपका आदर नहीं करेगा- लोग आपको सभापति के पद से हटा देंगे। मैंने भी उनसे कहा कि मेरी दोस्ती के कारण आप सभापतित्व को क्यों खो रहे हैं। उन्होंने सभापतित्व से त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र लिखकर उन्होंने मुझसे कहा, ‘मुझे तुमसे प्रेम है और मेरे लिए इस सभापतित्व का कोई अर्थ नहीं है, कोईमहत्त्व नहीं है। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ छोड़ सकता हूं।’

लोगों ने कोशिश की कि वे अपना त्यागपत्र त्याग पत्र वापस ले लें, किंतु उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। वे अंत तक एकाकी ही रहे। उनके पास आराम से रहने के लिए काफी पैसा था, सो उन्होंने जब गांव के सभापतित्व से त्यागपत्र दिया तो उसी समय उन्होंने वकालत भी छोड़ दी। उनके चरित्र की ये विशेषताएं ही मुझे बहुत प्रिय थीं। उनके कारण ही मुझे कभी-कभी गांव जाना पड़ता था या कभी-कभी उनको अपने पास बुला लेता था। वे प्रामाणीक व्यक्ति थे और किसी बात से डरते नहीं थे। एक बार उन्होंने मुझसे पूछा-तुम क्या करना चाहते हो? इस विश्वविद्यालय में प्रौफेसर का काम तो तुम बहुत दिनों तक नहीं करोगे। मैंने उत्तर दिया था, ‘शभुबाबू! मैं कभी कोई योजना नहीं बनाता। अगर इस काम को मैं छोड़ दूंगा तो मेरे लिए दूसरा कोई काम तैयार होगा-अगर भगवान सब प्रकार के लोगों के लिए पशु-पक्षियों के लिए, वृक्षों के लिए काम खोज सकता है तो वह मेरे लिए भी कोई काम खोज ही लेगा। अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो वह उसकी समस्या होगी, मेरी नहीं। उन्होंने हंसकर कहा कि हां, यह तो ठीक है कि यह उसकी समस्या होगी लेकिन अगर वह न हो तो?’ मैंने कहा, ‘तब भी मेरे लिए कोई समस्या नहीं है। कोई काम न हुआ तो मैं लंबी सांस लेकर अस्तित्व से विदा ले लूंगा। तब मैं जबरन अपने आपको अस्तित्व पर नहीं लादूंगा।’ हम दोनों की बातें, दोनों के तर्क यदि दोबारा प्रस्तुत कर दिए जाते तो वे प्लेटों के वार्तालाप से कहीं अच्छे होते। वे बहुत ही तर्कपूर्ण व्यक्ति थे और मैं बिल्कुल तर्कहीन। फिर भी हम बहुत गहरे मित्र थे। लोगों को हमारी दोस्ती पर आश्चर्य होता था।

मैं कहता-‘इसको आप नहीं समझ सकते। मैं तर्कहीन हूं क्योंकि मैंने तर्क की व्यर्थता को देख लिया है। मैं तर्क में उनके साथ कुछ दूर तक जाता हूं फिर उनसे भी आगे बढ़ जाता हूं और वे डरकर रुक जाते हैं क्योंकि उनको मालूम है कि उनको भी तर्क के पार जाना है और इसमें दूसरा कोई उनकी सहायता नहीं कर सकता। आप लोग समझते हैं कि वे मेरी मदद करते हैं। सच तो यह है कि मैं उनकी मदद करता हूं’। तो एक दिन कुछ लोग उनके घर भी पहुंच गए कि क्या वह बालक आपकी सहायता करता है? या पथ प्रदर्शन करता है? उन्होंने उत्तर दिया, ‘निश्चय ही। इसमें कोई संदेहनहीं है। आप लोग उससे भी पूछ सकते है।’ मेरी नानी की यह आशंका ठीक थी कि शंभुबाबू को और

कोई मित्र नहीं मिलेगा। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि अपने सारे जीवनकाल में सिवाय शंभुबाबू के मुझे और कोई मित्र नहीं मिला। हां! परिचित तो बहुत थे। स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय में सैकड़ों लोगों से परिचय हुआ, किंतु सिवाय शंभुबाबू के मेरा कोई मित्र नहीं था।

किसी से परिचय करना तो बहुत आसान है किंतु मित्रता बहुत असाधारण बात है। मैं शंभुबाबू के गांव से अस्सी मील दूर रहता था किंतु जब भी मैं बीमार पड़ता, तुरंत उनका टेलीफोन आ जाता कि तुम कैसे हो! ठीक हो, बीमार तो नहीं हो? मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम बीमार हो।’ और ऐसा अनेक बार होता। मेरे बीमार पड़ते ही उन्हें तुरंत महसूस होता है कि मैं ठीक नहीं हूं। इसलिए देशभर में सफर करते समय अगर कहीं भी मैं बीमार हो जाता तो उनको अवश्य सूचित कर देता कि मैं बीमार हूं लेकिन आप चिंता मत करना। इसको कहते है सिक्रेनिसिटी। एक प्रकार से दो व्यक्तियों के अंतर के तार जुड़ जाते हैं। जिस दिन उनकी मृत्यु होने वाली थी, मैं बिना पूछताछ किए उस गांव के लिए कार से रवाना हो गया। जबलपुर से गाडरवोड़ा, तक सड़क बहुत खराब थी किंतु फिर भी कार को तेज रफ्तार से चलाता हुआ मैं वहां पहुंच गया। उस दिन मुझे जितनी जल्दी थी उतनी तो जीवन में कभी नहीं हुई-आज भी नहीं है-यद्यपि अब तो होनी चाहिए क्योंकि समय तेजी से बीत रहा है और जल्दी ही मुझे आप लोगों से विदा लेनी होगी।

उस दिन मैंने बड़ी तेजी से कार चलाई और समय पर शंभुबाबू के पास पहुंच गया। थोड़ी-सी भी देरी हो जाती तो मैं उनको जीवित न देख सकता। उन्होंने उसी प्रेमपूर्ण दृष्टि से मुझे देखा जैसे उन्होंने प्रथम बार मुझे देखा था। मृत्यु से पहले आधे घंटे तक हम दोनों से पूर्ण संवाद था। उन्होंने अपने परिवार के सब सदस्यों को बाहर भेज दिया और जब हम दोनों अकेले हो गए तो मैंने उनसे कहा कि आपको अगर कुछ भी कहना हो तो कह दीजिए। उन्होंने कहा ‘मुझे कुछ नहीं कहना। मेरा हाथ पकड़ लो। अपनी उपस्थिति से मुझे भर दो। मैं तुम्हारे पैर छूना चाहता हूं किंतु मैं बिस्तर से उठ नहीं सकता और अब तो कुछ ही क्षण बचे हैं।’ मैंने उनसे कुछ बातें कहीं जो उन्होंने बहुत ही ध्यान से सुनी। अपने बचपन में मैं केवल ऐसे दो ही व्यक्तियों को जानता था जो हर काम ध्यानपूर्वक करते थे। एक थीं मेरी नानी और दूसरे थे शंभुबाबू। ये दोनों बहुत ध्यान से मेरी बात सुनते थे।

मैं तो आजकल पूर्णतः विश्राम में जी रहा हूं। सुबह से लेकर रात तक कुछ नहीं करता, परंतु आप सबको बहुत व्यस्त रखता हूं। मैं कोई व्यवसाय या धंधा नहीं करता किंतु मुझे अपने आपको जीवित रखने के लिए ऐसे हजारों संन्यासी चाहिए, जो निरंतर काम करते रहे।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(19)

स्कूल में दाखिल होने के बाद सबसे पहली चीज जो मैंने देखी वह था मेरा मास्टर! हां! उसे चीज ही कहना चाहिए। वह प्रथम क्लास का मास्टर था। मुझे उसे देखते भी डर लगता था। वह बड़े डील-डौल का, सात फीट ऊंचा और चार सौ पौंड वजन का आदमी था। उसका चेहरा कुरूप था। उसके एक आंख नहीं थी और नाक भी टेढ़ी थी। वह था मेरा पहला मास्टर! उसको देखकर ही मैं कांप उठा! मैंने पिताजी से कहा, ‘स्कूल के प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करने से पहले इस आदमी को तो देख लो। ‘ पिताजी ने कहा ‘क्या हुआ है इसे? इसने मुझे पढ़ाया है और मेरे पिताजी को पढ़ाया है। कई पीढ़ियों को इसने पढ़ाया है।’ मैंने कहा, ‘इसीलिए कोई इसकी शिकायत नहीं कर सकता। अगर कोई बच्चा अपने पिता से इस मास्टर की शिकायत करता तो तुरंत उसका पिता कहता कि मैं भी तो उससे पढ़ा हूं।

मैं शिकायत लेकर उसके पास कैसे जा सकता हूं।’ मेरे पिताजी ने भी कहा-‘क्या हुआ है उसको। ठीक ही तो है।’ और उन्होंने कागज पर हस्ताक्षर कर दिए।

मैंने पिताजी से कहा, ‘हस्ताक्षर करके आप अपनी मुसीबत मोल ले रहे हैं।’ इस पर पिताजी ने कहा कि तुम बड़े अजीब लड़के हो। मैंने कहा ‘हां! हम दोनों अजनबी ही हैं। आपसे कई बरस दूर रहा हूं। मेरी मित्रता रही है आम के पेड़ों से, पहाड़ों से, नदियों से और सागर से। आप व्यापारी हैं, मैं व्यापारी नहीं हूं। आपके लिए पैसा ही सब कुछ है और मैं पैसों को गिन भी नहीं सकता।’ आज भी मैंने कई वर्षों से पैसे को हाथ नहीं लगाया। जरूरत ही नहीं पड़ती और मुझे बड़ा आराम रहता है। मुझे पता ही नहीं कि दुनिया के अर्थशास्त्र के क्या नियम हैं? मैं तो अपनी धुन में चलता हूं। आर्थिक नियमों को मेरा अनुसरण करना पड़ता है। सो मैंने पिताजी से कहा-‘आप पैसे को समझते हैं, मैं नहीं समझता। हमारी भाषाएं ही अलग-अलग हैं। मैं जो समझता हूं उसको आप नहीं समझ सकते और आप जो समझते हैं उसे मैं नहीं समझ सकता। दद्दा! हम एक-दूसरे के लिए नहीं बने,’ मेरे और पिताजी के बीच जोफासला था उसे तय करने में उन्हें पूरा जीवन लग गया, मैं तो बहुत जिद्दी हूं, मैं तो टस से मस नहीं होता-एक इंच भी इधर से उधर नहीं सरकता और यह जो संघर्ष शुरू हुआ हाथी द्वार से वह पिताजी के संन्यास लेने पर ही समाप्त हुआ।

हां! तो मैं अपने पहले मास्टर की बात कर रहा था। कोई भी उसका नाम नहीं जानता था। बच्चे उसको ‘काना मास्टर’ कहा करते थे या केवल ‘काना’ कहते थे।

वह बहुत ही कुरूप था। स्कूल में पहले ही दिन कुछ न कुछ तो होने ही वाला था। वह मास्टर बच्चों को बड़ी बेरहमी से सजा देता था। बच्चों के साथ ऐसा निर्दय व्यवहार करते मैंने और किसी को नहीं देखा था। इस मास्टर के दुर्व्यवहार के कारण कई बच्चों ने स्कूल छोड़ दिया था।

मैं तुम्हें बताता हूं कि पहले ही दिन स्कूल में मेरे साथ क्या हुआ? यह मास्टर गणित पढ़ा रहा था और मैं थोड़ा बहुत गणित जानता था क्योंकि मेरी नानी ने मुझे घर पर ही गणित और भाषा का आरंभिक ज्ञान करा दिया था। इसलिए जब वह पढ़ा रहा था तो मैं खिड़की से बाहर धूप में चमकते पीपल के पेड़ को देख रहा था। कोई और पेड़ धूप में इतना सुंदर नहीं दिखाई देता जितना पीपल। क्योंकि उसका हर पत्ता अलग से नृत्य करता है और सारा पेड़ एक ‘कोरस’ बन जाता है। हजारों पत्ते चमकते हुए एक साथ नाचते और गाते हैं और अलग-अलग भी नृत्य में लीन होते हैं। यूं भी पीपल का पेड़ दूसरे पेड़ों से बिल्कुल भिन्न है। दूसरे सब पेड़ ‘कार्बन-डायऑक्साइड’, को पीते हैं और दिन के समय आक्सीजन को छोड़ते हैं। मैं वैज्ञानिक नहीं हूं इसलिए मेरे कहने में अगर कोई गलती हो गई हो तो उसे ठीक कर लेना। परंतु पीपल का वृक्ष चौबीस घंटे आक्सीजन छोड़ता है। तुम पीपल के नीचे सो सकते हो किंतु और किसी वृक्ष के नीचे नहीं क्योंकि इससे सेहत को नुकसान होता है।

मैं धूप में चमकते हुए पीपल के पत्तों को नाचते हुए देख रहा था। पीपल पर सैकड़ों तोते एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूद रहे थे और बिना किसी कारण के वे खुशियां मना रहे थे। क्यों न खुश होते? उनको तो स्कूल नहीं जाना था।

मुझे खिड़की से बाहर देखते हुए काने मास्टर ने पकड़ लिया। उसने मुझसे कहा कि ‘पहले से ही बात साफ हो जानी चाहिए।’ मैंने कहा, ‘हां! जरूर! मैं भी स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि क्या होना चाहिए और कैसे होना चाहिए।’ उसने मुझसे पूछा, ‘जब मैं गणित पढ़ा रहा था तो तुम खिड़की से बाहर क्यों देख रहे थे!’ मैंने उत्तर दिया, ‘गणित को देखना तो नहीं पड़ता, सुनना होता है। मैंने आपका सवाल सुन लिया था और आप मुझसे उसका जवाब पूछ सकते हैं।’ उसने मुझसे पूछा और मैंने सही उत्तर दे दिया तो उसे

विश्वास न हुआ और कहने लगा, ‘तुम चाहे सही उत्तर दो चाहे गलत, मैं तो तुम्हें सजा देकर ही रहूंगा। जब मास्टर पढ़ा रहा हो उस समय खिड़की से बाहर नहीं देखना चाहिए।’ उसने मुझे अपने पास बुलाया। मैं उसके दंड देने के तरीकों के बारे में सुन चुका था कि बच्चों को पीड़ा पहुंचाने में उसे बहुत मजा आता है। उसने पेंसिलों का डिब्बा निकाला। वह जिस बच्चे को सजा देता था उसके हाथ की उंगलियों में पेंसिल खोंसकर फिर हाथ को जोर से दबाता था और पूछता था-‘और दबाऊं? और दबाऊं? बेचारे छोटे-छोटे बच्चों को उसकी यह क्रूरता सहनी पड़ती थी। जो लोग अध्यापक बनते हैं और जो पढ़ाते हैं, उनमें दूसरों पर शासन करने की इच्छा बड़ी बलवती होती है। मैंने उन पेंसिलों को देखा और उससे कहा कि ‘इनको मेरी ऊंगलियों में डालना आपको बहुत महंगा पड़ेगा-शायद नौकरी से ही हाथ धोना पड़े। उसने हंसकर कहा कि ‘मुझे कौन रोक सकता है?’ मैंने कहा, ‘मैं तो केवल इतना पूछना चाहता हूं कि जब गणित पढ़ाया जा रहा हो उस समय खिड़की से बाहर देखना क्या अपराध है? कौन से नियम के विरुद्ध है?’ जब मैंने बिल्कुल सही उत्तर दे दिया है तो किसलिए मुझे आप दंड देना चाहते हैं? खिड़की किसलिए बनी है? क्लासरूम में तो दिन भर कुछ न कुछ पढ़ाया ही जाता है... खिड़की तो बाहर देखने के लिए ही बनी है। मैं हेडमास्टर के पास जाकर पूछता हूं कि जब मैंने सही उत्तर दे दिया है तो आप किस आधार पर मुझे सजा देना चाहते हैं?’

हेडमास्टर का नाम सुनते ही वह कुछ नर्म पड़ गया। मैं कहता गया ‘मैं हेडमास्टर के बाद जो म्युनिसिपल-कमेटी इस स्कूल को चलाती है उसके सभापति के पास जाऊंगा कि वह स्वयं आकर देखें कि इस स्कूल में क्या-क्या होता है।’ यह सुनकर वह कांप उठा। मैं तो सीधे हेडमास्टर के पास गया और उसे अपनी सारी बात बताई। हेडमास्टर कहने लगा कि ‘मुझे मालूम है कि यह बच्चों को सताता है-ऐसा करना अवैध है किंतु मैं उसको कुछ कह नहीं सकता क्योंकि वह सबसे पुराना अध्यापक है और सबके पिता तथा दादा उससे पढ़ चुके हैं। उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।’ मैंने उससे कहा कि ‘मुझे किसी की कोई परवाह नहीं। मेरे पिता और दादा भी उससे पढ़ चुके हैं किंतु मैं तो अपने परिवार से दूर ही रहा हूं-एक प्रकार सेइस स्थान के लिए विदेशी ही हूं। यह सुनकर हेडमास्टर ने कहा-‘हां! यह तो मैं समझ ही गया कि तुम यहां के नहीं हो लेकिन बेटा! अकारण मुसीबत में मत पड़ो। वह तुम्हें बहुत सताएगा।’ मैंने कहा-‘देख लूंगा! अत्याचार के विरुद्ध मेरी लड़ाई होकर ही रहेगी।’ और ऐसा कहते हुए मैंने अपनी नन्हीं मुट्छी को हेडमास्टर की मेज पर जोर से मारा। मैंने हेडमास्टर से भी पूछा ‘आप अपनी शिक्षा की नियमावली को देखकर मुझे बताइए कि जब मैं सब प्रश्नों का सही उत्तर दे चुका हूं तो उस समय मेरा खिड़की से बाहर देखना क्या अपराध माना जाएगा? ‘हेडमास्टर ने कहा, ‘नहीं! जब तुमने सही उत्तर दे दिए है तो ऐसा करना अपराध नहीं है।’ हेडमास्टर ने काने मास्टर को समझाया कि इस बच्चे को परेशान करना ठीक नहीं है-कहीं लेने के देने न पड़ जाए! किंतु काने मास्टर का रवैया तो और अधिक आक्रामक हो गया और कहने लगा, ‘यह बच्चा मेरा क्या बिगाड़ सकता है? देख लूंगा इसे। मैं यहां पर सबसे पुराना मास्टर हूं!’ मैंने कहा-‘कल तय हो जाएगा कि तुम इस स्कूल में रहते हो या मैं?’

घर जाकर मैंने पिताजी से सब बताया। पिताजी ने कहा, ‘तुम सबको मुसीबत में डालोगे’ मैंने उनसे कहा कि ‘मैं आपकी जानकारी के लिए यह सब बता रहा हूं ताकि बाद में आपको यह शिकायत न हो कि मैंने आपको अंधेरे में रखा।’

मैं पुलिस कमीश्नर के पास गया। वह बहुत अच्छा आदमी था। उसने कहा, ‘इस मास्टर के बारे में मैंने भी सुना है। मेरे अपने बेटे को भी इसने सताया है किंतु आज तक कभी किसी ने उसकी शिकायत नहीं की। मैं खुद उसकी शिकायत नहीं कर सकता क्योंकि मुझे डर है कि वह मेरे बेटे कोफेल न कर दे। कुछ महीनों की बात है-फिर मेरा बेटा अगली क्लास में चला जाएगा। तब तक जो होता है सो होने दो।’ मैंने कहा कि ‘मुझे इस

बात का डर नहीं है। मैं जीवन भर इस क्लास में रहने को तैयार हूं। इसलिए मैं उसकी शिकायत दर्ज कराना चाहता हूं।’ उसने मेरी पीठ थपथपायी और बोला, ‘अच्छा मैं कल आऊंगा।’ इसके बाद मैं म्युनिसिपल कमेटी के सभापति के पास गया। वह तो बिल्कुल गोबर-गणेश था! उसने कहा, ‘इसके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता। तुम्हें सहन करना होगा।’ मैंने उत्तर दिया, ‘मैं सहन नहीं करूंगा। मेरी आत्मा के विरुद्ध जो भी होगा उसे मैं सहन नहीं करूंगा।’ इस पर वह बोला, ‘अगर ऐसी बात है तो तुम उप-सभापति के पास जाओ। शायद वह तुम्हारी कुछ मदद कर सके।’

इस सुझाव के लिए मुझे उस गोबर-गणेश का आभारी होना चाहिए। उप-सभापति थे शंभु दुबे। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं कि सारे गांव में वही एक समझदार आदमी थे। जब मैंने उनके दरवाजे को खटखटाया तो उन्होंने कहा ‘आइए’। उस समय मैं आठ-नौ साल का था। उन्होंने समझा कि कोई बड़ा आदमी होगा इसलिए मुझे देखकर थोड़ा हैरान हुए। मैंने उनसे कहा कि मैं काने मास्टर की शिकायत करने आया हूं। मैंने श्री दुबे को पूरी कहानी सुनाई कि कैसे यह मास्टर बच्चों की उंगलियों में पेंसिल डालकर और नाखूनों के नीचे पिन चुभाकर बच्चों को पीड़ा पहुंचाता है। श्री दुबे ने भी यही कहा कि उसके बारे में सुना तो है किंतु किसी ने शिकायत नहीं की। मैंने कहा कि लोग शिकायत करने से डरते हैं कि वह इसके बाद उनके बच्चों को और अधिक परेशान करेगा।

श्री दुबे ने मुझसे पूछा, ‘क्या तुम्हें इस बात का डर नहीं है?’ मैंने कहा, ‘नहीं! मैं फेल होने को तैयार हूं। मैं तो यह लड़ाई लड़कर ही रहूंगा। इस स्कूल में या तो वह रहेगा या मैं। मेरे सामने सफलता या असफलता का कोई सवाल नहीं है फिर मैं क्यों डरूं?’ शंभु दुबे ने मुझे अपने पास बुलाया और मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा-‘मुझे विद्रोही लोग बहुत पसंद हैं किंतु मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि तुम्हारी उम्र का बालक विद्रोही हो सकता है। शाबास!’ हम दोनों मित्र बन गए और यह मित्रता उनकी मृत्यु तक चली।

उस गांव में शंभु दुबे जैसा योग्य और गुणवान सज्जन और कोई नहीं था। वे अनूठे व्यक्ति थे, अनोखे थे। मैं तो यह कहना चाहता हूं कि समस्त भारत में मुझे शंभु दुबे जैसा दूसरा कोई नहीं मिला। जब मैं सारे भारत का दौरा किया करता था तो शंभु दुबे महीनों तक मेरा इंतजार करते कि मैं कब एक दिन के लिए गांव आऊंगा। उस गांव से जब भी मेरी गाड़ी गुजरती तो वे मुझसे मिलने स्टेशन आते। हां! मां और दद्दा तो आते ही थे। किंतु शंभु दुबे मेरे रिश्तेदार नहीं थे। उनका मेरे प्रति बहुत प्रेम था और इस प्रेम की शुरुआत हुई थी जब मैं उनके पास काने मास्टर की शिकायत करने गया था। शुंभु दुबे म्युनिसिपल कमेटी के सभापति थे। उन्होंने मुझसे कहा था ‘तुम चिंता मत करो। इस मास्टर को सजा मिलनी चाहिए। वास्तव में उसका सेवा काल समाप्त हो गया है और उसने सेवाकाल को बढ़ाने का आवेदन भेजा है किंतु हम इसे मंजूर नहीं करेंगे। कल से तुम उसे स्कूल में नहीं देखोगे।’ मैंने पूछा, ‘यह वायदा है?’ हमने एक दूसरे की आंखों में देखा। उन्होंने कहा, ‘हां! यह वायदा है।’ दूसरे दिन काना मास्टर चला गया। इसके बाद वह मेरी आंख से आंख न मिला सकता था। मैंने कई बार उससे मिलने की कोशिश की ताकि उससे विदा ले लूं। किंतु वह डरपोक था।

स्कूल के उस पहले दिन ने जीवन में कई चीजों को आरंभ कर दिया।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(20)

मैं तुम्हें बता रहा था उस दोस्ती के बारे में जो एक नौ वर्ष के बच्चे और पचास वर्ष के प्रौढ़व्यक्ति में थी, दोनों की आयु में बहुत अंतर था किंतु प्रेम इन फासलों को पार कर जाता है। परंतु इसको साधारण प्रेम भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि शंभुबाबू अपने बेटे की भांति भी मुझसे प्रेम कर सकते थे। लेकिन ऐसी बात नहीं थी। वस्तुत हम दोनों में मैत्री हो गई थी। मैत्री से बढ़कर और कुछ नहीं है। मैंने ‘मित्रता’ शब्द का प्रयोग नहीं किया क्योंकि मैं मानता हू कि मैत्री मित्रता से भी ऊंची है। प्रेम की तरह मित्रता भी एक बंधन बन सकती है। मित्रता में भी इर्ष्या, जलन, एकाधिकार की भावना, अपने प्रिय को खो देने का डर होता है और इस के कारण संघर्ष, झगड़ा, और दुख होता है। अक्सर यह देखा गया है कि जिनसे प्रेम होता है। वह तो अपने ‘होने’ की सुगंध या खिलावट है। मैत्री इन सब छोटी, मध्यम और तुच्छ बातों से मुक्त है।

अब मैं समझ सकता हूं कि मेरी नानी शंभुबाबु से मेरी मित्रता पर क्यों रोईं उन्होंने इसके बारे में जो कहा वह भी ठीक था कि शंभुबाबू तो अधिक वर्षों तक जीवित नहीं रहेंगे किंतु तुम्हें मित्र मिलने मुश्किल हैं क्योंकि तुम्हें शंभुबाबू जैसे लोग नहीं मिलेगे और तुम्हारे लिए मित्रता का मापदंड होगा ‘शंभुबाबू’ और यह सच है कि कि स्कूल में मेरा कोई मित्र नहीं था, कालेजमें मेरा कोई मित्र नहीं था और विश्वविद्यालय में लोग मेरा आदर करते थे किंतु वहां भी कोई मित्र नहीं था। विचित्र बात है-बचपन से आदर तो मुझे मिला किंतु मित्र कोई नहीं मिला। किंतु अगर मेरी नानी जीवित होती तो आज वे इन हजारों संन्यासियों को देखती जो मेरे मित्र है। नानी भी चली गई, शंभुबाबू भी चले गए, खेद है कि जब मेरी पूर्ण खिलावट का समय आया तो मेरे सच्चे हितैषी इस दुनिया में ही न रहे।

नानी ने मुझसे कहा था और ठीक ही कहा था कि तुम्हें अकेले ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। मैंने उनसे कहा ‘अकेलापन कितना दुखदायी है। तुम्हारे नाना मुझे धोखा देकर चले गए। तब से मैं अकेली ही जी रही हूं। तुम भी तो विश्वविद्यालय में पढ़ने चले गए। महीनों इंतजार करती हूं तब कहीं तुम एक-दो दिन के लिए आते हो। और वे दो दिन पलक झपकते ही बीत जाते हैं। तुम्हें क्या मालूम कि एकाकीपन क्या होता है?’ मैंने उनसे कहा कि ‘आप नाना को क्यों दोषी ठहराती हो। उन्होंने जानबूझकर तो आपको कोई धोखा नहीं दिया। जीवन और मृत्यु तो किसी के वश में नहीं है। वे तो अंतिम समय बार-बार यही कह रहे थे, ‘चक्र को रोको राजा! चक्र को रोको।’ वास्तव में वे जन्म और मृत्यु से मुक्ति चाहते थे। वे अपने भाव को ठीक तरह से अभिव्यक्त नहीं कर रहे थे किंतु वे आवागमन से मुक्ति चाहते थे। मोक्ष चाहते थे। ‘मोक्ष का अर्थ है पूर्ण स्वतंत्रता।’

मेरी नानी ने शंभुबाबू के लिए जो कहा कि उन्हें और मित्र नहीं मिलेगे, वह बिल्कुल सही कहा, किंतु मुझे जो कहा वह कुछ हद तक ही सही है। केवल वहीं तक जब तक मैंने लोगों को संन्यास में दीक्षित करना आरंभ नहीं किया। मैंने जब पहली बार कुल्लू मनाली जैसे सुंदर प्रदेश में इक्कीस लोगों को संन्यास में दीक्षित किया उस समय मेरी मा अर्थात मेरी नानी जीवित थीं, इसके कुछ दिनों बाद ही उनकी मृत्यु हुईं मैं नानी को ही अपनी मां समझता था-कई बार अपनी इस गलती को सुधारने की कोशिश की, किंतु सुधार न सका। अभी भी मैं अपनी मां को ‘भाभी’ कहता हूं। नानी के पास मैं कई साल तक रहा और उसको ही अपनी मां समझता रहा। अब तो मेरे दूसरे जन्म की संभावना नहीं है। अगर होती तो मैं नानी को ही अपनी मां चुनता। किंतु मेरा चक्र तो रुक गया है इसलिए दोबारा मेरा जन्म नहीं होगा।

स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय में तो मुझे कोई मित्र नहीं मिला। हां। प्रशंसक थे, परिचित थे, अनुयायी थे। जब मैंने लोगों को संन्यास की दीक्षा दी उस दिन मैं सोच रहा था कि या ये अनुयायी कभी मेरे मित्र बन सकेंगे?

मैं अपनी नानी को भी संन्यास की दीक्षा देना चाहता था परंतु गाडरवाडा कुल्लू से हजारों मील दूर है।

मेरी नानी और शंभुबाबू ने मुझे बहुत ही बिगाड़ दिया था। मेरी बातों को, मेरी गप्पबाजी को ये दोनों इतने ध्यान से सुनते थे कि मुझे स्वयं ऐसा लगता था कि मैं कोई बहुत बड़े सत्य की चर्चा कर रहा हूं।

मुझे कहानियां बहुत प्रिय है और मेरी नानी को भी कहानियां बहुत अच्छी लगती थीं। वे मुझे कहानियां नहीं सुनाती थीं, वे तो मुझे कहानी सुनाने के लिए उकसाती थीं और फिर मैं उनका सुनाने लगता, सब प्रकार की मनगढ़ंत कहानियां-दुनियाभर की गप्पे। उन्होंने ही मुझे कहानीकार बना दिया। वे दिनभर मेरा इंतजार करतीं कि कब मैं उनके पास जाकर उनको कहानी सुनाऊं। वे निराश न हो इसलिए कपोल-कल्पना से मैं कोई न कोई कहानी तैयार कर लेता। सचमुच नानी ने मुझे सफल कहानीकार बना दिया। स्कूल की सभी प्रतियोगिताओं में मैं जीतता था और यह क्रम विश्वविद्यालय तक चलता रहा। मैंने अनेक पुरस्कार, मैडल, कप और शोल्ड जीते। उन्हें देखकर मेरी नानी छोटे बच्चे की भांति खुश हो जातीं। उनका सारा घर मेरे पुरस्कारों से एक अजायबघर बन गया था। हाईस्कूल तक मैं दिन के समय अपने पिताजी के घर रहता और रात को अपनी नानी के पास चला जाता। और रात को ही मैं उनको कहानी सुनाता।

मैं जो भी बोलता उसका हर शब्द उनके लिए मूल्यवान होता। वे बड़े ध्यान से सुनतं कि कहीं कोई शब्द उनसे छूट न जाएं। वे बड़े उत्साह से पूछतीं, ‘राजा! बताओ तो तुमने दिनभर कयार किया? क्या हुआ?’ और बस शुरु हो जाती मेरी कहानी-सच्ची या झूठी! नानी भी बार-बार पूछतीं, ‘अच्छा। फिर क्या हुआ? फिर क्या हुआ?’ इसमें कोई संदेह नहीं कि नानी और शंभुबाबू दोनों ने मुझे इतना प्रेम और इतना महत्त्व दिया कि मुझे सदा के लिए बिगाड़ दिया। मैंने सैकड़ों पुरस्कार जीते। उस प्रदेश का ऐसा कोई हाईस्कूल न होगा जहां मैंने बोलकर पुरस्कार न प्राप्त किया हो सिवाय एक बार के। उस समय मुझे पुरस्कार मिलने की बजाय एक लड़की को मिला। उपस्थित सब श्रोता-यहां तक कि वह लड़की भी-आश्चर्यचकित हो गए। सुननेवाले दो हजार छात्र और सभापति के आसन पर बैठा हुआ प्रिंसिपल इस पक्षपातपूर्ण निर्णय से असंतुष्ट थे। प्रिंसिपल ने मुझे बुलाकर कहा-‘वास्तविक विजेता तो तुम हो’ और उसने मुझे अपनी घड़ी दी जो बहुत ही सुंदर और अमूल्य थी। मुझे इतनी घड़ियां मिली है कि उनका मैं हिसाब नहीं रख सका लेकिन एक घड़ी विचित्र है-उसकी जब मुझे जरुरत पड़ती है समय देखने के लिए तो वह बंद हो जाती है-बाकी समय ठीक चलती है। वह रात को तीन और पांच बजे के बीच बंद हो जाती है और मेरी नींद सदा तीन और पांच बजे के बीच खुलती है अपनी पुरानी आदत के कारण। अपनी युवावस्था में मैं तीन बजे उठा करता था। इसलिए आज भी एक बार तो उस समय आंख अवश्य खुलती है। और मैं घड़ी को देखकर फिर सो जाता हूं। समझता हूं कि रात बहुत लंबी हो गई है।

उस घड़ी को मुझे देते हुए प्रिंसिपल ने कहा-‘जीते तो तुम्हीं हो। किंतु यह निर्णायक इस लड़की से प्रेम करता है इसलिए उसने उसके पक्ष में निर्णय दिया है। जबकि वह प्रोफेसर है फिर भी मूर्ख है। अब मैं उसको कालेज से निकाल दूंगा। सब लोगों ने देखा था कि वह लड़की कुछ भी नहीं बोल सकी थी और जो थोड़ा-बहुत बोली वह भी किसी की समझ में न आया।

मैंने प्रिंसिपल से कहा कि आपने ऐसे आदमी को निर्णायक क्यों बनाया?’ और मैंने सारे समाचार-पत्रों को यह प्रेम-कहानी बता दी। उस बेचारे को यह निर्णय बहुत महंगा पड़ा। उसकी नौकरी तो गई, साथ ही उसकी प्रेमिका भी उसे छोड़ गईं

मेरे पुरस्कारों से मेरी नानी का घर भर गया था। हर वर्ष मैं वाद-विवाद प्रतियोगिता, कहानी-प्रतियोगिता या कविता-पाठ प्रतियोगिता में अनेक पुरस्कार प्राप्त करता-उनको मैं नानी के पास भेज देता। नानी उन्हें देखकर फूली न समाती। शंभुबाबू और नानी के कारण ही मैंने अनायास बोलने की कला सीख ली। मैं एक कुशल वक्ता बन गया। वास्तव में दूसरे का ध्यान और आकर्षण व्यक्ति की सोई हुई शक्तियों को जाग्रत कर देता है। यूं तो इस दुनिया में कोई किसी की बात नहीं सुनता-सुनने का ढोंग करता है सुनता नहीं है। ध्यान से सुनना एक बहुत बड़ी कला है- स्त्रैण गुण है।

आज मैं तुम्हें जो कहानियां सुना रहा हूं वे सब मैं अपनी नानी को सुनाया करता था। वे दिनभर मेरी प्रतीक्षा करती थी कि कब मैं उनके पास जाऊं और उन्हें कोई कहानी सुनाऊं। शंभुबाबू नानी से बिल्कुल भिन्न थे-वे बौद्धिक थे। शंभुबाबू जैसे उच्च कोटि के बौद्धिक जैसे उच्च कोटि के बौद्धिक व्यक्ति मैंने बहुत कम देखे हैं। बौद्धिक होने के साथ-साथ वे अंतर्दर्शी भी थे। वे भी बड़े ध्यान से मेरी बातें सुनते थे और प्रतिदिन मेरा इंतजार करते थे। स्कूल समाप्त होते ही मैं रोज उनके पास जाता था। वे मेरे लिए चाय और मिठाई तैयार रखते थे। बहुत कम लोग दूसरे की पसंद का ख्याल करते हैं किंतु शंभुबाबू सदा मुझे मेरी पसंद की ही मिठाइयां मुझे देते थे। वे उसी दुकानदार से चीजें खरीदते थे जहां से मेरी नानी खरीदती थी। वे खाने की चीजे, मिठाई आदि भी वही खरीदते जो मेरी नानी खरीदती- दुकानदार से उन्हें पता लग गया था कि मैं खाने के लिए क्या पसंद करता हूं। मैं स्कूल से सीधे उनके घर की ओर भागता। वहां जल्दी से कुछ खा-पीकर उनको कुछ न कुछ सुनाना शुरु कर देता। वे कहते ‘तुम्हारी जो इच्छा हो वही सुनाओ। मुझे तो तुम्हारी बातें सुनना अच्छा लता है। अगर तुम मौन रहना चाहते हो तो मौन रहो-मैं मौन को भी सुन लूंगा।’ अर्थात बोलने या न ोलने की उन्होंने मुझे पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी। और कभी-कभी ऐसा भी होता कि मैं कुछ न बोलता। जब मैं आंखें बंद करके बैठता तो वे भी आंखें बंद कर लेते। कई-कई दिन हम दोनां चुप बैठे रहते। मैं शंभुबाबू से कहता कि आप बड़े है इसलिए आपको बोलना चाहिए और मुझे सुनना चाहिए। आप मुझे बच्चे की बातें क्यों सुनते है।’ वे हंसते और कहते ऐसा नहीं हो सकता। भला मैं तुम्हें क्या सुनाऊंगा-मैं तो कुछ नहीं जानता।’

इन दोनों के इस प्रकार के मेरे प्रति व्यवहार ने मुझे बचपन में ही जीवन के इस तथ्य से परिचित कर दिया कि अपने प्रति दूसरे का ध्यान मनुष्य के लिए एक प्रकार का भोजन है। मनोवैज्ञानिकों को तो इसका पता अब लगा है। बच्चे को अगर ध्यान न मिले तो वह पनप नहीं सकता-उसका विकास नहीं होता। हर व्यक्ति के लिए ध्यान अनिवार्य पोषण है। इस अर्थ में मैं बहुत भाग्यशाली रहा नानी और शंभुबाबू-दोनों ने मुझे बोलने की आदत डाल दी। वक्तृत्व की कला को सीखे बिना ही मैं अनायास वक्ता बन गया। मुझे तो अभी भी वैसा औपचारिक भाण देना नहीं आता जिसका आरंभ ‘भाइयो और बहनो’ के संबोधन से होता है। मैं तोते की भांति रटे हुए भाषण नहीं दे सकता। मैं तो हृदय की गहराई से बोलता हूं और मेरे शब्दों मं आग होती है आग जो सुननेवालों को भी छू लेती है।

जिस प्रिंसिपल ने मुझे घड़ी पुरस्कार स्वरुप दी थी उनका नाम था बी.एस. औद्योलिया। शायद वे अभी जीवित हों। उस दिन उन्होंने मुझसे कहा था ‘मुझे बहुत अफसोस है कि निर्णायक ने तुम्हें पुरस्कार नहीं दिया।’ उन्हें सचमुच बुरा लगा

और उन्होंने उस प्रोफेसर को नौकरी से निकाल दिया। उन्होंने यह भी कहा कि जब भी मुझे किसी चीज की जरुरत हो तो मैं उन्हें तुरंत सूचित कर दूं। बाद में जब भी मुझे कोई जरुरत होती तो मैं उन्हें लिख कर भेज देता और वे तुरंत उसे पूरा कर देते। एक बार मैंने उनसे पूछा कि आप यह कभी नहीं पूछते कि मुझे इस चीज की जरुरत क्यों है? उन्होंने कहा कि तुम्हें जान लेने के बाद यह प्रश्न तो कभी उठ ही नहीं सकता। जरुरत े तुम किसी चीज की मांग नहीं कर सकते। मैंने उनकी ओर देखा और मुझे आश्चर्य हुआ कि एक नामी कालेज का प्रिंसिपल इतना समझदार कैसे हो सकता है, उसकी
समझ इतनी गहरी कैसे हो सकती है?

प्रिंसिपल ने मेरे चेहरे के भाव को पढ़ लिया और उन्होंने हंसकर कहा, ‘यह तो
संयोग की बात है कि मैं इस कालेज का प्रिंसिपल हूं। सरकार की गलती से मैं नियुक्त हो गया।’ उन्होंने मुझसे पूछा कि मैंने दाढ़ी क्यों रख ली है। मैंने कहा, ‘आपके कारण। अब आप मेरे चेहरे को नहीं पढ़ सकोगे।’ उन्होंने हंस कर कहा, ‘तुम अपने भाव को छुपा नहीं सकोगे। तुम्हारी आंखे उसे प्रकट कर देगी इसलिए अब तुम रंगीन चश्मा लगाना शुरु कर दो।’ परंतु मैं रंगीन चश्मा लगा नहीं सकता क्योंकि मैं अपने और अस्तित्व के बीच कोई बाधा उपस्थित नहीं करना चाहता।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(21)

जीवन है एक चक्र-यूं कहना चाहिए कि चक्र के भीतर चक्र। मेरा जीवन भी ऐसा ही रहा। पचास वर्षों में मैंने कम से कम पचास जीवन जी लिए। जीने के अतिरिक्त मैंने किया ही क्या? लोग तो काम-धंधा करते हैं किंतु मैं तो बचपन से ही वावावर था-कुछ नहीं करता था। जब जीने के अतिरिक्त कुछ न किया जाए तो जीवन का आयाम बदल जाता है। उसमें गहराई आ जाती है, मैं सदा अपने ढंग से ही जीता रहा। मैंने जीविका-उपार्जन के लिए कुछ नहीं किया। न बैंक में पैसा जमा किया, न राजनीति में कोईमहत्त्वपूर्ण पद प्राप्त किया। जीने के मेरे ढंग से ही जीता रहा। मैंने जीविका-उपार्जन के लिए कुछ नहीं किया। न बैंक में पैसा जमा किया, न राजनीति में कोईमहत्त्वपूर्ण पद प्राप्त किया। जीने के मेरे ढंग का अनिवार्य अंग था पढ़ाना-सो यहां भी वही कर रहा हूं-मैं सदा ‘मास्टर’ ही बना रहता हूं।

मैंने कभी किसी से समझौता नहीं किया। न अपने आप को दूसरे के अनुसार ढाला। मुझसे सब प्रेम करते थे-माता-पिता, चाचा, शिक्षक, परंतु मैं कभी उनकी अपेक्षाओं के अनुसार न चला। अब तो मैं बदल नहीं सकता-बहुत देर हो गई है।

मेरी नानी ने मुझसे कई बार कहा कि तुम कहीं भी ‘फिट’ नहीं हो सकोगे। दूसरों के साथ तुम्हारी जमेगी नहीं, तुम सदा लोगों से अलग ही रहोगे। सो यह बात बिल्कुल सही थी। जिस विश्वविद्यालय में मैं पढ़ाता था वहां जब सारे स्टाफ का वार्षिक फोटो लिया तो मैं उसमें कभी सम्मिलित नहीं होता था। एक बार वहां के उपकुलपतिे मुझसे पूछा कि मैं क्यों नहींफोटो खिंचवाने आता, तो मैंने कहा था कि मुझे इन गधों के साथ फोटो खिंचवाना अच्छा नहीं लगता। नौकरी करते समय विश्वविद्यालय में मेरा किसी से मेलजोल नहीं था। उन लोगों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। मेरी दोस्ती थी एक गुलमोहर के पेड़ से। गुलमोहर बहुत ही सुन्दर वृक्ष है। जब यह खिलता है तो हजारों फूल एक साथ उस खिल उठते हैं और उनका रंग मेरे संन्यासियों का रंग है। बस वह गुलमोहर ही मेरा एकमात्र मित्र था। मैं अपनी कार को सदा उसके नीचे खड़ी कर देता। और सब लोग समझ गए थे कि वह जगह मेरी है इसलिए दूसरे लोग वहां पर अपनी गाड़ी न रोकते। जब मैंने विश्वविद्यालय को छोड़ा और उपकुलपति से विदा ली तो मैंने उनसे कहा कि ‘मैं जल्दी में हूं क्योंकि मुझे अपने उस गुलमोहर से भी विदा लेनी है।

सूर्यास्त हो रहा है और इसके बाद वह सो जाएगा।’ उपकुलपति ने मुझे ऐसे देखा जैसे कि मैं पागल होऊं-‘मिसफिट’ को लोग ऐसे ही देखते हैं। मैं गुलमोहर के पास गया और बड़े प्यार से उसका आलिंगन किया। उपकुलपति अपनी खिड़की से हमें देख रहा था। वह भागा हुआ आया और बोला, ‘मैंने तो आज तक किसी को इस प्रकार से विदाई लेते नहीं देखा अब मेरी समझ में आ गया है कि पेड़ से भी प्रेम किया जा सकता है। दो महीनों के बाद उन्होंने मुझे फोन पर बताया कि ‘तुम्हारे जाने के बाद तो वह पेड़ सूख गया है। उस पर न फूल है न पत्त।’ दूसरे दिन सुबह मैं वहां गया और जाकर मैंने देखा कि सचमुच पेड़ मर गया था। उसकी शाखाओं पर न फूल थे न पत्ती। मैंने उसका आलिंगन किया, लेकिन उसकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला।

हां! तो मैं कह रहा था कि मैं कहीं भी किसी से मेल न खा सका-सदा ‘मिसफिट’ ही रहा। जब मैं कालेज में पढ़ता था तो बेचारें प्रोफेसर मुझसे डरते थे-मुझे अपनी शाम समझते थे और मुझे उनकी मुसीबत बनने में बड़ा मजा आता था। मैं भी क्या करता? वे लोग जो भी पढ़ाते थे वह इतना घिसा-पिटा होता था कि मुझे जमकर उनके लेक्चर की आलोचना करनी ही पड़ती और इससे वे घबड़ाते थे। जब मैं स्कूल में, हाई-स्कूल में और कालेज में पढ़ता था-मैं क्लास में प्रायः गैरहाजिर ही रहता था किंतु मुझसे छुटकारा प्राप्त करने के लिए वे मुझे पचहत्तर प्रतिशत उपस्थिति दे देते थे। जबलपुर के एक कालेज ने मुझे निष्कासित कर दिया था क्योंकि वहां पढ़ाने वाले एक प्रोफेसर ने का था कि अगर मैं उस कालेज में रहूंगा तो वह त्यागपत्र दे देगा। और उस प्रोफेसर ने जीवरभर वहां पढ़ाया था और उसके पास पीएच.डी. और डी.लिट. जैसी बड़ी- बड़ी डिग्रियां भी थीं। इसलिए एक गरीब छात्र के लिए प्रिंसिपल उसको नहीं निकालना चाहता था। मुझे निष्कासित करने के समय प्रिंसिपल ने मुझे बुलाकर पूछा, ‘तुम्हें कुछ कहना है?’ मैंने उनकी मेज पर जोर से हाथ मारकर कहा, ‘मुझे क्या कहना है? आप इस डा. एस.एन.एल. श्रीवास्तव से पूछिए कि मेरी गलती क्या है? मैंने उनका क्या नुकसान किया है? केवल प्रश्न पूछे हैं। वे तर्कशास्त्र पढ़ाते है सो उनकी क्लास में मैं केवल तर्क करता हूं। इसके कारण वे इतने क्यों परेशान हैं?’ लेकिन जेसे ही डा. श्रीवास्तव को पता लगा कि मैं प्रिंसिपल के कमरे में हूं वे तुरंत घर भाग गए। मैंने प्रिंसिपल से कहा कि डा. श्रीवास्तव के तो बीबी-बच्चे हैं, आप उन्हें नौकरी से मत जवाब दीजिए। हां मुझे निष्कासित कर सकते हैं। लिखित आदेश दीजिए।’ प्रिंसिपल ने कहा कि अगर मैं तुम्हें निष्कासित कर देता हूं तो तुम्हें किसी दूसरे कालेज में शायद प्रवेश नहीं मिलेगा। मैंने कहा, ‘इसकी आप चिंता न करें।’ इसके बाद मैं कई कालेजों के प्रिंसिपलों से मिला किंतु सबने यही कहा कि वे किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं उठाना चाहते क्योंकि उन्होंने सुना था कि पिछले आठ महीने से मैं डा. श्रीवास्तव से तर्क कर रहा हूं और उनको पढ़ाने नहीं देता। जब यह कहानी मैंने बी.एस. औघोलिया को सुनाई तो उन्होंने कहा, ‘मैं यह खतरा उठा सकता हूं लेकिन एक शर्त के साथ। वे बहुत अच्छे आदमी थे किंतु उनकी सामर्थ्य सीमित थी। उन्होंने मेरे साथ जो अनुबंध किया उसके अनुसार मुझे उनको लिखकर देना पड़ा कि मैं ‘फिलोसोफी’ की क्लास में उपस्थित नहीं रहूंगा। और उन्हांने वायदा किया कि वे मुझे पचहत्तर प्रतिशत उपस्थिति दे देंगे। मैं तो बहुत खुश हो गया क्योंकि मुझे तो पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई। उन्होंने अपना वायदा अच्छी तरह से निभाया और मुझे निन्यानबे प्रतिशत उपस्थिति दी। प्राइमरी स्कूल में तो मैं क्लास में कभी उपस्थित न होता। मैं अन्य छात्रों के साथ नदी पर चला जाता और नदी के पार जो सुंदर जंगल था उसमें घूमता रहता-वास्तविक भूगोल की खोज तो वहां करता।

मेरी नानी ने धीरे-धीरे मुझे पढ़ना भी सिखा दिया था और मैंने किताबें पढ़ना शुरू किया। उस गांव के पुस्तकालय का जितना उपयोग मैंने किया है उतना शायद ही कभी किसी ने किया हो। अब तो वे लोग सबको बताते हैं कि मैं कहां पर बैठकर पढ़ा करता और

नोट लेता था। एक बार जब मैंने पढ़ना आरंभ कर दिया तो मेरे सामने एक नया आयाम खुल गया। मैंने पुस्तकालय की सब पुस्तकें पढ़ डालीं। और रात को मैं नानी को पढ़कर सुनाता। तुम्हें आश्चर्य होगा यह जानकर कि नानी को मैंने जो प्रथम पुस्तक पढ़केर सुनाई वह थी-‘दि बुक ऑफ मिरदाद’। इसके बाद तो अनेक पुस्तकं उनको सुनाईं। कभी-कभी वे बीच में टोककर मुझसे पुस्तक का या किसी पृष्ठ का अर्थ पूछतीं और मैं उन्हें अच्छी तरह से समझाता। इस प्रकार दूसरे को अर्थ की गहराई में ले जाने का मेरा प्रशिक्षण हो गया-दूसरों को समझाने की मेरी आदत बन गई। यहां भी मैं क्या कर रहा हूं? लोगों को संबंद्ध होने की शिक्षा देता हूं और अगर कोई संबुद्ध हो जाता है तो फिर उसे समझाता हूं कि कैसे संबोधि के भी पार जाना चाहिए, जल्दी ही मेरे बहुत से संन्यासी संबुद्ध हो जाएंगे और मैं अभी से तैयारी कर रहा हूं कि कैसे इन संबुद्धों को असंबुद्ध बनना सिखाऊंगा।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(22)

भारत में बांसुरी के दो आयाम हैं। एक है उत्तर भारत का और दूसरा है दक्षिण भारत का। हरिप्रसाद चौरसिया उत्तर भारत के बांसुरीवादक हैं। किंतु अभी मैं दक्षिण भारत के बांसुरीवादक को सुन रहा था। पागल बाबा ने ही इससे मुझे परिचित करवाया था। उन्होंने उससे कहा था, ‘इस समय तो शायद तुम नहीं समझ सकोगे कि मैं क्यों तुम्हें इस लड़के से परिचित करवा रहा हूं किंतु भविष्य में अवश्य समझ जाओगे। उस बांसुरीवादक ने मुझे हैरानी से देखा और फिर बोला, ‘बाबा! यह आपकी कृपा है कि आप वर्तमान से ही नहीं वरन भविष्य से भी मेरा परिचय करा रहे हैं।’ वह जब कभी पागल बाबा से मिलने आता तो वहां मुझसे भी भेंट हो जाती। बाबा उससे कहते, ‘इसके पैर छुओ और वह बड़े संकोच से मेरे पैर छूता। पागल बाबा के आदेश पर न चाहते हुए भी उसे ऐसा करना पड़ता।

दक्षिण के इस बांसुरीवादक का नाम है सचदेव। बांसुरी बजाने का इसका ढंग दूसरा ही है। दक्षिण की बांसुरी बहुत ही तीखी और भीतर चुभने वाली होती है। वह व्यक्ति के अंतर को हिला देती है, झकझोर देती है। उत्तर भारत की बांसरी सुनने में बहुत मधुर होती है किंतु थोड़ी स्पष्ट होती है-उत्तर भारत की भांति सपाट।

पागल बाबा ने मुझे केवल बांसुरीवादकों से ही नहीं, दूसरे संगीतज्ञों से भी परिचित करवाया। वे स्वयं एक महान संगीतज्ञ थे। प्रायः सभी संगीतज्ञ जानते थे कि वे किसी भी चीज से संगीत उत्पन्न कर लेते हैं। वे अपने कमंडल को कंकड़ से बजाकर उत्कृष्ट स्वर लहरी पैदा कर लेते थे। बाजार में बच्चों के लिए बिकने वाली बांसुरी से वे ऐसी मधुर ध्वनि उत्पन्न करते कि सुनने वाले चकित रह जाते।

दक्षिण भारत के उस सुप्रसिद्ध बांसुरीवादक का नाम था सचदेव। पागल बाबा ने मुझे तीन बांसुरीवादकों से परिचित करवाया था। एक थे हरिप्रसाद चौरसिया, दूसरे थे बंगाल के पन्नालाल घोष इनकी बांसुरी बड़े जोर से बजती थी, बड़ी ओजस्विनी थी- उसमें ओज गुण की प्रधानता थी और सचदेव की बांसुरी ठीक इसके विपरीत थी-मधुर और स्त्रैण गुण प्रधान।

इन संस्मरणो को सुनाने का मेरा मुख्य उद्देश्य यह है कि मैं अपने मानसपटल पर अंकित समस्त स्मृतियों को पूरी तरह से पोंछ देना चाहता हूं। इस संसार से विदा

होने से पहले मैं चाहता हूं कि मेरे मन और हृदय पर किसी प्रकार का कोई बोझ न रहे ताकि जाते समय भी मैं वैसा ही कोरा जाऊं, जैसा मैं आया था।

पागल बाबा ने कई संगीतज्ञों से मेरा परिचय कराया। जब मैंने उनसे पूछा कि वे क्यों ऐसा करते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि एक दिन तुम भी बहुत बड़े संगीतज्ञ बनोगे।’ एक प्रकार से उन्होंने ठीक कहा। मैं संगीतज्ञ तो नहीं बना किंतु मैंने हजारों लोगों की अंतर्वीणा कोझंकृत कर दिया है। मैंने जो संगीत उत्पन्न किया है वह किसी भी वाद्य-यंत्र के संगीत से कहीं गहरा और मर्मभेदी है। मुझे तो उन तीनों बांसुरीवादकों की बांसुरी पसंद थी किंतु उन तीनों का मेरे प्रति रवैया अलग-अलग था। हरिप्रसाद मुझसे प्रेम करते थे। उनको कभी यह ख्याल नहीं आया कि मैं बच्चा हूं और वे सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं। वे मेरा आदर भी करते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा भी था कि, ‘हरि बाबा! मेरे प्रति आपका यह आदर-भाव क्यों है? उन्होंने उत्तर दिया, जब बाबा तुम्हारा आदर करते हैं, तुम्हारे पैर छूते हैं तो इसका कुछ कारण होगा जो मुझे अभी नहीं मालूम। मेरे लिए इतना जानना ही यथेष्ट है।’

पन्नालाल घोष ने मुझे पसंद करते थे और न मुझे नापसंद करते थे। उनके जैसी बांसुरी और कोई नहीं बजा सकता था। वे अपनी बांसुरी पर शेर की तरह गरजते थे। इसलिए मैंने उनसे पूछा कि यूं तोआप बहुत ही नरम-दिल आदमी हो लेकिन बांसुरी बजाते समय तो आप शेर की भांति गर्जन करने लगते हैं।’ उन्होंने कहा कि उस समय सचमुच मुझे कुछ हो जाता है। मुझ पर जैसे कुछ सवार हो जाता है। तब मैं, मैं नहीं रहता। इसीलिए धुन बजाने से पहले मैं इतनी लंबी भूमिका तैयार करता हूं-उसमें बहुत समय लगाता हूं। पन्नालाल घोष की भूमिका बर्नार्ड शॉ की पुस्तक अगर नब्बे पृष्ठों की है तो उसकी भूमिका तीन सौ पृष्ठों की होती है। पन्नालाल घोष ने कहा कि मुझे तब तक इंतजार करना पड़ता है जब तक मुझ पर कुछ उत्तर न आए।’ ये शब्द हैं सच्चे संगीतज्ञ के। पत्रकार के ढंग का कलाकार तीसरी कोटि का होता है। उसको कलाकार कहना ही नहीं चाहिए।

एक बार मुझे भी आवश्यकतावश पत्रकार का काम करना पड़ा था। मेरे पिता मुझे कॉलेज में विज्ञान पढ़ाना चाहते थे किंतु मुझे विज्ञान में कोई दिलचस्पी नहीं थी। मेरे परिवार में किसी ने भी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। एक बार मेरे पिता ने मेरे चाचा को विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा था किंतु वहां का खर्च वहन न कर सकने के कारण उनको वापस बुलाना पड़ा था। अब पिताजी मुझे विश्वविद्यालय भेजना चाहते थे। उनके लिए मेरी पढ़ाई का खर्च वहन करना बहुत मुश्किल था, किंतु वे सोचते थे कि जैसे-तैसे पढ़-लिखकर आगे चलकर मैं अच्छे पैसे कमा लूंगा। अतः वे मुझे इंजीनियर या डाक्टर बनाना चाहते थे। किंतु मैं तो संन्यासी बनना चाहता था। पिताजी को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि अगर तुम्हें संन्यासी ही बनना है तो इसके लिए विश्वविद्यालय में पढ़ने की क्या जरूरत है? हम दोनों एक-दूसरे के दृष्टिकोण समझने में असमर्थ थे। मैंने पिताजी के लिए एक पत्र लिखकर रख दिया और घर छोड़ दिया। पत्र में मैंने लिखा कि मैं आपकी भावनाओं का आदर करता हूं और आपकी आर्थिक स्थिति को भी जानता हूं। किंतु न आप मुझे समझ सकते हैं, न मैं आपको समझ सकता हूं-हमारे बीच कोई पुल नहीं है। हम दोनों अलग-अलग दुनिया के हैं। आपने मेरे लिए जो कुछ भी किया या करना चाहते हैं, उसके लिए धन्यवाद किंतु मैं व्यवसायी नहीं बनना चाहता। मैं आपसे तभी मिलूंगा जब मैं अपने पैरों पर खड़ा हो जाऊंगा।’ और तब मुझे पत्रकार का काम करना पड़ा-उस समय और काई नौकरी नहीं मिली तो बरबस पत्रकार बनना पड़ा और यह काम शायद मैं बहुत अच्छी तरह से न कर सका। यह नौकरी जल्दी ही समाप्त हो गई। एक दिन मैं मेज पर पैर रखकर सो रहा था, प्रधान-संपादक आया और उसने मुझे झकझोरकर उठाया और कहा कि काम के समय मुझे सोना नहीं चाहिए। मैं उठा और नौकरी छोड़कर चला आया, वह स्थान मेरे उपयुक्त नहीं था। मैं पत्रकारों के साथ

तीन वर्ष तक रहा हूं किंतु उनके साथ रहना मेरे लिए बहुत ही मुश्किल था। मुझे पत्रकार का काम करना पड़ा क्योंकि मेरे पिता मेरी शिक्षा का खर्च नहीं उठा सकते थे।

जब कभी पागल बाबा आते और मेरे पैर पढ़ते तो मेरे पिता को बहुत अचरज होता। तब सर्कल को पूरा करने के लिए मैं अपने पिता के पैर छूता और पागल बाबा जोर से हंसने लगते। वे मुझसे कहते कि मैं एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ बनूंगा, किंतु मैं कहता, ‘नहीं। बचपन से ही मुझे स्पष्ट रूप से ‘नहीं कहने की आदत थी। मेरे लिए ‘हां’ कहना मुश्किल था। उन दिनों संबोधिके बारे में मुझे कुछ पता नहीं था किंतु फिर भी मुझे पागल बाबा के संबुद्ध होने का आभास था। मुझे मालूम था कि वे अनोखे आदमी हैं। मुझे कुंभ के मेले में पहली बार ले जाने वाले पागल बाबा थे।

कुंभ मेले में लाखों लोग होते हैं। जिस प्रकार हर मुसलमान हज करने के लिए मक्का जाना चाहता है उसी प्रकार हर हिंदू तीर्थ करने के लिए प्रयाग जाना चाहता है। कुंभ मेले में सब प्रकार के हिंदू साधु संत पहुंचते हैं। पागल बाबा के साथ कुंभ मेले में जाना मेरे लिए बहुत अच्छा अनुभव था क्योंकि वे मुझे तथाकथित सब महान संतों के पास ले गए हजारों लोगों के सामने वे मुझसे पूछते, ‘क्या यह सच्चा संत है?’ और मैं कह देता ‘नहीं।’ वे मुझे न जाने कितने साधुओं के पास ले गए और मुझे ‘नहीं कहना पड़ता। अंत में एक संत के पास पहुंचकर मैंने कहा, ‘हां, यह सच्चा संत है।’ पागल बाबा हंसे और उन्होंने कहा कि ‘मुझे मालूम था कि तुम सच्चे संत को पहचान सकोगे। यह संबुद्ध है किंतु इसे कोई नहीं जानता।’

वह आदमी एक पीपल के वृक्ष के नीचे अकेला बैठा था। उसके पास कोई नहीं था। पागल बाबा ने पहले मेरे पैर छुए, फिर उसके पैरों को छुआ। उस आदमी ने उनसे पूछा, ‘इस बालक को आपने कहां से खोजा? मैं तो सोच भी नहीं सकता कि एक बच्चा मुझे पहचान लेगा। आपका पहचानना तो ठीक है। मैंने अपने आपको बहुत अच्छी तरह से छुपाया हुआ है। बाबा ने कहा-यही तो हैरानी की बात है। इसीलिए तो मैं इसके पैर छूता हूं। अब तुम भी इसके पैर छुओ।’ उस आदमी ने तुरंत मेरे पैर छुए। बस इसी प्रकार पागल बाबा सब प्रकार के लोगों से मेरा परिचय कराते। संगीतज्ञों से उनका विशेष प्रेम था। वे मझे संगीतज्ञ बनाना चाहते थे किंतु मैं उनकी इस इच्छा को पूरी नहीं कर सका। संगीत तो मनोरंजन हैं। मैंने उनसे कहा ‘बाबा। संगीत निम्न कोटि का ध्यान है। मुझे इसमें दिलचस्पी नहीं है। उन्होंने उत्तर दिया, ‘हां! तुम्हारी बात ठीक है किंतु ऊंचे उठने के लिए संगीत एक सीढ़ी का काम करता है। संगीत भी एक प्रकार की साधना है किंतु संगीत पर ही नहीं रुक जाना चाहिए।

इसीलिए मैंने अपनी सब ध्यान-विधियों में संगीत का उपयोग एक सीढ़ी की तरह किया है-उस नादहीन संगीत के लिए। नानक कहते हैं, ‘एक ओंकार सतनाम’, अर्थात परमात्मा या सत्य का एक ही नाम है और वह है ‘ओम्’ जो कि नादहीन नाद है, स्वरहीन स्वर है। शायद ध्यान का जन्म संगीत से हुआ है-शायद संगीत ध्यान का जन्मदाता है। परंतु संगीत ध्यान नहीं है। यह केवल उस असीम की ओर एक संकेत है। सत्य का नाम ओंकार है जो कि वस्तुतः नादहीन नाद है। ‘ओम्’ बहुत महत्त्वपूर्ण आवाज है जो कि संगीत के तीन बुनियादी स्वरों के मेल से बनी है-‘अ़उ़म’। समस्त संगीत इन तीन मूल स्वरों पर निर्भर है। जब ये सब एक हो जाते हैं तो नादहीन हो जाते है, मौन हो जाता है, जब ये अलग हो जाते है तो नाद ही है, ‘ओम्’ मौन है। इस नादहीन को अक्षरों में नहीं लिखा जाता। इसको अभिव्यक्त करने के लिए जो प्रतीक बनाया गया है वह है ‘ओम्’।

आपने मंदिरों में लटकी हुई घंटी देखी होगी। वास्तव में तिब्बती घंटी बहुत ही कलात्मक होती है। यह बहुत सी धातुओं के मेल से बनी होती है और एक प्याले के आकार की होती है। इसका हैंडल लकड़ी का होता है। इस हैंडल घुमाने के बाद एक विशेष निशान

पर चोट करने पर एक विशेष मत्र गूंज उठता है और वह मंत्र है ‘ओम्’ ‘मणि पद्ये हुम’। पहली बार सुनने पर विश्वास नहीं होता कि एक घंटी इस मंत्र को दोहरा रही है। एक तिब्बती लामा ने मुझे यह घंटी दिखाई थी। भारत, तिब्बत, चीन और बर्मा के मंदिरों की ये घंटियां बहुत ही अर्थपूर्ण हैं। ये मनुष्य को बताती हैं कि जैसे घंटी को बजाने से बहुत जोर से आवाज होती है और फिर वह आवाज धीरे-धीरे कम होकर बंद हो जाती है उसी प्रकार मनुष्य को भी धीरे-धीरे मौन हो जाना चाहिए-तब नादहीन में प्रवेश होता है। घंटी की आवाज को सुनने के बाद उसके मौन को भी सुनो।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(23)

पागल बाबा को अच्छी तरह से मालूम था कि मैं संगीतज्ञ नहीं बनूंगा किंतु वे संगीत के प्रेमी थे इसलिए वे चाहते थे कि मैं श्रेष्ठ संगीतज्ञों से परिचित हो जाऊं। शायद वे मुझे इस ओर आकर्षित कर सकें। इसीलिए उन्होंने मुझे इन तीन बांसुरीवादकों से मिलाया था। कई और संगीतज्ञों से भी उन्होंने मुझे मिलाया था किंतु उन सबके नाम मुझे अब याद नहीं हैं।

पन्नालाल घोष महान बांसुरीवादक थे। संसार में उनका बहुत नाम था किंतु वे मुझे पसंद नहीं थे। दूसरे बांसुरीवादक दक्षिण के थे। उनकी बांसुरी मुझे बहुत अच्छी लगती थी-उसमें गहराई थी परंतु एक व्यक्ति की भांति वे मुझे बिल्कुल नापसंद थे।

मुझे तो पसंद थे हरिप्रसाद। वे बहुत ही विनम्र हैं। न वे शेर जैसे हैं न चूहे जैसे-दोनों के मध्य में हैं। पन्नालाल घोष और दक्षिण भारतीय बांसुरीवादक में जो संतुलन नहीं था वह हरिप्रसाद में है या यूं कहिए कि इन दोनों का संतुलन हरिप्रसाद हैं।

पागल बाबा तो मेरे लिए किसी विश्वविद्यालय से भी अधिक मूल्यवान थे। उन्होंने न जाने कितने क्षेत्रों के विशिष्ट लोगों से मेरा परिचय कराया। मेरे सामने एक नई दुनिया खुल गई। वे आंधी की तरह मेरे गांव में आते थे और आकर सीधे मुझे पकड़ लेते थे। मेरे माता-पिता, यहां तक कि नानी भी उनको इसके लिए मना नहीं करती थी। जैसे ही मैं पागल बाबा का नाम लेता वे तुरंत ‘हां’ कर देते क्योंकि उन्हें मालूम था कि इन्कार करने पर पागल बाबा घर में आकर कुछ भी पागलपन का काम करेंगे और कोई उन्हें रोक न सकेगा क्योंकि सब लोग उनको बहुत चाहते थे।

पागल बाबा के साथ मैंने कई स्थानों की यात्रा की। मैंने सबसे पहले ताजमहल उनके साथ ही देखा था। उन्होंने मुझे अजंता और एलोरा की गुफाएं भी दिखाई थीं और उनके साथ ही मैंने पहली बार हिमालय देखा था। मैं उनको धन्यवाद भी नहीं दे सकता था क्योंकि वे मेरे पैर छूते थे। अपनी कृतज्ञता प्रकट करने की अगर मैं कोशिश भी करता तो वे तुरंत अपने हाथ से मेरा मुंह बंद कर देते और कहते ‘मुझे कभी धन्यवाद मत देना। सच तो यह है कि मैं तुम्हारा आभारी हूं।’ इस पर मैं बड़े अचरज से उनसे पूछता, ‘मैंने तो आपके लिए कभी कुछ नहीं किया, तो आप मेरे आभारी क्यों हैं?’ उन्होंने उत्तर दिया, ‘एक दिन तुम्हें मालूम हो जाएगा।’ परंतु जब तक मालूम हुआ तब तक बहुत देर हो चुकी थी। बाबा इस दुनिया से जा चुके थे। अगर उनके जीवनकाल में उनको यह पता लगता कि मैं इसका कारण जान गया हूं तो उनको अच्छा न लगता। क्योंकि पिछले जन्म में उन्होंने मुझे विष दिया था किंतु मैं बच गया था। अब इस जन्म में वे अपने पिछले जन्म के पाप को धो डालना चाहते थे इसलिए वे सदा मेरे प्रति

आवश्यकता से अधिक व्यवहार कर रहे थे। कर्म का यही सिद्धांत है कि तुम्हारे कर्म से जो संतुलन बिगड़ गया है उसको फिर से संतुलित करने पर ही कर्म का चक्र रुक सकेगा और बाबा वही कर रहे थे।

मैं बता रहा था कि पागल बाबा ने कैसे मुझे तीन बांसुरीवादकों से मिलाया। पन्नालाल घोष से तो उनके घर पर, कलकत्ता में ही मेरा परिचय हुआ। बाबा उनके मेहमान थे और मैं बाबा का मेहमान था। उस समय पन्नालाल घोष सुविख्यात बांसुरीवादक थे। जब बाबा ने उनसे कहा कि पहले इस बच्चे के पैर छुओ-बाद में मेरे, ‘तो पन्नालाल घोष ने झिझकते हुए मेरे पैरों को छुआ ‘या यूं कहिए कि छूते हुए भी न छुआ। यह देखकर बाबा ने उनसे कहा, ‘फिर छुओ’। अपने ही घर में उनको कई लोगों के सामने दोबारा मेरे पैर छूने पड़े। किंतु उनके भीतर पैर छूने का कोई भाव नहीं था इसलिए बाबा ने कहा कि उन्होंने पन्नालाल घोष को जो अंतिम अवसर दिया था उससे वे इस जन्म में चूक गए। वे सचमुच चूक गए। सात दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई।

बाबा जब बैठते तो वे मुझे दूसरे लोगों के साथ नहीं बैठने देते। वे मुझे अपने पीछे रखे गये-तकिए पर बिठाते ताकि मैं उनसे कुछ ऊपर दिखाई दूं। वे अन्य लोगों से ऊपर बैठते और सदा मुझे अपने से भी ऊपर बैठाते। मुझे इस पर गुस्सा भी आता, बुरा भी लगता, शर्म भी आती परंतु बाबा न मानते और वे प्यार से मेरे गाल को सहलाते हुए बोलते, ‘नाराज मत होओ! इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है। अब थोड़ा मुस्कुराओ।’

पन्नालाल घोष ने भारत की बांस की बांसुरी को संसार प्रसिद्ध बना दिया। इसके कारण जापान और अरब की बांसुरी का महत्त्व खो गया।

दूसरे बांसुरीवादक, सचदेवा की बांसुरी पन्नालाल घोष की बांसुरी से बिल्कुल भिन्न थी। उसकी बांसुरी श्रोता को दूसरे ही लोक में पहुंचा देती थी परंतु यह आदमी मुझे नापसंद था। सचदेवा को भी यह मालूम था किंतु उसे मेरे पैर तो छूने ही पड़े। उसके शरीर की तरंगें अच्छी नहीं थी, चेहरा भी बहुत कुरूप था किंतु उसकी बांसुरी कोयल जैसी मधुर थी। इन सब बातों का उल्लेख मैं इसलिए करना चाहता हूं क्योंकि मैं अपनी स्मृतियों से पूर्णतः छुटकारा पाना चाहता हूं।

पागल बाबा ने मुझे अनेक महत्त्वपूर्ण लोगों से मिलाया और इसके लिए मैंने जब भी उनको धन्यवाद देना चाहा उन्होंने ऐसा करने से मुझे तुरंत रोक दिया। एक बार जब मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहता था तो उन्होंने उत्तर दिया, ‘मैं तो अपना कर्त्तव्य निभा रहा हूं। हां! तुम्हें एक बात का मुझसे वायदा करना पड़ेगा और वह यह है कि जब मैं मरूंगा तो मेरी चिता को तुम आग लगाओगे।’ उनके इन शब्दों से मुझे आभास मिल गया कि अब जल्दी ही उनकी मृत्यु होने वाली है। उनकी मृत्यु मेरे गांव में ही हुई-वे यही चाहते थे। जब मैं उनकी चिता को आग देने लगा तो मेरे पिता ने मुझसे कहा, ‘यह क्या कर रहे हो? चिता को आग सबसे बड़ा बेटा देता है।’ मैंने कहा, ‘दादा! मुझे आग लगाने दो क्योंकि मैंने उनसे वायदा किया है परंतु आपकी चिता को मैं आग नहीं दे सकूंगा, मेरा छोटा भाई ऐसा करेगा क्योंकि वास्तव में वही आपका बड़ा बेटा है। वह बड़े बेटे के सब कर्त्तव्य कर रहा है। मैं तो अपने परिवार के लिए कुछ नहीं कर सका किंतु विजय परिवार की देखभाल करेगा।’ इसलिए मैं अपने भाई विजय का बहुत आभारी हूं। वह पढ़ने के लिए विश्वविद्यालय नहीं गया। घर पर रहकर उसने सारा कामकाज सम्हाला और मेरे दूसरे भाइयों को विश्वविद्यालय भेजा। विजय जैसा भाई बड़े सौभाग्य से मिलता है। उसने बहुत त्याग किया है।

मैं शादी करने के लिए राजी नहीं था तो उसने मुझसे कहा, ‘भैया! सब लोग आपको शादी के लिए परेशान कर रहे हैं तो मैं शादी कर लेता हूं लेकिन शर्त यह है कि मेरे लिए लड़की आपको पसंद करनी होगी।’

उसके त्याग ने मेरे हृदय को छू लिया और इससे मुझे बहुत लाभ हुआ। विजय की शादी होते ही लोग मुझे बिल्कुल भूल गए क्योंकि उसके बाद फिर मेरे दूसरे भाई-बहनों की शादी का क्रम शुरू हो गया। मैं किसी प्रकार कोई कारोबार नहीं करना चाहता था किंतु विजय ने छोटी आयु में ही परिवार का पूरा बोझ अपने ऊपर उठा लिया। इन सब बातों के लिए मैं उसका बहुत आभारी हूं।

मैंने पिताजी से कहा था कि पागल बाबा की चिता को तो मैं अवश्य आग दूंगा क्योंकि मैंने उनसे वायदा किया है किंतु आपकी चिता को आग मेरा छोटा भाई देगा। मैं वहां उपस्थित अवश्य रहूंगा। लेकिन आपके पुत्र की हैसियत से नहीं।’ मालूम नहीं कि मैंने ऐसा क्यों कहा किंतु बाद में यह सोलह आने सच हुआ।

जब पिताजी की मृत्यु हुई तो मैं वहीं था। इससे पहले ही मैंने उन्हें गांव से अपने पास बुला लिया था क्योंकि नानी की मृत्यु के बाद मैं वहां नहीं जाना चाहता था।

यह मेरा वायदा था। मैंने अपने अधिकांश वायदे तो पूरे कर दिए हैं-बस थोड़े से रह गए हैं। मैं पिताजी की मृत्यु के समय वहां उपस्थित था किंतु उनके पुत्र की तरह नहीं; क्योंकि जब वे मरे तो उस समय वे मेरे संन्यासी थे, मेरे शिष्य थे और मैं उनका गुरु था।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(24)

मैंने देखा कि पागल बाबा अपने अंतिम दिनों में कुछ चिंतित रहते थे। एक रात जब मैं उनके पास अकेला था तो मैंने उनसे पूछा कि आपको किस बात की चिंता है? मृत्यु का तो आपको कोई डर नहीं है फिर आपकी परेशानी का कारण क्या है? उन्होंने उत्तर दिया, ‘यह सच है कि मुझे मृत्यु का डर नहीं है; किन्तु मैं एक आदमी की प्रतीक्षा कर रहा हूं ताकि मैं तुम्हारे प्रति मेरा जो उत्तरदायित्व है, उसको सौंप जाऊँ, तुम्हारी जिम्मेदारी उसकों दे दूं। वह अभी तक नहीं आया और मुझे यही चिंता है कि बाद में तुम उसे कैसे खोजोगे।’ मैंने कहा कि अगर मुझे किसी की आवश्यकता है तो मैं उसे अवश्य खोज लूंगा। किंतु मुझे किसी की जरूत नहीं है। आप तो बिल्कुल शांत रहिए। मृत्यु के समय आपको किसी प्रकार की कोई चिंता नहीं होनी चाहिए। उन्होंने कहा मुझे पूरा विश्वास है कि वह व्यक्ति आएगा। उसने मुझसे वायदा किया है कि वह मेरे मरने से पहले यहां पहुंच जाएगा।’ मैंने उनसे पूछा कि उसको कैसे मालूम है कि आपकी मृत्यु होने वाली है? उन्होंने हंसकर कहा-इसीलिए तो मैं तुम्हें उससे परिचित करना चाहता हूं क्योंकि मेरी इच्छा है कि कोई मेरे जैसा व्यक्ति तुम्हारे निकट रहे। यह एक बहुत पुरानी परंपरा है कि अगर कोई बच्चा जाग्रत होने वाला है तो उसके बचपन में ही उसे तीन जाग्रत लोग पहचान लेते हैं। मैंने बाबा से बहस करते हुए कहा कि जाग्रत होने से कौन रोक सकता है? मैं तो किसी परंपरा या रुढ़ि को नहीं मानता। उन्होंने कहा, ‘सो तो ठीक है किंतु मैं चाहता हूं कि मेरे मरने के बाद तुम्हें मेरी याद न आए।’ मैंने उनसे वायदा किया कि मैं कोशिश करूंगा कि मैं उन्हें याद न करू। लेकिन जिस व्यक्ति का बाबा को इंतजार था वह दूसरे दिन आ गया।

मुझे पहचानने वाले पहले जाग्रत व्यक्ति थे मग्गा बाबा, दूसरे थे पागल बाबा और तीसरे तो और भी विचित्र थे-उनका नाम था मस्तो बाबा। ऐसा लगता था मानों वे मेरे लिए ही बनाए गए थे। मुझे जिस प्रकार का व्यक्ति पसंद है वे ठीक वैसे ही थे- कमाल के आदमी थे। पागल बाबा के परिचय कराने से पहले ही हम दोनों मित्र हो गए थे। मैं अपने घर के बाहर खड़ा था। क्यों खड़ा था, यह अब मुझे याद नहीं है। शायद मैं भी

उनकी प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि पागल बाबा ने कहा था कि वह अपने आने का वायदा अवश्य पूरा करेगा।

मैं बच्चा तो था ही, इसलिए बहुत उत्सुक था। शायद इंतजार ही कर रहा था कि अचानक सड़क पर वे दिखाई दिए-वे भागते हुए आ रहे थे। उनकी आयु पैंतीस वर्ष के लगभग थी-युवावस्था की पराकाष्ठा पर थे। वे बहुत ऊंचे और दुबले थे। उनके बाल लम्बें और सुन्दर थे, दाढ़ी भी सुंदर थी। मैंने उन्हें देखते ही पूछा, ‘क्या आप मस्तो बाबा है?’ वे चौंक उठे और उन्होंने पूछा, ‘तुम्हें मेरा नाम कैसे मालूम है?’ मैंने कहा, ‘पागल बाबा आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं-वे कई बार आपका नाम ले चुके हैं। आप जैसे व्यक्ति के साथ रहना तो मैं स्वयं भी पसंद करता। अपनी युवावस्था में पागल बाबा ठीक आपके जैसे ही पागल रहे होंगे। शायद युवा पागल बाबा आपके रूप में वापस आ गया है। उन्होंने जब पूछा कि पागल बाबा कहा, ‘यह मेरा अंतिम दिन है। मस्तो! मुझे बड़ी चिंता हो रही थी। मैं बेसब्री से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।’ मस्तो ने कहा, ‘क्यों? मृत्यु को तो आपको कोई डर नहीं है।’ पागल बाबा ने उत्तर दिया, ‘मृत्यु की बात नहीं कर रहा। तुम्हारे पीछे जो लड़का खड़ा है वह मेरे लिए सब कुछ है। शायद आगे चलकर यह लड़का वह सब कर सकेगा जो मैं नहीं कर सका। मैं तुम्हें इससे परिचित कराना चाहता था। इसके पैर छुओ।’ मस्तो बाबा ने मेरी आंखों में देखा, आंखों में आंसू भरकर और हाथ जोड़कर कहा, ‘आज से तुम मेरे पागल बाबा हो। वे अपना शरीर छोड़ रहे हैं किंतु वे तुम्हारे भीतर जीवित रहेंगे।’ मस्तो बाबा मेरे पैर पकड़कर रोने लगे। न जाने कितना समय बीत गया। उनके सुंदर बाल जमीन पर फैले हुए थे। मैंने कई बार कहा, ‘अब बस करो मस्तो बाबा। अब बस करो।’ किंतु बच्चे की भांति जिद करते हुए उन्होंने कहा, ‘जब तक तुम मुझे मस्तो नहीं कहोगे मैं पैर नहीं छोडूंगा। पागल बाबा ने भी मुझे कहा कि तुम इसे मस्तो कहो।’ मुझे उन्हें ‘मस्तो’ कहना पड़ा। इस पर उन्होंने कहा, ‘नहीं! तीन बार ‘मस्तो’ कहो, सो मैंने तीन बार कहा और हम तीनों हंस पड़े। हम तीनों को हंसी ने हमें प्रेम के अटूट बंधन में बांध दिया।

उसी दिन पागल बाबा मर गए। मस्तो रुके नहीं, यद्यपि मैंने उनसे कहा था कि पागल बाबा की मृत्यु निकट है। उन्होंने कहा, ‘पागल बाबा तो तीन दिन पहले ही मरने वाले थे किंतु वे रुके थे मुझे तुमसे मिलाने के लिए। पागल बाबा के मरने से पहले मैंने उनसे पूछा था कि मस्तो बाबा के आने पर वे इतने खुश क्यों हो गए। उन्होंने कहा, ‘हां! उसके आने से मुझे बहुत खुशी हुई। मैं चाहता था कि तुम दोनों मित्र बन जाओ और एक दूसरे के प्रति प्रेम रखो। ‘सो तुम दोनों को एक साथ देखकर मैं निशि्ंचत हो गया हूं। शायद एक दिन तुम्हें उस पुरानी परंपरा की सच्चाई का पता लग जाएगा।’ उस पुरानी परंपरा के अनुसार भावी बुद्ध को उसके बचपन में ही तीन जाग्रत व्यक्ति पहचान लेते हैं। पागल बाबा और मस्तो बाबा जैसे जाग्रत व्यक्तियों द्वारा पहचाने जाने से भावी संबुद्ध को बहुत सहायता मिल जाती है।

पागल बाबा ने मुझसे कहा था कि मस्तो बाबा को मस्तो ही कहा करो क्योंकि मैं उसे इसी नाम से पुकारता हूं।’ सो मैं भी उन्हें ‘मस्तो’ कहने लगा। कभी-कभी बहुत अजीब लगता था कि मस्तो बाबा को, जिनका सब लोग आदर करते थे-एक बच्चा ‘मस्तो’ कहकर पुकारता था। यहां तक कि मैं जो कुछ भी उन्हें करने को कहता वे तत्क्षण वैसा ही करने लगते। एक बार वे भाषण दे रहे थे और अभी आधा ही वाक्य बोला था कि मैंने बीच में ही उन्हें टोककर कहा, ‘मस्तो! अब बस करो।’ तो उन्होंने उसी समय वाक्य के बीच में ही बोलना बंद कर दिया। लोग शोर करने लगे तो मैंने माइक पर कह दिया कि अब भाषण समाप्त हो गया है अतः सब लोग अपने-अपने घर चले जाओ। ‘इस पर मस्तो खूब हंसे और मेरे पैर छुए। पैर छूने का उनका ढंग भी अनोखा था मानों साक्षात परमात्मा उनके

सामने खड़ा हो। उनकी आंखों से आंसू बहने लगते और वे या तो कुछ गाने या कोई मंत्र बोलने लगते।

इस प्रकार मुझे प्रायः आधे घंटे तक प्रतीक्षा करनी पड़ती और तब मैं मुश्किल से उन्हें उठा पाता। पागल बाबा चाहते थे कि तीन जाग्रत व्यक्ति मुझ बच्चे के पैर छुएं और मस्तो बाबा तीसरे जाग्रत पुरुष थे।

मैं पागल बाबा से कहता कि आप कुछ जबर्दस्ती कर रहे हैं। वे कहते, ‘नहीं। वर्तमान की भविष्य के प्रति समर्पित होना चाहिए अगर संबुद्ध व्यक्ति भविष्य को नहीं पहचान सकता तो वह संबुद्ध नहीं है। यह मान्यता अति प्राचीन है। जब बुद्ध ने जन्म लिया और वे अभी चौबीस घंटे के भी नहीं थे तब एक संबुद्ध व्यक्ति ने रोते हुए उनके पैर पकड़े थे। बुद्ध के पिता को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि इतना महान बुद्धपुरुष एक शिशु के पैर छू रहा है। उन्होंने जब इसका कारण पूछा तो इस संबुद्ध ने कहा था, ‘मैं भावी संभावना को देखकर इस शिशु के पैर पकड़ रहा हूं। आज यह कली है किंतु भविष्य में यह पूर्ण विकसित कमल बन जाएगी।’ बुद्ध के पिता, शुद्धोधन ने पूछा, ‘तो आप रो क्यों रहे हैं?’ उस बुद्ध ने कहा कि मैं इसलिए रो रहा हूं कि उस समय मैं नहीं रहूंगा। हां! बुद्ध व्यक्ति भी ऐसे क्षणों में रो पड़ता है-जब उन्हें मालूम होता है कि आज का यह बच्चा कल बुद्ध बनेगा किंतु वे तब तक जीवित नहीं रहेंगे। भिक्षु बुद्ध के पैर पकड़कर रोने वाला बुद्ध बिल्कुल सही था-ऐसा मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं।

वे तीन बाबा मेरे लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थे। उनसे अधिक महत्त्वपूर्ण मेरे लिए और कोई नहीं हो सकता। अजीब बात यह है कि इन तीनों ने मुझे तब पहचाना जब मैं छोटा सा बच्चा था और जब सब लोग मेरे विरोध में थे। मेरे पिता का परिवार मेरे विरुद्ध था क्योंकि मेरा व्यवहार उनको अच्छा नहीं लगता था। उस गांव के सब लोग पिताजी से मेरी शिकायत करते थे। पिताजी में बड़ा धीरज था। रोज कोई न कोई मेरी शिकायत करने उनके पास पहुंच जाता। मैं सदा जान-बूझकर गलत काम ही करता-मुझसे कुछ ठीक तो होता ही नहीं था। एक बार मैंने पागल बाबा से भी पूछा कि क्या बात है? मैं शत-प्रतिशत गलत काम ही क्यों करता हूं? मुझसे कभी कुछ ठीक होता ही नहीं ह।’ पागल बाबा ने हंसकर कहा-‘ऐसा ही होना चाहिए। दूसरों की बातों पर ध्यान मत दो। तुम तो अपने ही ढंग पर चलते रहो। अगर तुम्हें सजा भी मिले तो उसका मजा लो।’ और मैं सचमुच सजा को भी मजे से भोग लेता था। मेरे पिताजी ने जब देखा कि मुझ पर सजा का कोई असर नहीं पड़ता-उसका भी पूरी तरह से मजा ले लेता हूं तो उन्होंने मुझे सजा देनी बंद कर दी, अगर वे नाराज होकर कहते कि इस इमारत के सात बार चक्कर लगाओ तो मैं कहता, ‘क्या मैं सत्तर बार चक्कर लगा सकता हूं। सुबह के समय दौड़ना बहुत अच्छा लगता है। और मैं सत्तर चक्कर लगाकर ही रहता। धीरे-धीरे वे समझ गए कि मुझे सजा देना व्यर्थ है क्योंकि मैं सजा को भी खेल की तरह लेता। मेरे कारण पिताजी को बहुत परेशानी हुई। मुझे लंबे बाल रखने का शौक था और मैं पंजाबी ड्रेस पहनता था। हमारे गांव में कुछ गायक आए थे जो इस पंजाबी ड्रेस पहने हुए थे। मुझे यह ड्रेस बहुत अच्छी लगी। मैं सलवार-कुर्ता पहनकर लंबे बालों के साथ लड़की जैसा दिखाई देता। मैं दिनभर पिताजी की दुकान में से घर की ओर आता-जाता तो मुझे देखकर लोग पिताजी से पूछते, ‘यह किसकी लड़की है? इसने ऐसे कपड़े क्यों पहने हैं?’ पिताजी झल्ला उठते और मुझसे कहते, ‘ये सलवार-कुर्ता पहनना बंद करो। लंबे-लंबे बालों के साथ तुम लड़की जैसे ही दिखाई देते हो। इन बालों को काट दो, नहीं तो मैं खुद अपने हाथ से इन्हें काट दूंगा। इस पर मैंने उनसे कहा, ‘ बाल काटकर आप पछताओगे।’ वेेइतने गुस्सा हो गए कि अपनी दुकान से कैची लाकर मेरे बाल काट दिए और कहा कि अब नाई से बालों को ठीक करवा लो।’ मैंने फिर कहा कि ‘आप पछताओगे।’ मैं उठा और सीधे उस नाई के पास पहुंचा जो अफीमची था और उससे कहा, ‘नत्थू। मेरा सिर सफाचट कर दो।’ और मैंने सिर

मुंडवा दिया। पिताजी ने भी सौगंध खाई कि वे कभी मुझे सजा नहीं देंगे। यही समय थाजब उन्होंने पहली और आखिरी बार मुझे सजा दी। इसके बाद उन्होंने मुझे कभी कुछ नहीं कहा।

अगर लोग शिकायत करते तो वे मुझे बचाने की कोशिश करते। जब मैंने उनसे पूछा कि आप मुझे बचाने की कोशिश क्यों करते हैं तो उन्होंने कहा कि तुम इतने शैतान हो कि अगर मैं तुम्हारी रक्षा न करूं तो तुम बच नहीं सकोगे। कोई न कोई तुम्हें मार डालेगा। इसके अतिरिक्त पागल बाबा ने कहा है कि हमें सदा तुम्हारी सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए इसलिए भले ही सारा गांव तुम्हारी शिकायत करे किंतु मुझे मालूम है कि वे सब लोग (यहां तक कि मैं भी) गलत हैं परंतु पागल बाबा गलत नहीं हो सकते।’ मुझे मालूम है कि पागल बाबा मेरी मां को मेरे अध्यापकों को और रिश्तेदारों को बार-बार यही कहते थे कि इस बच्चे का ध्यान रखो-इसे सुरक्षित रखो।’ इसके बारे में उन्होंने केवल मेरी नानी से कुछ नहीं कहा क्योंकि उन पर उन्हें पूरा भरोसा था कि वह अपनी जान देकर भी मेरी रक्षा करेंगी। पागल बाबा की अंतदृषि्र्ट सब कुछ देख रही थी।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(25)

मुझे बड़ी हैरानी होती है यह देखकर कि कैसे आरंभ से ही मेरे साथ सब ठीक ही होता रहा है। सचमुच ठीक चलता रहा है और आशा है कि यह क्रम आगे भी चलता रहेगा।

न जाने कितने लोगों ने अकारण ही मुझसे प्रेम किया है। प्रायः लोगों का आदर उनके गुणों या योग्यता के कारण होता है परन्तु मुझे तो लोगों ने मुझ जैसा होने के कारण ही प्रेम किया। जी हां! आरंभ से ही ऐसा होता रहा है-ठीक से ठीक ही होता चला गया। अकारण ही जब सब ठीक होता जाए तो उसे भगवान की मर्जी ही समझना चाहिए। मैं तो ठीक व्यक्ति नहीं हूं किंतु फिर भी मेरे साथ ठीक ही घटता रहा है। न जाने क्यों सारी दुनिया के इतने लोग मुझ पर बिना किसी कारण के अपना प्रेम बरसाते हैं? मेरी तो अपनी आंतरिक या बाहरी कोई ऐसी उपलब्धि ही नहीं है कि जिसके कारण उनका आदर प्राप्त कर सकूं। मैं तो कुछ भी नहीं हूं-शून्य हूं शून्य!

जिस दिन मैंने विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़ी उस दिन सबसे पहला काम मैंने यह किया कि अपने संजोकर और सहेजकर रखे गए सारे सर्टिफिकेटों और डिप्लोमाओं को आग लगा दी। उनको जलते देखकर मैं इतना खुश हो रहा था कि मेरे पविरवालों ने समझा कि मेरा दिमाग खराब हो गया है। उनको तो पहले से ही यह शक था। अब यह शक विश्वास बन गया कि मैं पूरी तरह से पागल हूं। उनके भयभीत चेहरों को देखकर मैं जोर-जोर से हंसने लगा। मेरी इस हंसी को सुनकर उन्होंने कहा, ‘आखिर, हो ही गया।’ मैंने कहा, ‘हां! हो ही गया।’ इस पर उन्होंने पूछा, ‘क्या हो गया?’ मैंने उत्तर देते हुए कहा, ‘जिंदगी भर मैं इन सर्टिफिकेटों को जलाना चाहता था किंतु जला न सका क्योंकि हमेशा इनकी जरूरत पड़ती थी। परंतु अब इनकी कोई जरूरत नहीं है। अब मैं नवजात शिशु की भांति अशिक्षित हो गया हूं।’ उन्होंने कहा, ‘तुम्हारा तो दिमाग खराब हो गया है! तुमने इतने मूल्यवान सर्टिफिकेटों को जला दिया है। सोने के मेडल को भी कुंए में डाल दिया है। युनिवर्सिटी में प्रथम होने के प्रमाणपत्र को भी तुमने जला दिया है।’ मैंने कहा, ‘अब वह सारी बकवास समाप्त हो गई है।’

आज भी मुझमें कोई विशेष गुण या योग्यता नहीं है। मैं हरिप्रसाद जैसा संगीतज्ञ भी नहीं हूं। न मैं नोबेल-पुरस्कार विजेताओं जैसा ही हूं। मैं कुछ भी नहीं हूं। फिर भी हजारों लोग बिना किसी अपेक्षा के मुझसे प्रेम करते हैं। अगर लोगों को अच्छे और बुरे लोगों में बांटों तो मेरी गिनती बुरे लोगों में ही होगी।

मुझे महात्मा गांधी, माओ जेड़ोग, कार्ल मार्क्स, मदर टेरेसा, मार्टिन लूथर किंग जैसे लोगों की पंक्ति में खड़ा नहीं किया जा सकता।

मैं किसी को बुरा नहीं कह सकता। एडोल्फ हिटलर, मुसोलिनी, जोसेफ स्टेलिन, ये सब लोग मानसिक रुप से अपंग थे। अगर मुझे अच्छे लोगों की गणना करने को कहा जाए तो मैं तो सुकरात, जीसस, सरमद जैसे लोगों का उल्लेख करूंगा क्योंकि उन्हें सूली पर चढ़ाया गया था या नाना प्रकार से दंडित किया गया था। वे अपने आप में विशिष्ट थे- उनको किसी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। लोगों ने मुझे भी सजा देने की कोशिश की है किंतु इसमें वे सफल नहीं हो सके।

मेरे स्कूल के काने मास्टर से लेकर मोरारजी देसाई तक ने मुझे सताने की भरपूर कोशिश की किंतु अफसोस कि इन्हें मुंह की खानी पड़ी।

बड़ी अजीब बात है कि आरंभ से ही मैं तोफूलों के रास्ते पर ही चला हूं, जीवन के हर क्षण में मैंने आनंद का अनुभव किया है।

मुझे ‘भगवान’ कहने वाला प्रथम व्यक्ति था मस्तबाबा। मुझे उसे ‘मस्तो’ ही कहना पड़ेगा क्योंकि उसकी यही इच्छा थी कि मैं उसे ‘मस्तो’ कहकर संबोधित करूं। तो मैं मस्तबाबा को सदा ‘मस्तो’ कहकर ही पुकारता था। ‘मस्तो’ कहने में थोड़ा झिझकता तो जरूर था परंतु क्या करता; पागल बाबा ने भी यही कहा था कि अगर वह चाहता है कि तुम उसे मेरी तरह ‘मस्तो’ कहकर ही पुकारो तो तुम वैसा ही करो। नहीं तो उसे दुख होगा और मेरे मरते ही उसके हृदय में तुम मेरा स्थान ले लोगे।’ और उस दिन पागल बाबा मर गए। उस समय मैं लगभग बारह वर्ष का था और मस्तबाबा शायद पैंतीस वर्ष के या उससे भी अधिक के थे। और मुझे उनको ‘मस्तो’ ही कहना पड़ा। मस्तो ने जब पहली बार मुझे ‘भगवान’ कहकर संबोधित किया तो मैंने उससे कहा, ‘क्या तुम भी पागलबाबा की तरह पागल हो गए हो?’ उसने कहा, ‘आज से मैं तुम्हें ‘भगवान’ ही कहूंगा और ऐसा कहनेवाला मैं प्रथम व्यक्ति हूं। इसका श्रेय मुझे ही मिलना चाहिए। इसके बाद तो हजारों लोग तुम्हें ‘भगवान’ कहेंगे।’ हम दोनों गले लगकर खूब रोए। यह हमारी अंतिम भेंट थी। मस्तो को यह मालूम था किंतु उस समय मुझे इसकी खबर नहीं थी। वह दिन था 22 मार्च 1953 अर्थात मुझे संबोधि मिलने के एक दिन बाद। मस्तो का सारा शरीर बहुत ही सुंदर था-ऐसा लगता था मानों वह देवलोक से आया हो। उसे देखकर तोऋग्वेद की कहानी याद आती थी, वह है‘पुरुरवा और उर्वशी की कहानी। उर्वशी इंद्रलोक की अप्सरा थी और वह स्वर्ग केसब सुखों से ऊब चुकी थी। इसलिए उसने इंद्रदेवता से निवेदन किया कि मैं पृथ्वी पर जाकर साधारण मनुष्य से प्रेम करना चाहती हूं। इंद्रदेवता ने उसकी इस बात को मान लिया किंतु साथ ही यह शर्त भी लगा दी कि जिस क्षण वह उस मनुष्य को अपनी वास्तविकता बताएगी कि वह अप्सरा है उसी क्षण उसे वापस स्वर्ग में आना पड़ेगा। उर्वशी पृथ्वी पर आई और पुरुरवा से उसका प्रेम हो गया। पुरुरवा धनी और कवि है। वह उर्वशी के सौंदर्य पर मोहित हो गया और उससे शादी करना चाहता है। उर्वशी ने उससे कहा कि शादी की तो कभी भी बात मत करना और यह भी कभी मत पूछना कि मैं कौन हूं। पुरुरवा ने उसकी ये शर्ते मान लीं और उर्वशी उसके साथ रहने लगी। ऋग्वेद में मानवीय कमजोरियों का चित्रण बड़ी स्वाभाविकता से किया गया है। एक रात सोई हुई उर्वशी की जब आंख खुली तो उसने पुरुरवा को अपनी ओर एकटक देखते हुए पाया। उर्वशी के दिव्य सौंदर्य से अभिभूत होकर पुरुरवा ने उससे पूछ ही लिया कि ‘तुम कौन हो?’ उर्वशी ने कहा कि तुमने अपना वायदा तोड़ दिया है किंतु अब मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकती और जैसे ही उसने पुरुरवा को बताया कि वह स्वर्गलोक से आई हुई अप्सरा है वह तुरंत अदृश्य हो गई।’

मुझे यह कहानी बहुत पसंद है।

मस्तो इतना सुंदर था कि मुझे लगता है कि वह भी देवलोक से आया हुआ कोई देवता था। मैं आंख बंद करके उसके चेहरे का स्पर्श करता ताकि स्वप्न में मैं सिवाय उसके सुंदर चेहरे के और कुछ न देखूं। उसके लंबे-लंबे सुंदर बालों को अपने हाथों में लेकर जब मैं खेता तो वह हंसकर कहता, ‘बाबा तो चले गये किंतु मुझे अपने से भी अधिक पागल गुरु दे गए है।’ उनका स्थान तुमने ले लिया है इसलिए अगर तुम मेरा सिर भी काट दो तो मैं तुम्हें मना नहीं करूंगा।’ इस पर मैंने कहा कि ‘जहां तक तुम्हारे सिर का सवाल है वह तो पागल बाबा पहले ही काट चुके हैं मैं तो तुम्हारा एक बाल भी नहीं काट सकता।’ तब हम दोनों हंस पड़े और प्रायः आपस में ऐसा हंसी-मजाक होता रहता। मस्तो का शरीर ही नहीं, मन भी बहुत सुंदर था। जब भी मुझे किसी चीज की जरूरत होती वह चुपचाप रात को मेरी जेब में पैसे डाल देता। अब मैं जेब नहीं रखता और इसका कारण है मस्तो। वह मेरे खीसे में कभी पैसे डाल देता, कभी सोना डाल देता न जाने क्या-क्या डाल देता। आखिर मैंने सोचा कि खीसा ही न रखा जाए तो अच्छा हो क्योंकि तब कोई उसमें कुछ डाल ही नहीं सकेगा। यह समस्या ही न रहेगी। जेब होने से या तो लोग जेब काट लेते हैं या मस्तो जैसे लोग उसमें कुछ डाल देते हैं। कभी-कभी मैं रात को खर्राटे लेकर सोने का बहाना करता-मस्तो समझता कि मैं सो गया हूं और जब वह मेरी जेब में हाथ डालता तो मैं उसे रंगे हाथो पकड़ लेता और तब हम दोनों खूब हंसते। बस तब से मैं जेब नहीं रखता। न मैं अपने पास कुछ रख सकता हूं, न कोई मेरी जेब ही काट सकता है। जेब की चिंता अब दूसरों को करनी पड़ती है।

मैं मस्तो से बहुत प्रेम करता था-अकारण! वह तो सचमुच देवलोक से आया हुआ देवता था। अभी भी मैं उससे बहुत प्रेम करता हूं किंतु मुझे नहीं मालूम कि वह जीवित है या नहीं क्योंकि वह 22 मार्च 1953 को अदृश्य हो गया। उसने मुझे कहा कि वह हिमालय जा रहा है क्योंकि उसने पागल बाबा से जो वायदा किया था वह पूरा हो गया है-‘अब मेरी आवश्यकता नहीं है क्योंकि अब तुम्हारी संभावना, तुम्हारी अंतर्निहित शक्ति पूरी तरह से प्रकट हो गई है।’ मैंने उससे कहा, ‘लेकिन मुझे अभी भी तुम्हारी जरूरत होगी-अन्य कारणों से।’उसने उत्तर दिया, ‘नहीं, अब मैं और इंतजार नहीं कर सकता। अब तुम स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकोगे।’ इसके बाद मुझे हिमालय से आए हुए किसी संन्यासी या भिक्षु से मस्तो की खबर मिलती रहती थी कि वह कालियोग में है या नैनीताल में है किंतु फिर वह हिमालय से कभी नहीं लौटा। मैंने उसका पता लगाने की बहुत कोशिश की। जो भी हिमालय जाता उससे मैं कहता कि ऐसे आदमी को अगर कहीं देखों तो मुझे तुरंत खबर दो किंतु उसे खोजना बहुत मुश्किल था। उसका कोईफोटो भी मेरे पास नहीं है क्योंकि उसे फोटो खिचवाना पसंद नहीं था। एक बार बड़ी मुश्किल से मैंने इसे फोटोग्राफर के पास जाने के लिए राजी किया। हमारे गांव का फोटोग्राफर था मुन्नु मियां, उसका कैमरा इतना पुराना था कि पूरी फिल्म में से एकाध फोटो ही ठीक निकलती थी। मैं मस्तो को बड़ी मुश्किल से मुन्नु मियां के स्टुडियो में लेकर गया। मुन्नु मियां ने फोटो भी ली किंतु मुन्नु मियां अपने कैमरे में प्लेट डालना ही भूल गए। मेरी सारी मेहनत बेकार गई। मुन्नु मियां की गलती के कारण मुझे मस्तो की फोटो नहीं मिल सकी।

तुम लोगों को मैं तीन लोगों की फोटो दिखाना चाहता था-एक मस्तो की, दूसरे व्यक्ति की जिसके बारे में बाद में बात करूंगा और तीसरी मेरी नानी की परंतु अफसोस कि तीनों की ही फोटो ली थीं। लेकिन उन सबको नानी अपने पास ही रखती थीं। उन्होंने कहा था कि वे उन्हें सुरक्षित रखेगी और उनके मरने के बाद में उन्हें ले सकता हूं। किंतु उनके मरने के बाद मैंने उनके घर में उनके कमरे की अलमारी में बहुत खोजा किंतु मुझे पता लगा कि उसमें तो कभी कोईफोटो चिपकाई ही नहीं गई। नानी ने उन सब फोटो को नष्ट कर दिया जो मैंने उनके खींचे थे। केवल मेरा मन रखने के लिए

वे मुझे उनका फोटो लेने देती थी। बाद में वे किसी न किसी बहाने से मुझसे ले लेती थीं और नष्ट कर देती थीं।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(26)

मैं आपको मस्तो के गायब हो जाने के बारे में बता रहा था। शायद वह अभी भी जीवित है। मुझे तो यही प्रतीत होता है कि वह जीवित ही है। पूर्व में एक बहुत प्राचीनप्रथा है और वह है-मरने से पहले हिमालय में खो जाने की। कहाँ और जीवित रहने से तो उस सुंदर स्थान में मर जाना कहीं अच्छा है। वहां मरने से शाश्वत की झलक मिल जाती है। शायद इसलिए कि हजारों वर्षों तक ऋषि-मुनि वहां पर जो मंत्रोच्चार कर रहे थे, उसकी तरंगे अभी भी वहां के वातावरण में पाई जाती हैं। वेदों की रचना वहां पर हुई, गीता वहां लिखी गई, बुद्ध वहां पर जन्मे और मरे, लाओत्सु भी अपने अंतिम दिनों में हिमालय में ही खो गया और मस्तो ने भी वही किया। निश्चयपूर्वक तो यह कोई नहीं जानता कि लाओत्सु मरा या नहीं। जनश्रुति कहती है कि वह अमर हो गया। कोई अमर होता नहीं है क्योंकि जो जन्मता है वह मरता ही है। किंतु लोगों को लाओत्सु की मृत्यु के बारे में कुछ पता नहीं है।

मस्तो ने मेरी देखभाल पागल बाबा से भी कहीं अधिक की। पागल बाबा तो सचमुच पागल बाबा ही थे। वे तो कभी-कभी आंधी की तरह मुझसे मिलने आते और फिर गायब हो जाते। एक बार मैंने जब उनसे इसकी शिकायत की तो उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें जल्दी ही अच्छे हाथों में सौंप दूंगा। मैं तुम्हारी देखभाल नहीं कर सकता क्योंकि मैं नब्बे वर्ष का हूं। अब मेरे शरीर छोड़ने का समय हो गया है किंतु मैं रुका हुआ हूं ताकि मैं तुम्हें योग्य और उपयुक्त हाथों में सौंप सकूं। एक बार ऐसा व्यक्ति मिल जाए तो मैं तुरंत ही मृत्यु में विश्राम कर लूंगा।’ और उन्होंने ऐसा ही किया। उन्होंने मुझे मस्तो को सौंप दिया और वे हंसते हुए मर गए। जरथुस्त्र के बारे में कहा जाता है कि वह हंसते हुए जन्मा था-उसका समस्त जीवन इसकी ओर ही संकेत करता है और उसकी इसी हंसी ने ही परिचय के सर्वाधिक प्रतिभाशाली व्यक्तिफ्रेंडरिक नीत्शे को आकर्षित किया था। परंतु पागलबाबा तो हंसते हुए ही मरे थे। उस समय यहां पर उपस्थित सब लोगों ने समझा कि वे सचमुच पागल हो गए है।

मस्तो ने मेरे लिए इतना किया-इतना किया कि उसके बारे में बात करते भी मेरा दिल दुखता है-वह इतनी निजी बात है कि उसका जिक्र भी नहीं किया जा सकता।

बाबा को मस्तो से अधिक अच्छा आदमीऔर कोई नहीं मिल सकता था। वह ध्यानी था इसलिए हम दोनों में अच्छा संवाद हो सका। उसमें और भी अनेक गुण थे, वह अच्छा गायक था, अच्छा नर्तक था, अच्छा सितार वादक था परंतु वह लोगों के सामने न गाता था न बजाता था। उसकी आवाज इतनी मधुर थी कि जब वह गाता था तो ऐसा लगता था कि अस्तित्व उसके माध्यम से प्रवाहित हो रहा है। केवल मेरे सामने ही वह सितार बजाता था और उस समय वह दरवाजे बंद कर देता था। वह कहता था कि ये चीजें इतनी निजी है कि इन्हें जनता के सामने रखना एक प्रकार से वेश्यावृत्ति करना है। वह बहुत बड़ा दार्शनिक और विचारक था। पागलबाबा और मुझमें एक ही समानता थी और वह थी हम दोनों का पागलपन।

पागल बाबा की दिलचस्पी अनेक चीजों में थी। मैं उनका प्रतिनिधि नहीं बन सकता था किंतु मस्तो अवश्य बन सकता था। वैसे भी मैं किसी का भी प्रतिनिधि नहीं कर सकता। मैं उस समय बच्चा था और मुझे पथ-प्रदर्शन तथा दिशा-निर्देशन की आवश्यकता

थी परंतु मैं आसानी से किसी की बात भी नहीं मानता था। बिना समझे-वूझे मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ता था। परंतु मस्तो ने हर प्रकार से मेरी देखभाल की। उसमें बहुआयामी गुण थे। वह बहुत अच्छा संगीतज्ञ था किंतु उसने मुझे किसी को भी अपने साथ लाने के लिए मना किया हुआ था। एक दिन जब मैंने उससे पूछा कि क्या मैं अपनी नानी को उसका संगीत सुनने के लिए ला सकता हूं तो उसने मुझे नानी को लाने की आज्ञा दे दी। जब मैंने नानी को यह बताया तो उसने कहा कि मस्तो से कहो कि मेरे घर आकर सितार बजाए।’ मस्तो मान गया और मैं बहुत खुश हो गया कि उसने इस अनुरोध को अस्वीकार नहीं किया। नानी तो मस्तो के सितार-वादन में इतना खो गई, इतनी मस्त हो गई कि उस समय उनका काया-परिवर्तन ही हो गया-वे दोबारा अपनी युवावस्था में पहुंच गई। इस चमत्कार को होते मैंने देखा किंतु जैसे ही मस्तो ने सितार बजाना बंद किया वैसे ही वे फिर से बूढ़ी हो गई। मुझे इस पर विश्वास नहीं हो रहा था इसलिए बार-बार मैं अपनी आंखों कोझपका रहा था।

मस्तो सदा लोगों की भीड़ से बचता रहा इसलिए वह दुनिया उससे अपरिचित ही रही। जिस क्षण उसका कर्त्तव्य पूरा हुआ-पागलबाबा से किया गया वायदा पूरा हुआ, उसी क्षण वह हिमालय में खो गया। वैज्ञानिक कहते है कि अगर कभी हिमालय की सारी बर्फ पिघल जाए तो सारी दुनिया में बाढ़ आ जाएगी। प्रत्येक सागर का पानी चालीस फीट ऊंचा हो जाएगा। हिमालय पर्वत की ऐसी सैकड़ों चोटियां है जिनकी बर्फ कभी पिघलती नहीं। उनका मौन वातावरण विचित्र है। ध्यान की गहराई में डूबे हुए हजारों लोगों ने यहां पर शरण ली है। उनकी प्रार्थना और मंत्रोच्चार की गूंज अब भी उस मौन वातावरण में तरंगित होती है। सारे संसार में हिमालय पर्वत अनोखा है। एल्पस पर्वत तो उसके सामने बच्चा है। मैं हिमालय की उन मौन रातों को नहीं भूल सकता जहां पर कोई नहीं है सिवाय आकाश में टिमटिमाते तारों के। मैं मस्तो की भांतिवहीं पर खो जाना चाहता हूं और शायद एक दिन मैं भी अचानक अदृश्य हो जाऊंगा। शरीर छोड़ने के लिए हिमालय से अच्छा कोई कोई स्थान नहीं है किंतु शायद मैं ऐसा न भी करूं क्योंकि मुझे स्वयं नहीं मालूम कि मैं किस समय क्या करूंगा। मेरे बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

शायद मस्तो जल्दी जाना चाहता था किंतु वह अपने गुरु पागलबाबा द्वारा दिए गए अंतिम काम को पूरा करना चाहता था। मेरे लिए उसने न जाने क्या-क्या किया। मुझे ऐसे लोगों से परिचित करवाया जो मेरे एक इशारे पर मुझे पैसा भेज देते थे। कुछ पैसे भेजनेवाले लोग तो अज्ञात ही रहे।

मैं जबलपुर विश्वविद्यालय में नौ वर्ष तक था तो लोगों को हैरानी होती थी कि इतने कम वेतन में कैसे मैं बाग-बगीचेवाले सुंदर, बंगले में रहता था और मेरे पास कार भी थी। मेरे पास तो कभी कुछ था ही नहीं-पैसा तो था ही नहीं लेकिन मस्तो ने मेरे लिए सारी व्यवस्था कर रखी थी।

मस्तो से विदा लेना बहुत मुश्किल है। भले ही मैं उसको दोबारा न देख सकूं किंतु मेरा अंतरतम उसकी सुगंध से भरा हुआ है-मैं उसकी सुगंध से अभिभूत हूं।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(27)

मस्तो से बिछुड़ना मेरे लिए उतना ही मुश्किल था जितना कॉलेज में जाते समय नानी से विदा लेना। नानी की मृत्यु के बाद केवल मैं ही उनके जीने का सहारा था।
नानी के कारण ही मैं उस गांव में रहता था।

मुझे अभी तक सर्दी के मौसम की वह सुबह याद है जब गांव के सब लोग मुझे विदा देने के लिए इकट्ठे हुए थे, क्योंकि मैं बी.ए. की पढ़ाई करने के लिए चार साल के लिए गांव से बाहर जा रहा था। मेरा सारा परिवार भी वहां उपस्थित था-मेरे भाई-बहिन, मां और दद्दा सब रो रहे थे। मुझे केवल नानी की ही चिंता थी। माता-पिता से तो मैं बचपन से ही दूर रहा था सो उन्हें इसकी आदत थी। मैंने नानी के पैर छुए और उनसे कहा-‘कहीं दूर थोड़े ही जा रहा हूं। कुल सौ मील का ही तोफासला है। तुम जब बुलाओगी मैं भागता हुआ आ जाऊंगा। रेल-गाड़ी से तो केवल तीन घंटे ही लगते हैं। उन दिनों तेज गाड़ियां वहां पर नहीं रूकती थीं। नहीं तो यह सफर दो घंटे का ही था। उन्होंने अपने आप को संयत करने की कोशिश की किंतु मैंने उनकी आंखों में उभड़ते हुए आंसुओं को देख लिया था। बस तत्क्षण मैं मुड़ा और स्टेशन की ओर चल पड़ा-गली के मोड़ पर पहुंच भी मैंने पीछे मुड़कर नहीं देखा क्योंकि मुझे मालूम था कि अगर मैंने पीछे की ओर देखा तो या तो वे रो पड़ेगी और मैं कॉलेज नहीं जा सकूंगा या उनकी सांस ही रुक जाएगी-उनके प्राण ही निकल जाएंगे। उनके लिए मैं ही सब कुछ था। उनका सारा अस्तित्व मुझ पर केंद्रित था। दिनभर वे मेरे कमरे को ठीक करतीं या मेरे कपड़ों को या खिलौनों को सहेजती रहतीं। मैं उनसे कहता, ‘नानी। चौबीस घंटे आप मेरे काम में व्यस्त रहती हैं-दिन-रात मेरे काम में लगी रहती है और मैं तो आपके लिए कुछ नहीं करता और शायद आगे भी नहीं करूंगा।’ इस पर वे कहतीं-‘वह तो तुम पहले ही कर चुके हो।’ वे इतनी दृढ़ता से, इतने जोर से यह बात कहतीं कि मैं भावविभभूत हो जाता। बाद में मुझे पता चला कि जब मैं गली के कोने पर मुडा तो लोगों ने कहा कि ‘यह कैसा लड़का है? एक बार भी इसने पीछे मुड़कर नहीं देखा।’ यह सुनकर नानी ने कहा, ‘हां! वह मेरा बेटा है। वह कभी पीछे मुड़कर नहीं देखेगा-न इस गली के मोड़ पर न अपने जीवन में। वह जानता था कि अगर उसने पीछे मुड़कर देखा तो मैं रो पडूंगी और मुझे रोते देखकर वह मुझे छोड़कर कॉलेज नहीं जा सकता था। उसका मुझ पर इतना प्रेम है कि मेरे आंसू न बहें, इसके लिए वह जीवन भर मेरे साथ रह सकता है।

मस्तो को एकाएक विदा देते मुझे पीड़ा होती है इसलिए उसकी कहानी का अंत स्वाभाविक ढंग से ही होना चाहिए।

एक बार मस्तो मुझसे मिलने इलाहाबाद स्टेशन पर आया। वास्तव में उस दिन हम एक-दूसरे से अलग नहीं होना चाहते थे। उसने कहा कि वह मुझसे दो-तीन महीने नहीं मिल सकेगा, इसलिए हम दोनों एक-दूसरे के साथ अधिक से अधिक समय बिताना चाहते थे। मस्तो ने कहा, ‘क्या ही अच्छा हो अगर गाड़ी लेट हो।’ मैंने कहा ‘क्या बात करते हो मस्तो! क्या भारतीय गाड़ियां भी कभी समय पर आती हैं?’ गाड़ी सचमुच छह घंटे लेट आई किंतु हम दोनों अपनी बातों में इतने मस्त थे कि हमें पता ही नहीं चला कि गाड़ी कब छूट गई। इस पर हम दोनों खूब हंसे और इस बात पर खुश हुए कि अगली गाड़ी के आने तक हम और कुछ घंटे एक-दूसरे के साथ रह सकते हैं। हमें हंसते देखकर और हमारी बातों को सुनकर स्टेशन मास्टर ने कहा, ‘आप तो सामने वाले प्लेटफार्म पर चले जाइए। वहां पर केवल मालगाड़ियां ही रुकती है। वहां पर आराम से आप बातचीत करें, एक-दूसरे के गले मिलते रहें और गाड़ी पकड़ने की चिंता ही छोड़ दें क्योंकि वहां पर कोई सवारी-गाड़ी आएगी ही नहीं।’

मैंने मस्तो से कहा कि यह तो बढ़िया सुझाव है-अति आध्यात्मिक। हमने स्टेशन मास्टर को धन्यवाद दिया और दूसरे प्लेटफार्म पर चले गए। हमें वहां जाते देखकर वह भागा हुआ हमारे पास आया और उसने कहा कि मैं तो मजाक कर रहा था। यहां पर कोई सवारी-गाड़ी नहीं रुकती।’ मैंने कहा, ‘भाई फि मत करो। न मैं गाड़ी पकड़नाचाहता हूं न मस्तो ही चाहता है कि मैं गाड़ी पकडूं। जिसके घर हम टहरे हुए थे वह सज्जन अति व्यग्र थे कि मैं यूनिवर्सिटी-हॉस्टल ठीक मय पर पहुंच जाऊं। ‘मस्तो भी यही चाहता था कि पागल बाबा की इच्छा के अनुसार मुझे एम.ए. कर लेना चाहिए। इसलिए मुझे

जाना पड़ा। सच तो यही है पागल बाबा से किए गए वायदे को पूरा करने के लिए ही मैं यूनिवार्सिटी में रहा। यूनिवर्सिटी ने मुझे आगे पढ़ने के लिए स्कॉलरशिप भी दी।
परंतु मैंने अस्वीकार कर दिया। बाबा से मेरा वायदा केवल एम.ए. तक पढ़ने का था। सब लोगों ने मुझे समझाया कि यह स्कॉलरशिप तो नौकरी से भी अच्छी है क्योंकि यह कई वर्षों तक चल सकती है, इसकी कोई निर्धारित अवधि नहीं है। किंतु मैं नहीं माना। मेरे प्रोफेसर ने भी मुझे समझाने की बहुत कोशिश की किंतु मैं टस से मस नहीं हुआ।

मस्तो को तो मैं कभी भूल ही नहीं सकता। उसकी बात तो बीच-बीच में होती ही रहेगी। उसने मेरे लिए जो किया, उसके लिए मैं उसे धन्यवाद भी नहीं दे सकता। वह तो बुद्धपुरुष था किंतु वह पागल बाबा जैसा नहीं था। पागल बाबा तो रहस्यदर्शी थे और मस्तो दार्शनिक भी था। रात को गंगा के किनारे हम दोनों घंटों तक विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श करते या मौन होकर एक-दूसरे की उपस्थिति का आनंद उठाते। यह वही गंगा है जहां पर सबसे पहले उपनिषद गाए गए, जहां बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया, जहां पर महावीर ने भी घूमघामकर उपदेश दिए। पूर्व के रहस्यदर्शन को हिमालय और गंगा से अलग नहीं किया जा सकता। ये दोनों पूर्वीय रहस्यदर्शन के परिपूरक हैं।

हम वहां पर घंटों बैठते थे। उस मौन का सौंदर्य मुझे अभी तक याद है। कभी-कभी तो हम वहां रेत पर सो भी जाते थे क्योंकि मस्तो कहता कि इतनी सुंदर रात को जब तारे हमारे निकट हैं, घर जाकर बिस्तर में सोना तो बहुत बड़ी मूर्खता होगी। मैं कहता, ‘मस्तो! मुझे तो नदी में झिलमिलाते तारे बहुत ही प्रिय हैं। पानी में तारों का प्रतिबिब बहुत ही सुंदर दिखाई देता है। मुझे तो ये तारे, नदी में उनका वह प्रतिबिब और तुम्हारा सत्संग और तुम्हारा प्रेम बहुत ही अच्छा लगता है-बस और कुछ नहीं चाहिए। जो तुम करना चाहते हो वही मैं भी करूंगा, मैं तुमसे भिन्न नहीं हूं। मुझे कुछ भी कहते कभी झिझकना मत।’

मैं विश्वविद्यालय में एक गरीब छात्र था, कई प्रकार के काम करके मैं विश्वविद्यालय तक पहुंचा। एक बार मैंने अंतर-विश्वविद्यालय-वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लिया। एक निर्णायक थे प्रोफेसर एस.एस. राय जो इस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष है। बस वे तो मेरे प्रेम में पड़ गए और मेरी ओर से भी यही हाल था। उन्होंने वाद-विवाद में मुझे सौ में से निन्यानबे नंबर दिए और दूसरे प्रतियोगियों को शून्य दिया। यह वाद-विवाद बहुत महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इसके विजेता को सरकारी मेहमान बनकर तीन महीने के लिए मिडल-ईस्ट के दौरे पर जाना था। एक प्रकार से वह राजदूत के समान ही था। तो प्रो. एस.एस. राय ने मुझे सौ में से निन्यानबे नंबर दिए और दूसरों को शून्य दिया ताकि मेरे जीतने में कोई कसर न रह जाए। मैंने उनसे पूछा कि ‘आपने मेरा इतना पक्षपात क्यों किया? उन्होंने कहा, ‘जैसे ही मैंने तुम्हारी आंखों में देखा मैं सम्मोहित हो गया। मेरी पत्नी भी यही कहती है कि मैं तुमसे सम्मोहित हो गया हूं- नहीं तो ऐसा न करता। जब कोई भी देखेगा कि मैंने तुम्हें सौं में से निन्यानबे दिए हैं और दूसरे प्रतियोगियों को शून्य दिया है तो मेरा पक्षपात स्पष्ट हो जाएगा।’

मैंने उनसे कहा, ‘मैं आपसे यह नहीं पूछ रहा कि आपने मुझे निन्यानबे प्रतिशत क्यों दिया है। मैं तो यह पूछने आया हूं कि आपने मुझे शतप्रतिशत क्यों नहीं दिए? एक क्षण के लिए तो वे भौंचक्के हो गए। तब वे हंस पड़े और कहने लगे कि ‘मैं बाबा का शिष्य था। उन्होंने मुझसे ठीक ही कहा था कि ‘जब तुम इस व्यक्ति को देखोगे तो तुम्हें मेरी जरूरत न रहेगी।’ और गायब होने से दो-तीन साल पहले मस्तो बाबा ने भी यही कहा था। मैं तुमसे सच कहता हूं कि मैं तुमसे सम्मोहित नहीं हुआ था। हुआ यह था कि तुम्हारी आंखों ने मुझे मस्त बाबा और पागल बाबा दोनों की आंखों की याद

दिला दी थी। बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारी आंखे उन दोनों की आंखों जैसी है।’ मैंने उनसे कहा, ‘मुझे इस बात की खुशी है कि मेरी आंखों में आपको उन दोनों की झलक मिली और इनके कारण आपको उनकी याद आई। इससे बड़ा पुरस्कार मुझे क्या मिल सकता है? किंतु फिर भी मुझे आपसे यह पूछना है कि आपने मुझे शतप्रतिशत नंबर क्यों नहीं दिए?’

उन्होंने उत्तर दिया, ‘देखो भाई! मैं एक गरीब प्रोफेसर हूं। अगर मैं तुम्हें शतप्रतिशत देता और दूसरे प्रतियोगियों को शून्य देता तो लोग कहते कि मैंने न्याय नहीं किया। यह कोई न समझ पाता कि मैंने सच में न्याय किया है। यह तो केवल मस्त बाबा और पागल बाबा ही समझ सकते थे। मैंने तो अपनी कायरता के कारण तुम्हें निन्यानबे प्रतिशत दिए है।’ उन्होंने इतनी सरलता से अपने आपको कायर कहा कि मैं उनकी इस सरलता और सच्चाई से प्रभावित हो गया।

बस उस वाद-विवाद प्रतियोगिता के कारण और पागल बाबा और मस्ता बाबा की याद के कारण मैं सागर विश्वविद्यालय में पढ़ने लगा। उस समय प्रो. एस.एस. राय वहीं थे, इसलिए मैंने उनसे कहा कि ‘मैं एक.ए. की परीक्षा की तैयारी आपके पथप्रदर्शन में ही करूंगा। पागल बाबा और मस्ता बाबा दोनों यही चाहते थे कि कभी कोई जरूरत पड़ जाए तो मुझे उसके लिए पहले से ही तैयार रहना चाहिए परंतु मुझे कभी कोई जरूरत हुई ही नहीं। चारों ओर से लोग मुझ पर चीजें बरसाते रहे। इसी लिए तो मैंने यह कहा कि आरंभ से ही मेरे साथ सब ठीक ही होता रहा है।

एस.एस. राय बहुत ही प्यारे प्रोफेसर थे। समस्त क्लास के सामने वे बेझिझक मुझसे कहते कि मैं उठकर उन्हें वह बात समझाऊ जो उनकी समझ में नहीं आ रही और मुझे ऐसा करना पड़ता। एक दिन मैंने उनसे कहा कि ‘राय साहब! यह तो अच्छा नहीं लगता कि आप सब छात्रों के सामने मुझसे समझाने के लिए कहते हैं-मैं तो आपका छात्र हूं।’ इस पर उन्होंने कहा, ‘अगर पागल बाबा तुम्हारे पैर छू सकते हैं और मस्ता बाबा तुम्हारे पैर छूने के अतिरिक्त तुम्हारी हर प्रकार की मांग को पूरा कर सकते हैं तो मैं क्लास में तुमसे क्यों नहीं पूछ सकता?’

सैकड़ों शिक्षकों और प्रोफेसरों को मैं जानता हूं परंतु प्रोफेसर राय इन सबसे अलग थे। वे अत्यंत प्रामाणिक और सच्चे व्यक्ति थे। वे मुझसे इतना प्रेम करते थे कि अपने लेक्चर में वे मुझे उद्धत करते थे और स्पष्ट कहते थे कि यह मेरा वक्तव्य है। इसलिए अन्य छात्र मुझसे जलते थे और उनकी पत्नी को भी मुझसे ईर्ष्या होती थी। एक दिन मैं उनके घर गया तो उनकी पत्नी ने कहा, ‘क्या? अब तुम हमारे घर भी आने लगे? वे तो तुम्हारे लिए पागल हो गए हैं। जब से तुम उनके विभाग में पढ़ने लगे हो हमारे दांपत्य-जीवन में ही दरार पड़ गई है।’

मैंने उनकी पत्नी से कहा, ‘अच्छा! अब मैं दोबारा इस घर में नहीं आऊंगा लेकिन याद रखिएगा कि इससे आपकी बात बनेगी नहीं। एक दिन आपको मेरे पास आना पड़ेगा।’ और उसके बाद मैं उनके घर नहीं गया। कोई एक साल के बाद उनकी पत्नी मेरे पास आई और मुझसे क्षमा मांगते हुए उसने कहा, ‘अब तुम ही हम दोनों में सुलह करा सकते हो।’ जब वह बहुत रोई और गिड़गिड़ाई तो मुझे उनके घर जाना ही पड़ा। मैंने प्रोफेसर एस.एस. राय से कुछ नहीं कहा, केवल उनका हाथ पकड़कर उनके पास एक घंटा बैठा रहा और एक घंटे बाद चला आया। और सब ठीक हो गया। प्रोफेसर राय खुश हो गए। जो शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता वह मौन से कहा जा सकता ळें

ओशो का स्वर्णिम बचपन(28)

मैंने रविशंकर का सितार-वादन सुना है। उनका व्यक्तित्व तो गायक का है, पर सितार-वादन पर उनका अच्छा अधिकार है और नवीन धुनों के सृजन की योग्यता है। शास्त्रीय संगीत में नवीनता पैदा करना बहुत मुश्किल है लेकिन रविशंकर को नवीनता से बहुत प्रेम है। उन्होंने यहूदी मैनुइन की वॉयलिन के साथ अपना सितार बजाया है। दूसरा कोई भी भारतीय सितार-वादक ऐसा न करता। क्योंकि इससे पहले किसी ने भी ऐसा प्रयोग नहीं किया और सितार के साथ वॉयलिन बजाने को तो पागलपन ही समझा जाता है, किंतु नवीनता पैदा करने वाले लोग पागल ही होते हैं इसीलिए तो वे नई-नई चीजों को जन्म देते हैं। ये तथाकथित समझदार लोग जो आजीवन परंपरा का पालन करते रहते हैं-वे निर्धारित पथ पर, निर्धारित नियमों के अनुसार चलते हैं। नए का सृजन करने वाला कलाकार नियमों का उल्लंघन करता है-निर्धारित पथ के बाहर चला जाता है और इस प्रकार वह अपनी अंतर्निहित संभावनाओं को, योग्यताओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। रूढ़िमुक्त लोग थोड़े सनकी होते हैं और वे लकीर से हटकर ही चलते हैं। रविशंकर अवश्य रूढ़िमुक्त हैं।

इनके गुरु थे सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ, अलाउद्दीन खान जो रविशंकर से भी अधिक विद्रोही थे। एक बार मस्तो मुझे उनके पास ले गया था। मस्तो ने मुझे अनोखे लोगों से मिलाया था। अलाउद्दीन खान सौ बरस के होकर मरे थे। उन्होंने 1857 का स्वतंत्रता- विद्रोह देखा था। उन्होंने समस्त शताब्दी की घटनाओं को देखा था और वे सदा वाद्य-यंत्रों को अभ्यास वे रोज दस-बारह घंटे करते थे।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की विशेषता ही यही है कि बिना अभ्यास के उस पर अधिकार नहीं हो सकता। इसीलिए एक संगीतज्ञ ने कहा है कि अगर मैं तीन दिन तक अभ्यास न करूं तो श्रोताओं को इसका पता चल जाता है, अगर दो दिन न करूं तो संगीत के जानकारों को पता चल जाता है, अगर एक दिन अभ्यास न करूं तो मेरे शिष्यों को मालूम हो जाता है और अगर थोड़ी देर के लिए भी मैं अभ्यास न करूं तो तत्क्षण मुझे खटक जाता है।

संगीत की दुनिया में अलाउद्दीन खान रविशंकर से बहुत ऊंचे थे-बहुत महान थे। रविशंकर उनके प्रेम में डूबे हुए थे। अलाउद्दीन खान भी विद्रोही थे। वे संगीत के स्रोत थे और संगीत में नवीनता लाने के अतिरिक्त उन्होंने उसमें अनेक मौलिक चीजें जोड़ दी थीं। आज के प्रायः सभी भरतीय संगीतज्ञ उनके शिष्य रह चुके हैं। आदर से उन्हें ‘बाबा’ कहा जाता था और बाबा का आशीर्वाद लेने उनके पैर छूने के लिए दूर-दूर से सब प्रकार के कलाकार आते थे। उनके पास नर्तकों, सितार और बांसुरी- वादकों और अभिनेताओं की भीड़ लगी रहती थी। मैंने जब उनको देखा था तब वे नब्बे वर्ष को पार कर चुके थे। वे अपने शिष्यों को अनेक प्रकार के वाद्य-यंत्र बजाना सिखाते थे। कोई भी वाद्य-यंत्र जब उनके हाथ में आ जाता तो वे उसे इतनी कुशलता से बजाते मानो जीवनभर वे उसी का अभ्यास करते रहे हों।

वे सागर के नजदीक ही रहते थे मेहर में। कुछ घंटों का ही सफर था। तो मैं भी कभी-कभी उनके पास जाता था। उनके यहां कोई न कोई त्यौहार कोई न कोई उत्सव सदा मनाया जाता। इसलिए मैं उनके पास तभी जाता जब कोई त्यौहार न होता। मैं तो उनसे पूछ ही लेता कि ‘बाबा मुझे तब बुलाओ जब उत्सव न हो।’

उनके पास सब धर्मों के संगीतज्ञ आते थे- ईसाई, मुसलमान, हिंदू और सब लोग उनके पास अपने-अपने त्यौहार मनाते थे और बाबा ने इसके लिए कभी किसी को मना नहीं किया। इन तीन दिनों जब वे अकेले होते थे तो मैं उनके पास जाता था और मैं उनसे कहता कि, मैं तो केवल आपके पास बैठने आया हूं। आप जो चाहे करें या न करें। अगर आप अपनी वीणा बजाना चाहे तो बजायें। अगर आप कुरान पढ़ना चाहें तो पढ़ें या मौन रहना चाहें तो मौन रहें। मैं आपको परेशान नहीं करना चाहता।’ यह सुनकर वे रोने लगे मैंने

उन्हें चुप कराते हुए पूछा, ‘क्या मुझसे कोई गलती हुई है?’ उन्होंने कहा, ‘नहीं। तुम्हारी बातों से मेरा हृदय द्रवित हो उठा इसलिए मैं रो पड़ा। इस उम्र में मुझे रोना तो नहीं चाहिए दूसरों के सामने।’ मैंने कहा, ‘मेरे सामने तो आपको इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए, और वे हंस पड़े। उस समय उनकी आंखों में आंसू थे और चेहरे पर मुस्कान थीं। मैंने प्रसिद्ध सितार-वादक, विलायत खान को भी सुना है-शायद वे रविशंकर से थोड़े से बड़े कलाकार हैं। किंतु वे पूर्णतः शास्त्रीय हैं-जरा सी भी नवीनता उनमें नहीं है। उनको सुनकर तो मुझे भी शास्त्रीय संगीत से प्रेम हो गया है। साधारणतया मुझे कुछ भी शास्त्रीय पसंद नहीं है। किंतु उनका बजाना इतना बढ़िया है कि उसे सुनकर हृदय तरंगायित हो जाता है। विलायत खान का बजाना शुद्ध शास्त्रीय है। वे अपने संगीत में किसी तरह की मिलावट नहीं चाहते। पश्चिम के प्रचलित पॉप-संगीत को वे बिल्कुल सहन नहीं कर सकते।

विलायत खान के सितार-वादन की बात से मुझे याद आया कि 1970 में एक अत्यंत समृद्ध परिवार के लोग मेरे शिष्य थे। उनकी पत्नी ने एक दिन मुझसे कहा, ‘केवल आपको ही मैं यह बताना चाहती हूं कि पिछले दस साल से मुझे विलायत खान से प्रेम है।’ मैंने कहा, ‘तो इसमें गलत क्या है? विलायत खान में क्या खराबी है?’ उसने उत्तर दिया, ‘आप समझे नहीं। मैं उनके सितार-वादन की बात नहीं कर रही, मैं तो उनकी बात कर रही हूं।’ मैंने कहा, ‘हां! मैं समझता हूं। इसमें क्या खराबी है?’

----उसने मेरी ओर इस प्रकार देखा जैसे कि मैं कोई अपराध कर रहा हूं। मैंने उससे कहा, ‘सचमुच मुझे उसके सितार से बहुत प्रेम है परंतु उस व्यक्ति से नहीं क्योंकि अन्य कलाकारों की भांति वह भी बहुत अहंकारी है। रविशंकर भी अहंकारी है- शायद इसलिए कि एक तो वह ब्राह्मण है दूसरे वह कलाकार है। और तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि वह अलाउद्दीन खान का दामाद है।’

मस्तो के सामने ये सब कलाकार फीके पड़ जाते। मस्तो भी कई वाद्य-यंत्रों को बजाता था। उसकी प्रतिभा चतुर्मुखी थी। वह चित्रकार भी था किंतु उसने अपने सब चित्रों को नष्ट कर दिया था क्योंकि वह अपनी कोई याद छोड़ना नहीं चाहता था। कभी- कभी वह पागल बाबा के सामने कोई यंत्र बजाता था, मेरे लिए।

----इसलिए जैसे ही पागल बाबा मरे! मेरे मन में पहला प्रश्न उस यंत्र के बारे में उठा और मैंने मस्तो से पूछा, ‘अब मुझे सुनाओगे?’ उसने कहा, ‘हां!’ और उसने मुझे वीणा बजाकर सुनाई। उसने कहा, ‘अब मैं तुम्हारे लिए इसको बजा सकता हूं। मैंने तो अपने आप से वायदा किया था कि यह वीणा मैं पागल बाबा के जीवन काल में केवल उन्हीं को सुनाऊंगा अब वे चले गए हैं, अब तुम सुन सकते हो।’

मुझे याद आया मस्तो मेरी नानी के घर ठहरा हुआ था। मेरे सब मेहमान वहीं ठहरते थे क्योंकि पिताजी के मकान में तो बहुत भीड़ रहती थी। नानी का घर खाली था और वे उसे बहुत साफ-सुथरा रखती थीं। सुबह से शाम तक वे सफाई करती रहती थीं। मैं तो सुबह घर से बाहर निकल जाता और शाम को वापिस आता। मैं नानी से पूछता, ‘आप सफाई करते थक नहीं जातीं?’ वे कहतीं, ‘सफाई तो मेरे लिए प्रार्थना है। तुम मेरे अतिथि हो और अतिथि भगवान होता है। मैं अतिथि के लिए इस घर को मंदिर की तरह स्वच्छ रखती हूं।’

मस्तो भी जब आता तो नानी के घर पर ही ठहरता और वे मेरे हर मेहमान की देखभाल बड़े प्रेम से करतीं। मैंने नानी को मस्तो से बातचीत करते कभी नहीं देखा। हां! कभी-कभी वे उसके पास चुपचाप बैठी रहतीं। एक बार इसके बारे में मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि ‘न मैं कुछ मस्तो से कहना चाहती हूं न मस्तो ही मुझसे कहना चाहता है। एक-दूसरे के पास मौन बैठना ही अच्छा लगता है। हां! तुमसे तो मुझे कई

बातें पूछनी होती हैं और तुम्हें भी बताना पड़ता है-हम दोनों की बातचीत होती रहती है क्योंकि हम दोनों का संबंध ही ऐसा है। उस दिन से हमारी बातचीत भी कम होती गई और एक दिन बंद हो गई।

नानी का घर नदी के किनारे था। वहां पर बड़े-बड़े पेड़ थे और एक छोटा सा मंदिर था अब तो सब बदल गया है। कई मकान और दुकान बन गए हैं। अब मैं उस स्थान को नहीं देखना चाहता। अभी भी मुझे उस छोटे से मंदिर की घंटी सुनाई देती है। तब वह सब कुछ कितना सुंदर था।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(29)

गांव छोड़ने के बाद कुछ दिन तो हम लोग पिताजी के घर पर रहे। पिताजी का परिवार तो वास्तव में अनेक परिवारों का जमघट था-एक मेला था मेला।

हम वहां पर कुछ दिन ही रहे। उसे मैं अपना घर नहीं कह सकता था। थोड़ी देर ठहर कर मैं वहां का हाल-चाल समझ गया और वहां से दूसरी जगह चला गया। तब से लेकर आज तक न जाने कितने घर मैंने बदले हैं। पचास वर्ष के जीवन में मैं सदा घर ही बदलता रहा हूं।

मैं बचपन में नाना-नानी के पास रहता था किंतु उस समय भी मुझे यह मालूम था कि वह मेरा घर नहीं है।

पिताजी के घर को भी मैं अपना घर नहीं कह सकता था क्योंकि वह तो एक बहुत बड़ा अतिथिगृह (गेस्ट हाउस) था जहां मेरे माता-पिता निरंतर मेहमानों की सेवा में व्यस्त रहते थे।

मैंने मन ही मन सोचा कि ऐसा घर तो मुझे नहीं चाहिए। नाना की मृत्यु हो गई। और अब उनके बिना उस घर में नहीं रहा जा सकता था।

अगर नानी वहां वापिस चली जाती तो भी मैं जा सकता था। किंतु नानी ने वहां जाने से बिल्कुल इन्कार कर दिया था। उन्होंने कहा था कि जिसके कारण मैं वहां गई थी जब वही नहीं रहा तो मैं वहां पर क्या करूंगी?

उसके बिना वह घर और वह जायदाद मेरे लिए व्यर्थ है। कोई न कोई उसकी देखभाल कर लेगा। इन चीजों के लिए मैं वापिस नहीं जाऊंगी।’ नानी ने बिल्कुल मना कर दिया और पूरे मन से इन्कार करने के इस ढंग को मैंने उनसे ही सीखा है और समग्रता से प्रेम करना भी उन्हीं से सीखा है।

गांव छोड़ने के बाद कुछ दिन तो हम लोग पिताजी के घर पर रहे। पिताजी का परिवार तो वास्तव में अनेक परिवारों का जमघट था-एक मेला था मेला।

हम वहां पर कुछ दिन ही रहे। उसे मैं अपना घर नहीं कह सकता था। थोड़ी देर ठहर कर मैं वहां का हाल-चाल समझ गया और वहां से दूसरी जगह चला गये। तब से लेकर आज तक न जाने कितने घर मैंने बदले हैं। पचास वर्ष के जीवन में मैं सदा घर ही बदलता रहा हूं।

पिताजी के घर से मैं नानी के घर चला गया और उसके बाद मैट्रिक की परीक्षा पास करने के लिए अपने एक फूफा के घर गया। उन्होंने समझा था कि मैं कुछ दिन ही उनके पास ठहरूंगा लेकिन वे कुछ दिन बहुत लंबे हो गए।

कोई भी होस्टल मुझे लेने को तैयार नहीं था क्योंकि मेरे अध्यापकों और प्रिंसिपल ने मेरे सर्टिफिकेटपर ऐसी अजीब टिप्पणियां लिखी हुई थी।

इन सबने मेरी घोर निंदा की थी। मैंने उन लोगों को उनके मुंह पर कहा था कि ‘यह आप चरित्र हत्या कर रहे हैं।

तो मैं यह कह रहा था कि आज तक मुझे कभी अपना घर ही नहीं मिला। इसको भी मैं अपना घर नहीं कह सकता। न मेरा अपना कोई घर रहा, न रहेगा। इस तथ्य को छुपाने के लिए ही मैं इसको ‘लाओत्सू-हाउस’ कहता हूं। लाओत्सू का इससे कोई लेना-देना नहीं है।

आजीवन मैं प्रतीक्षा करता रहा हूं कि कभी कोई घर मेरा अपना होगा किंतु मुझे यह भी मालूम है कि ऐसा कभी होगा नहीं।

नानी के घर से मैं अपनी बुआ के घर चला गया। किंतु फूफा मुझे अपने पास रखने के लिए पूरी तरह से राजी नहीं थे।

उनका यह रवैया ठीक था क्योंकि मुझे अपने घर में रखकर वे किसी प्रकार की मुसीबत मोल नहीं लेना चाहते थे।

उनको कोई बच्चा नहीं था इसलिए वे दुखी थे। उनका बंगला बहुत सुंदर था जिसमें कई कमरे थे। इसलिए कई लोग उसमें रह सकते थे और मुझे एक कमरा देने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं थी।

फूफा ने शब्दों में कुछ कहा नहीं किंतु इस इंतजाम से वे खुश भी नहीं थे। मैं अपने छोटे से सूटकेस को हाथ में लिए हुए उनके घर के बाहर ही खड़ा रहा और बुआ से कहा कि जब तक मुझे यह विश्वास न हो जाए कि फूफा को मेरे यहां रहने पर कोई आपत्ति नहीं है तब तक मैं इस घर के भीतर पैर नहीं रखूंगा।

और कहीं और चला जाऊंगा। मैं यह वायदा नहीं कर सकता कि मेरे कारण आपको कोई परेशानी नहीं होगी या आप किसी झंझट में न पड़ोगे। मेरा तो स्वभाव ही है कोई न कोई मुसीबत खड़ी करना। फूफा में एक प्रकार का सूक्ष्म तनाव या विरोध रहता था जो अनजाने ही बीच-बीच में फूट पड़ता था।

फूफा जो भी कहते मैं तुरंत उसको काट देता था। इसके अतिरिक्त मुझे उनके गुरु बिल्कुल पसंद नहीं थे। जैसे ही मैंने उस गुरु को देखा तो मैंने बुआ से कहा कि ऐसा खराब आदमी मैंने आज तक नहीं देखा है।

बुआ ने मुझसे कहा, ‘चुप रहो। ये मेरे पति के गुरु हैं। मैंने कहा, होंगे किंतु आप यह बताइये कि मैंने जो कहा वह ठीक है या नहीं। बुआ ने उत्तर दिया, ‘तुम जो कह रहे हो वह बिल्कुल ठीक है किंतु फिर भी चुप रहो।

परंतु मैं चुप रहने वाला नहीं था। मुझे तो उसका सामना करना ही था। जैसे ही वह तथाकथित गुरु बड़ी शान से अपने आसन पर विराजमान हुआ वैसे ही मैंने उसके पास जाकर उसके सिर पर हाथ रख दिया। वहां उपस्थित सब लोगों ने मेरी इस हरकत पर आपत्ति करते हुए चिल्ला कर कहा-‘अरे! यह क्या कर रहे हो? क्या कर रहे हो?’ तुम जानते नहीं कि वे कौन हैं?’ ‘यही तो मैं जानने की कोशिश कर रहा हूं कि ये कौन हैं। उनको मापने की कोशिश कर रहा हूं किंतु ये तो बहुत खोखले हैं। इनका कद तो बहुत ऊंचा है किंतु भीतर गहराई कुछ भी नहीं है।’

गुरु जी तो आगबबूला होकर उछलने- कूदने लगे और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे, ‘यह मेरा अपमान है।’ उस समय उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने लिखा था कि ‘अगर कोई आपका अपमान भी करे तो शांत रहना चाहिए, विचलित नहीं होना चाहिए।’

इसलिए मैंने बड़े भोलेपन से कहा, ‘मैं तो आपकी पुस्तक को उद्घृत कर रहा था।’ वे तो गालियां बक रहे थे और कह रहे थे कि ‘मुझे मालूम था कि जैसे ही यह लड़का इस घर में आएगा वैसे ही सब कुछ बदल जाएगा।

मैंने पूछा, किंतु यह तो बताने की कृपा करें कि मेरे आने से यह घर क्यों बदल जाएगा?’ उन्होंने उत्तर दिया ‘क्योंकि तुम नास्तिक हो।’ मैंने कहा, ‘हां! नास्तिक हूं उस अर्थ में कि मैं औरों की तरह बिना जाने विश्वास नहीं करता।

बुआ के घर से मैं यूनिवर्सिटी के होस्टल में चला गया और जब मैं नौकरी करने लगा तो मैंने एक छोटा-सा मकान ले लिया। वह मकान इतना छोटा था और दीवारें इतनी पतली थीं कि अपने कमरे से मुझे उनकी बातें स्पष्ट सुनाई देती थीं।

एक दिन सुबह उन लोगों ने मुझे वह मकान छोड़ने को कहा तो मैंने कहा कि ‘मैं तो पहले ही इस बारे में आपकी बातचीत सुन चुका हूं।

इसलिए मैंने सामान बांध कर तैयार कर लिया है और गाड़ी भी आ गई है अब मैं जा रहा हूं। वह सन 1957 या 1958 की बात है। तब से लेकर आज तक रात को सोते समय में रूई से अपने कानों को बंद कर देता हूं।

मैं सदा सामान बांधता और खोलता रहा-एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता रहा।
गाडरवारा से मैं जबलपुर गया और जबलपुर से तो न जाने मैंने कितने घर बदले। बंबई में भी कई स्थान बदले और उसके बाद यहां आ गया। अब देखो आगे कहां जाता हूं।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(30)

मुझे अभी भी अपना वह प्रथम भाषण याद है जो मैंने एक हाई स्कूल में दिया था। जिले के सभी हाई स्कूलों ने अपने-अपने वक्ताओं को वहां भेजा था। मुझे भी अपने स्कूल का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुन लिया गया था। इसलिए नहीं कि मैं सबसे अच्छा वक्ता था बल्कि इसलिए कि अगर मुझे न चुना जाता तो मैं मुसीबत खड़ी कर देता। किंतु उन्हें यह नहीं मालूम था कि मेरे कहीं भी जाने से मुसीबत अपने आप खड़ी हो जाती है।

हां! तो मैंने अपना भाषण बिना किसी संबोधन के आरंभ कर दिया। किसी प्रकार की कोई औपचारिकता नहीं निभाई। मैंने न कहा ‘सभापति महोदय’ न कहा ‘सज्जनो और देवियो!’हुआ यह कि जब मैंने सभापति को ऊपर से नीचे तक देखा तो मैंने अपने आप से कहा कि यह तो ‘सभापति’ जैसा दिखाई नहीं देता। फिर वहां उपस्थित लोगों की ओर देखा तो मैंने सोचा कि यहां पर तो न कोई ‘सज्जन’ है न कोई ‘देवी’। सभापति से तो मैं बहुत ही ऊबा हुआ था क्योंकि वह शहर की सब प्रकार की बैठकों का सभापतित्व किया करता था। तो मैंने अपने भाषण को आरंभ करते हुए कहा, ‘जो कोई भी उपस्थित है,’ परंतु इसके बावजूद मैंने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। मेरे प्रिंसीपल ने मुझे बुलाकर पूछा कि ‘तुमने ऐसा अजीब व्यवहार क्यों किया? हमने तुम्हारे लिए जो भाषण तैयार किया था उसमें से तुम एक शब्द भी नहीं बोले और तुमने ‘सभापति’ को संबोधित नहीं किया। न ‘सज्जनों को और देवियों’ को! मैंने उनसे कहा कि मैं क्या करता? मैंने चारों ओर देखा तो मुझे कोई भी सज्जन या कोई भी देवी दिखाई नहीं दी और सभापति तो सभापति जैसा था ही नहीं। उस दिन से वह सभापति मेरा दुश्मन बन गया। मैं दुश्मन बनाने की कला को बहुत अच्छी तरह जानता हूं। वह उस शहर का जाना-माना राजनीतिज्ञ था और उसका नाम था श्रीनाथ भट्ट। वह गांधीवादी राजनीतिक दल का प्रभावशाली नेता था।

मैं पहले भी बता चुका हूं कि मस्तो ने मेरा परिचय बहुत लोगों से कराया था यह सोच कर कि भविष्य में मुझे अपने काम के लिए इन लोगों की सहायता की जरूरत पड़ सकती है। हां! जरूरत तो थी इनकी मुझे किंतु कुछ एक लोगों के सिवाय अधिकांश तो बहुत ही कायर निकले। वे मेरे लिए कुछ भी करने के लिए तैयार नहीं थे। जब भी मैंने अपने काम के लिए उनसे सहायता मांगी उन्होंने कुछ न कुछ बहाना बना दिया। हां! उन परिचितों में से केवल एक प्रतिशत ने मेरी सहायता की।

मस्तो भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का मित्र था, वे बहुत ही सुंदर और अनोखे व्यक्ति थे। राजनीति के क्षेत्र में रहकर शायद ही कोई इतना सुंदर रह सकता है।

जब गूंगी, बहरी और अंधी विश्वविख्यात महिला, हेलन केलर नेहरू से मिली तो उसने उनके चेहरे का स्पर्श करके अपनी संकेत-भाषा द्वारा कहा कि ‘इस व्यक्ति के चेहरे को छूकर मुझे ऐसा लग रहा है जैसे कि मैं किसी संगमरमर की मूर्ति को छू रही हूं।’ बहुत से लोगों ने जवाहरलाल नेहरू के बारे में बहुत कुछ लिखा है परंतु बिना आंख, कान और जुबान की इस महिला ने बड़ी सरलता से बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कह दी।

जब मस्तो ने मेरा उनसे परिचय कराया तो मेरा भी यही ख्याल था। उस समय मैं केवल बीस वर्ष का था और एक वर्ष के बाद ही मस्तो मुझे छोड़कर जाने वाला था। इसलिए वह चाहता था कि वह मुझे अधिक से अधिक लोगों से परिचित करा दे। वह मुझे प्रधानमंत्री के घर ले गया। जवाहरलाल नेहरू के साथ मेरी यह भेंट बहुत ही सुंदर रही। मुझे ऐसी आशा नहीं थी क्योंकि राजनीतिज्ञों से मिलकर मैं सदा निराश हुआ था। मैं तो कभी सोच भी नहीं सकता था कि प्रधानमंत्री और राजनीतिज्ञ न हो। किंतु वे नहीं थे।

हम लोग जब नेहरू से विदा ले रहे थे और वे हमें छोड़ने के लिए गलियारे में आ रहे थे उसी समय इंदिरा गांधी भी वहां पर आ गई। उस समय वे किसी पद पर नहीं थी-कम आयु की युवती थी। उसके पिता ने ही उसका मुझसे परिचय कराया था। मस्ती भी वहीं था किंतु मुझे यह नहीं मालूम कि इंदिरा मस्तो को जानती थी या नहीं।

मेरी जवाहरलाल नेहरू से यह भेंट इतनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई कि इसके कारण, उनके और उनके परिवार के प्रति मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया। नेहरू ने मेरे साथ स्वतंत्रता और सत्य के बारे में चर्चा की। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था इसलिए मैंने उनसे कहा कि क्या आपको मालूम है कि मैं केवल बीस वर्ष का हूं। इस पर उन्होंने कहा, ‘आयु से कुछ नहीं होता। बड़ी उम्र में भी गधा, गधा ही रहता है, वह घोड़ा नहीं बन जाता। इसलिए हम दोनों के आयु के अंतर को भूल जाओ और जो चर्चा चल रही है उसे आगे बढ़ने दो। और उन्होंने मस्तो से दरवाजा बंद करा दिया ताकि उनका सेक्रेटरी भी भीतर न आ सके।

बस फिर हमने अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर बात की और मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे मेरी हर बात को बड़े ध्यान से सुन रहे थे। जवाहरलाल नेहरू के सुंदर होने का एक कारण यह भी था कि वे कश्मीरी थे। कश्मीरी न तो बहुत गोरे हैं और न काले-ठीक बीच का रंग है उनका।

मैंने कश्मीर में जीसस की कब्र देखी है। सूली लगने के बाद पोन्टियस पायलट की सहायता से जीसस उस गुफा में से कश्मीर भाग गए थे। वही एक स्थान था जहां पर वे शांति से रह सकते थे। और जीसस ही नहीं, मोजिज भी वहीं पर दफनाए गए थे। मैंने इन दोनों कब्रों को देखा है।

मोजिज जब अपने लोगों के साथ रेगिस्तान में चालीस वर्षों तक भटक रहे थे तो उस समय उनका एक कबीला खो गया था। ईजराइल पहुंचने के बाद वे फिर उस कबीले की खोज में

निकले और हिमालय की इस घाटी में पहुंच गए। जो परिवार इन दोनों कब्रों की देखभाल करता आ रहा है वह यहूदी है और ये दोनों कब्रें यहूदी ढंग से बनी हुई हैं। मुसलमान की कब्र का सिर मक्का की ओर होता है। किंतु कश्मीर में केवल नियमों के अनुसार नहीं बनाई गई हैं। अरबी में मोजिज को ‘मूसा’ कहते हैं। इस कब्र पर ‘मूसा’ नाम ही लिखा गया है। जीसस को अरबी में ‘यीशू’ कहा जाता है। इसलिए इस कब्र पर ‘यीश’ ही कहा गया है जो कि हिब्रू के ‘जोशुआ’ का परिवर्तित रूप है।

मैं भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से नहीं मिलना चाहता था किंतु मस्तो मेरी बात को मानने को तैयार ही नहीं था। हम दोनों इस बारे में न जाने कितने दिन तक तर्क करते रहे। अंत में थक कर मस्तो ने कहा, ‘तुम जो चाहे करो किंतु मुझे पागल बाबा ने कहा था कि तुम्हें प्रधानमंत्री से मिलाना है।’ पागल बाबा का नाम सुनते ही मैं निरुत्तर हो जाता और मुझे कहना ही पड़ता कि अगर पागल बाबा ने ऐसा कहा है तब तो मुझे मानना ही पड़ेगा। उनकी मृत्यु के बाद भी मैं उनको नाराज नहीं कर सकता।’

इस पर मस्तो ने कहा, ‘तो चलो!’ मैंने उससे पूछा, ‘क्या तुमने प्रधानमंत्री से समय ले लिया है? वे इतने बड़े प्रजातांत्रिक, देश के प्रधानमंत्री हैं इसलिए सदा व्यस्त रहते होंगे। मेरे जैसे लड़के के लिए उनके पास समय होगा?’

उन दिनों मैं खड़ाऊं पहना करता था। हाई स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक मैंने खड़ाऊं ही पहनी और इससे होता यह था कि उनकी आवाज से मीलों तक लोगों को पता चल जाता था कि मैं आ रहा हूं। तो वे बहुत पसंद थीं। मैं सुबह और शाम को उनको पहनकर ही बाहर घूमने भी जाता था। मैं चमड़े के जूते नहीं पहन सकता।

तो मैं मस्तो के साथ प्रधानमंत्री के घर गया। तब तक मुझे नहीं मालूम था कि लोग मस्तो को कितना आदर करते हैं। जैसे ही हमने गेट के भीतर प्रवेश किया वहां के पहरेदार ने मस्तो के पैर छुए और कहा, ‘मस्त बाबा’ आप तो कई महीनों के बाद आए हैं। हम सब आपके दर्शनों के लिए तरस गए हैं। प्रधानमंत्री को भी तो कभी-कभी आपका आशीर्वाद चाहिए।’ मस्तो ने कुछ नहीं कहा केवल हंस पड़ा। फिर भीतर जाने पर जैसे ही सेक्रेटरी ने उसको देखा वैसे ही उसने उसके पैरों को छूते हुए कहा, ‘आप हमें फोन कर देते तो आपको लाने के लिए हम प्रधानमंत्री की कार भेज देते। यह लड़का कौन है?’ मस्तो ने कहा, ‘इस लड़के को जवाहरलाल से मिलाने के लिए ही तो यहां आया हूं। इसके बारे में किसी को कुछ बताने की कोई जरूरत नहीं है।’

मस्तो ने तो बड़ी सावधानी से काम किया किंतु इसके साथ ही मेरी यह मान्यता भी सच सिद्ध हो गई कि जैसे ही हम एक मित्र बनाते हैं वैसे ही तुरंत अपना एक शत्रु भी बन जाता है। अगर तुम चाहते हो कि कोई दुश्मन न हो तो मित्र भी मत बनाओ। बौद्ध और ईसाई साधु इसीलिए किसी प्रकार का कोई संबंध ही नहीं बनाते। दुश्मन न बने इसलिए दोस्ती भी नहीं करते।

हां! तो उस दिन सेक्रेटरी के आफिस में प्रधानमंत्री से मिलने की प्रतीक्षा में जो आदमी बैठा हुआ था उसको उस समय तो मैं नहीं पहचान सका वह बहुत घमंडी दिखाई दे रहा था। मैंने सोचा कोई बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होगा। मैंने मस्तो से पूछा, ‘यह कौन है?’ मस्तो ने कहा, ‘अरे वह कोई विशेष आदमी नहीं है। वह मोराजी देसाई है। वह केबिनेट-मिनिस्टर है और उसे बहुत गुस्सा आ रहा है क्योंकि इस समय उसको प्रधानमंत्री से मिलना था।’ किंतु हुआ यह कि प्रधानमंत्री ने मस्तो को बुला लिया और मोरारजी देसाई को इंतजार करने के लिए कहा। जवाहरलाल ने अनजाने ही मोरारजी देसाई का अपमान कर दिया। हम लोग जब भीतर गए तो हम जवाहरलाल के साथ पूरे

डेढ़ घंटे के लिए थे। वह मोरारजी देसाई का समय था इसलिए वे जल-भून गए क्योंकि एक संन्यासी और एक लड़के को वह समय दे दिया गया।

वहां पहुंचकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं तो वहां गया था एक राजनीतिज्ञ से मिलने और उसके स्थान पर मुझे मिला एक कवि! हां! जवाहारलाल राजनीतिज्ञ नहीं थे। वे अपने सपनों को साकार नहीं कर सके। कवि तो सदा असफल ही होता है-अपनी कविता में भी वह असफल होता है। कवि छोटी-मोटी चीजों से संतुष्ट नहीं होता। वह आसमान के तारों को पकड़कर धरती पर लाना चाहता है इसलिए सदा असफल होता है-मुझे तो जवाहरलाल को देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। यहां तक कि उन्होंने भी मेरी आंखों के आश्चर्य को देख-पढ़ लिया और उन्होंने मस्तो से पूछा, ‘क्या हुआ इस लड़के को! बहुत आश्चर्यचकित हो रहा है।’ मस्तो ने कहा, ‘इसीलिए तो इसको आपके पास लाया हूं। सच पूछो तो अगर मेरे बस में होता तो मैं आपको इसके पास ले जाता।’ यह सुनकर जवाहरलाल चौक उठे किंतु वे बहुत ही सुसंस्कृत व्यक्ति थे। मस्तो के शब्दों का अर्थ समझने के लिए उन्होंने दोबारा मेरी ओर देखा और एक क्षण के लिए हम दोनों की आंखें चार हुईं और हम दोनों एक साथ हंस पड़े और उनकी हंसी बूढ़े आदमी की हंसी नहीं थी, वे बच्चे की भांति हंस रहे थे। मैंने हजारों सुंदर लोग देखे हैं किंतु जवाहरलाल अति सुंदर थे और उनका सौंदर्य शारीरिक ही नहीं था आंतरिक भी था।

हम लोग काव्य की बात कर रहे थे और मोरारजी बाहर बैठे हुए इंतजार कर रहे थे। हम लोग ध्यान की बात कर रहे थे और मोरारजी बाहर इंतजार कर रहे थे। मुझे वह दृश्य आज भी याद है। वह गुस्से से लाल-पीले हो रहे थे। बस हमारी दुश्मनी का आरंभ उसी दिन से हुआ। मेरी ओर से तो कुछ नहीं है। मेरा उनसे कोई विरोध नहीं है। हां! कभी- कभी उनकी बेवकूफियों पर थोड़ा हंस लेता हूं। उस दिन उनको मेरे कारण डेढ़ घंटा इंतजार करना पड़ा इसलिए उनका नाराज होना स्वाभाविक था और उन्होंने यह भी देखा कि हम दोनों को विदा देने के लिए नेहरू बाहर बरामदे कब तक आए, उस समय मैं खड़ाऊं पहनता था और मेरे बाल लंबे-लंबे थे और एक विचित्र प्रकार का चोगा पहनता था जिसे मैंने खुद बनाया था। उसमें कोई कारीगरी नहीं थी। कपड़े की लंबाई लेकर उसे दोनों ओर से सी देता था-बाहों के लिए दो सुराख बना देता था और एक गले के लिए। अपनी सुविधानुसार जब चाहे उन्हें भीतर कर लेता था। मस्तो को तो यह चोगा बहुत ही पसंद आया और उसने भी किसी से ऐसा ही बनवाया। मैंने उससे कहा कि अगर वह मुझसे कहता तो मैं ही बना देता। उसने कहा, ‘नहीं तब मैं उसे इस्तेमाल नहीं कर सकता। तब मैं उसे सुरक्षिरत ही रखता।’

ओशो का स्वर्णिम बचपन(31)

जवाहरलाल सचमुच महान थे। वे एक लड़के को बाहर तक छोड़ने आए और फिर उसके कार में बैठ जाने पर उन्होंने स्वयं कार का दरवाजा बंद किया और जब तक कार रवाना नहीं हो गई तब तक वहीं खड़े रहे। और मोरारजी देसाई यह सब देख रहे थे बस तब से वे मेरे दुश्मन बन जाए और सदा मुझे नुकसान पहुंचाने की कोशिश करते रहे हैं।

मस्तो न जाने कितने लोगों से संबंधित था। उन सब लोगों से तो वह मुझे परिचित न करा सका किंतु अधिकांश महत्त्वपूर्ण लोगों से उसने अवश्य मुझे मिलाया। मुझे जल्दी थी ‘न करने की, निष्क्रियता की, समाधि की,’ और उसे जल्दी थी मेरे प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने की क्योंकि उसने इसके बारे में पागल बाबा से वायदा किया था। ऊपर से तो वह परंपरागत संन्यासी था किंतु भीतर से वह ऐसा नहीं था किंतु लोगों की अपेक्षाओं के कारण उसे बहुत सी अनावश्यक बातों का पालन करना पड़ता था।

इसके कारण उसको न जाने कितनी परेशानी हुई होगी। मैंने तो आरंभ से ही इन सब बातों को अस्वीकार कर दिया इसलिए मैंने कोई दिखावा नहीं किया। मेरे हिंदू अनुयायी समझने लगे कि मैं कल्कि अवतार हूं। हिंदू दस अवतारों को मानते हैं और दसवां कल्कि अवतार है। जैनी भी मुझ पर अपना दावा करने लगे किंतु मैंने इन सबसे काई समझौता नहीं किया, और इस प्रकार के गलत प्रचार को और भ्रांत धारणाओं को जड़ से ही उखाड़ दिया। अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए मैंने दूसरों की अपेक्षाओं को कभी पूरा नहीं किया।

जवाहरलाल नेहरू के साथ मेरी जो भेंट हुई थी उसने मेरे दिमाग पर अमिट छाप छोड़ दी। अभी भी मैं विश्वास नहीं कर सकता कि भारत का प्रधानमंत्री एक बीस वर्ष के लड़के की बातों को इतने ध्यान से सुन रहा था और बीच-बीच में प्रश्न पूछ कर उस चर्चा को और आगे बढ़ा रहा था। कई बार प्रधानमंत्री के सेक्रेटरी ने दरवाजा खोलकर अंदर झांका परंतु जवाहरलाल ने जान-बूझ कर दरवाजे की ओर पीठ की हुई थी। उस समय वे ‘विपस्सना’ के बारे में जानना चाहते थे। ‘विपस्सना’ का अर्थ होता है ‘पीछे की ओर देखना’। जवाहरलाल तो बोधिसत्व जैसे थे। जब वे हंसते थे तो बिल्कुल बच्चों की तरह दिल खोलकर हंसते थे। मुझे तो अभी तक यही आश्चर्य हो रहा है कि वे प्रधानमंत्री कैसे बन गए। भारत का यह प्रथम प्रधानमंत्री, बाद के प्रधानमंत्रियों से बिल्कुल ही अलग था। वह लोगों की भीड़ द्वारा निर्वाचित नहीं किए गए थे-उन्हें गांधी ने चुना था। गांधी के इस काम की सराहना तो मैं भी करता हूं, वैसे गांधी की हर बात की मैं आलोचना करता हूं। जवाहरलाल को मंत्री पद के लिए चुनकर गांधी ने समझदारी का काम किया और इस प्रकार एक कवि प्रधानमंत्री बन गया। तो मैंने सोचा था कि जवाहरलाल तो केवल राजनीति के बारे में ही बात करेंगे किंतु वे तो चर्चा कर रहे थे काव्य की और काव्यात्मक अनुभूति की। मैंने कहा कि ये तो किसी दुर्घटनावश राजनीतिज्ञ बन गए हैं जो इनके आंतरिक स्वभाव के अनुकूल नहीं है। जवाहरलाल ने हंसकरकहा-‘हां! यह एक दुर्घटना ही है। कम से कम एक व्यक्ति ने तो मुझे ठीक-ठीक समझा।’

जवाहरलाल नेहरू के साथ यह हमारी अंतिम भेंट नहीं थी-यह प्रथम थी, मस्तो और मैं दोनों ही समझ रहे थे कि यह अंतिम भेंट है किंतु जब हम लोग उनसे विदा ले रहे थे तो जवाहरलाल ने कहा, ‘क्या आप लोग कल इसी समय आ सकते हो? मैं इस आदमी (मोरारजी देसाई) को कल दूर ही रखूंगा।’ उस शाम को नेहरू ने हमें टेलीफोन पर फिर कहा, ‘कल के बारे में भूल मत जाना मैंने कल के सब दूसरों से मिलने के कार्यक्रम रद्द कर दिए हैं। मैं तुम दोनों का इंतजार करूंगा।’ हमें तो और कोई काम था ही नहीं। मस्तो मुझे प्रधानमंत्री से मिलाना चाहता था और हम लोग मिल चुके थे। सो अगले दिन हम फिर गए। जवाहरलाल ने अपने दामाद; इंदिरा गांधी के पति को भी आमंत्रित किया हुआ था। मुझे बड़ी हैरानी हुई कि उन्होंने अपनी बेटी को क्यों नहीं आमंत्रित किया। मस्तो ने मुझे बताया कि जवाहरलाल की पत्नी की मृत्युकम आयु में ही हो गई थी। उनको एक ही संतान थी-इंदिरा, जो उनके लिए बेटी भी थी और बेटा भी थी और वही अपने पिता की देखभाल करती है। इसलिए शादी के बाद भी इंदिरा अपनी ससुराल के परिवार का अंग न बन सकी। दोनों बेटे भी नाना के घर को ही अपना घर समझते थे इसलिए पति-पत्नी दोनों में आरंभ से ही दरार पड़ गई। जवाहरलाल दोनों को एक साथ नहीं बुलाते थे क्योंकि फिर दोनों में झगड़ा शुरू हो जाता था।

तीसरे दिन सुबह भी उन्होंने स्वयं हमें फोन करके आने को कहा। और तीसरे दिन जब हम गए तो जवाहरलाल ने इंदिरा गांधी से मेरा परिचय कराया। उन्होंने उससे कहा, ‘अभी मत पूछो कि यह कौन है क्योंकि अभी तो यह कुछ नहीं है परंतु एक दिन यह अवश्य कोईमहत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनेगा।’ बस यहीं पर वे गलती कर गए क्योंकि मैं तो अभी भी कुछ नहीं हूं और अंत तक ऐसा ही रहूंगा क्योंकि न कुछ होना बहुत आनंदपूर्ण है।

जवाहरलाल ने इंदिरा से यही कहा कि ‘अभी तो यह कुछ नहीं है किंतु भविष्यवाणी कर सकता हूं कि एक दिन यह अवश्य कुछ बनेगा।’

अंतिम दिन जवाहरलाल ने मुझसे बड़ा अजीब प्रश्न पूछा। उन्होंने पूछा ‘क्या राजनीतिक दूनिया में रहना ठीक है?’ मैंने कहा, ‘नहीं, यह ठीक नहीं है। यह एक प्रकार का अभिशाप है। पिछले जन्म में आपने कोई खराब कर्म किया होगा इसीलिए आज आपको भारत का प्रधानमंत्री बनना पड़ा।’ उन्होंने कहा, ‘हां! तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। मैं इससे सहमत हूं।’ मस्तो को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैं प्रधानमंत्री से इस प्रकार की बात कह रहा हूं और वे मुझसे सहमत भी हो रहे हैं। वास्तव में बरसों से मस्तो और मैं इस बात पर बहस करते रहे थे कि अच्छे आदमी को राजनीति में भाग लेना चाहिए कि नहीं। अब जवाहरलाल के इन शब्दों ने हमारी उस बहस का सही निर्णय कर दिया। हम लोगों ने बहुत विषयों पर चर्चा की। प्रधानमंत्री के घर में शायद ही कोई ‘मीटिंग’ इतने समय तक चली हो-पूरे तीन घंटे। जवाहरलाल ने भी कहा कि ‘यह मेरी सबसे लंबी मीटिंग रही और बहुत सफल और सार्थक भी। मैं सदा इसे याद रखूंगा।’ और उनकी सुंदर आंखों में आंसू भर आए। मैंने उनसे पूछा, ‘इससे आपको क्या मिला?’ उन्होंने उत्तर दिया, ‘मुझे मिली एक ऐसे व्यक्ति की मित्रता जो इस दुनिया का नहीं है और न कभी होगा!’ ये कहते हुए उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे और साथ ही वे हंस भी रहे थे। बाद में मस्तो और मैं प्रायः इसकी चर्चा करते थे। मैंने कहा कि वे रोये तो अपने लिए थे और हंसे थे मेरी स्वतंत्रता पर। किंतु मस्तो मेरे इस विचार से सहमत नहीं था। उसने कहा कि ‘नहीं! वे अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए रोये थे यह देखकर कि तुम कितनी बड़ी राजनीतिक शक्ति बन सकते थे। और अपने इस विचार पर वे स्वयं ही हंस पड़े।’ संयोगवश जवाहरलाल ने ही हमारी इस बहस का निर्णय कर दिया। हिमालय में गायब होने से पहले मस्तो ने मुझसे कहा कि जवाहरलाल तुम्हें बार-बार याद कर रहे थे। पिछली भेंट में उन्होंने मुझसे कहा था, ‘अगर आप उस विचित्र लड़के से मिलें और अगर आप उसके शुभचिंतक हैं तो उसे राजनीति से दूर रखें। मेरा तो जीवन इन मूर्खों के साथ बर्बाद हो गया किंतु आप इस लड़के को राजनीति से सुरक्षित रखिए।

इसके बाद जवाहरलाल कई वर्षों तक जीवित रहे किंतु मैं उनसे दोबारा नहीं मिला। मैंने अपने जीवन में कभी वोट नहीं डाला और न मैं किसी राजनीतिक-दल का सदस्य ही बना-स्वप्न में भी नहीं। सच तो यह है कि पिछले तीस वर्षों से मैंने स्वप्न ही नहीं देखा। हिमालय जाने से पहले एक दिन मस्तो ने मुझसे कहा कि जवाहरलाल ने मुझे घनश्यामदास बिरला का नाम और पता देते हुए मुझसे कहा कि किसी प्रकार की कोई भी जरूरत हो तो इस व्यक्ति से संपर्क करना चाहिए, वह सहायता कर सकता है। और फिर उन्होंने कहा कि उस लड़के की याद मुझे बार-बार आती है और मैं उसके बारे में भविष्यवाणी करता हूं कि एक दिन वह ‘महात्मा गांधी’ बनेगा। महात्मा गांधी जवाहरलाल के गुरु थे और उन्होंने ही जवाहरलाल को प्रधानमंत्री बनाया था। इसलिए उनके मन में गांधी के प्रति अपार श्रद्धा थी इसलिए गांधी से मेरी तुलना करके उन्होंने मेरे प्रति अपना आदरभाव प्रकट किया।

जिस दिन गांधी गोली लगने से मारे गए थे उस दिन जवाहरलाल बहुत रोये थे और रोते हुए उन्होंने रेडियो पर कहा था, ‘ज्योति बुझ गई है। वे हमारा प्रकाश थे। अब हमें अंधेरे में रहना पड़ेगा।

मस्तो ने बताया कि उसने जवाहरलाल से यही कहा था कि वह लड़का कभी भी गांधी बनना पसंद नहीं करेगा। इस पर जवाहरलाल ने कहा था कि ‘हां! मुझे भी इस बात पर संदेह था इसलिए मैंने झिझकते हुए ही उसकी तुलना गांधीजी से की थी। चलो! इस नाम को छोड़ दो और अब मैं कहूंगा कि एक दिन वह गौतम बुद्ध बनेगा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहीं पर लिखा है कि जवाहरलाल गौतम बुद्ध से बहुत प्रेम करते क्योंकि उन्हें कोई भी

संगठित धर्म पसंद नहीं था और ईश्वर पर भी उनका कोई विश्वास नहीं था। मस्तो ने जवाहरलाल से कहा, ‘क्षमा करना किंतु सच तो यह है, कि उस लड़के को यह बिल्कुल पसंद नहीं है कि किसी से भी उसकी तुलना की जाए।’ यह सुनकर जवाहरलाल ने कहा, ‘इसीलिए तो मैं उससे इतना प्रेम करता हूं और इतना ही आदर भी करता हूं। परंतु हर प्रकार से उसे सुरक्षित रखिए और जिस राजनीति ने मुझे बर्बाद किया है उससे उसको दूर रखिए। उसके साथ वह दुर्घटना नहीं घटनी चाहिए।’

इसके बाद मस्तो तो गायब हो गया और मैं भी विलीन हो गया। अहंकार समाप्त हो गया किंतु अहंकार के पीछे जो है वह शाश्वत है। अपनी मृत्यु के बाद मैं अपने लोगों को उतना ही उपलब्ध रहूंगा जितना कि इस समय हूं परंतु यह तो उन पर निर्भर है। अभी तो मैं एक प्रतिशत उपलब्ध हूं और उनका प्रेम और उनकी श्रद्धा निन्यानवे प्रतिशत है किंतु मेरे जाने के बाद उसे सौ प्रतिशत होना पड़ेगा-तब मैं उनको उपलब्ध हो जाऊंगा। अर्थात सौ प्रतिशत श्रद्धा और प्रेम वाला व्यक्ति आसानी से मुझे प्राप्त कर सकेगा। मेरे पास तो अभी भी ऐसे लोग हैं। मृत्यु के बाद भी मैं उनको निराश नहीं करूंगा और उनको परिपूर्ण बनाकर मैं आनंदित होऊंगा।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(32)

जब मैं बच्चा ही था, तो मैंने महात्मा गांधी को दो बार देखा था। मैं अभी भी उस रेलगाड़ी को देख सकता हूं, जिसमें वे सफर कर रहे थे। वे सदा तीसरे दर्जे (थर्ड क्लास) में सफर करते थे, परंतु उनका यह थर्ड क्लास, फर्स्ट क्लास (प्रथम श्रेणी) से भी अधिक अच्छा था। साठ सीटों के डिब्बे में वे, उनकी पत्नी और उनका सेक्रेटरी-केवल ये तीन लोग थे। सारा डिब्बा आरक्षित था। वह कोई विशेष प्रथम श्रेणी का डिब्बा था, क्योंकि ऐसा डिब्बा तो मैंने दोबारा कभी देखा ही नहीं, परंतु उस पर ‘तृतीय श्रेणी’ लिख दिया गया था। उस समय मैं केवल दस साल का था। नानी ने मुझे तीन रुपये देते हुए कहा था, ‘इनको जेब में रख लो। अगर देर हो जाए और भूख लगे तो कुछ खरीद कर खा लेना।’

नानी ने मेरे लिए मलमल का बहुत सुंदर कुर्ता बनाया था और मैंने वही पहना हुआ था क्योंकि उन दिनों बहुत गर्मी थी। उस समय चांदी के रुपयों का प्रचलन था। अब उस मलमल के कुर्ते की जेब के लिए चांदी के तीन रुपये बहुत भारी थे-जेब लटक रही थी। गाड़ी तेरह घंटे लेट थी। प्रायः सभी लोग चले गए थे सिवाय मेरे। स्टेशन-मास्टर ने भी मुझसे कहा कि सब लोग चले गए हैं और अभी भी गाड़ी के आने का कुछ पता नहीं है। तुम सुबह चार बजे से उसका इंतजार कर रहे हो। स्टेशन पर चार बजे पहुंचने के लिए मुझे अपने घर से आधी रात को ही चलना पड़ा था। फिर भी मुझे अपने उन तीन रुपयों को खर्चने की जरूरत नहीं पड़ी थी, स्टेशन पर जितने लोग थे, वे सब इस छोटे लड़के की देखभाल कर रहे थे। वे मुझे फल, मिठाइयां और मेवा खिला रहे थे। इसलिए मुझे कुछ खरीदकर खाने की जरूरत ही नहीं हुई। आखिर जब गाड़ी आई तो स्टेशन पर केवल स्टेशन-मास्टर और मैं ही खड़े थे। स्टेशन-मास्टर ने महात्मा गांधी से कहा, ‘आपके दर्शन के लिए बहुत लोग आए और चले गए, किंतु यह लड़का कहीं नहीं गया। सुबह से आपकी गाड़ी का इंतजार कर रहा है।’ महात्मा गांधी ने मुझे अपने पास बुलाया और मुझे देखा। तब उनकी नजर मेरी जेब पर पड़ी और मुझ से पूछा, ‘इस में क्या है?’ मैंने कहा, ‘तीन रुपये।’ इस पर तुरंत उन्होंने मुझसे कहा, ‘इनको दान कर दो।’ उनके पास एक दान-पेटी होती थी, जिसमें सुराख बना हुआ था। मैंने उनसे पूछा कि ये रुपये आप किस लिए इकट्ठे कर रहे हैं? उन्होंने कहा, ‘गरीबों के लिए।’ तब मैंने उन तीन रुपयों को उस पेटी में डाल दिया, और उस पेटी को उठाकर चल पड़ा। उन्होंने कहा, ‘अरे! यह तुम क्या कर रहे हो? यह तो गरीबों के लिए है!’ मैंने उत्तर दिया, ‘मैं भी तो गरीबों के लिए ही ले जा रहा हूं।

मेरे गांव में बहुत से गरीब हैं।’ उन्होंने असहाय दृष्टि से अपने सेक्रेटरी और अपनी पत्नी की ओर देखा। कस्तूरबा ने उनसे कहा, ‘अच्छा हुआ! अब आपको अपने बराबरी का व्यक्ति मिला!’ परंतु मुझे उन पर दया आ गई और मैंने उस पेटी को वहीं पर छोड़ते हुए कहा, ‘आप सबसे गरीब मालूम होते हैं। मैं तो आया था एक महात्मा के दर्शन करने, और मुझे मिला एक बनिया!’

मैं महात्मा गांधी के विचारों से बिल्कुल सहमत नहीं हूं और मैंने सदा उनकी आलोचना की है। परंतु जब वे मारे गए, तो मैं सत्रह साल का था और मेरे पिता ने मुझे रोते हुए देख लिया। उन्हें बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने कहा, ‘तुम महात्मा गांधी के लिए रो रहे हो? तुमने तो सदा उनकी आलोचना की है।’ मेरा सारा परिवार गांधी-भक्त था, केवल मैं ही इसका अपवाद था। मैंने रोते हुए पिताजी से कहा, ‘मुझे अभी गाड़ी पकड़नी है, क्योंकि मुझे उनकी शव-यात्रा में शामिल होना है।’ पिताजी तो भौंचक्के रह गए। उन्होंने कहा, ‘तुम पागल तो नहीं हो गए?’ मैं उसी समय दिल्ली के लिए रवाना हो गया और जब दिल्ली स्टेशन पर मेरी गाड़ी रुकी तो प्लेटफार्म पर मस्तो मेरा इंतजार कर रहा था! उसने कहा, ‘मुझे मालूम था कि तुम आओगे। गांधी की आलोचना करने के बावजूद तुम्हारे भीतर उनके लिए आदर भी है। इसलिए मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे मालूम था कि केवल यही गाड़ी तुम्हारे गांव से होकर यहां आती है और तुम इसी गाड़ी से आ सकते हो।’

यद्यपि महात्मा गांधी के जीवन संबंधी विचार मुझे नापसंद हैं, तथापि उनकी कुछ एक विशेषताओं की मैं सराहना भी करता हूं। मुझे उनकी सच्चाई बहुत पसंद है। उन्होंने कभी झूठ नहीं बोला। वे चारों ओर झूठ से घिरे हुए थे फिर भी वे सच पर अडिग रहे। उन्होंने जिसको सच माना, फिर उसे नहीं छोड़ा। मैं उनकी इस सच्चाई का अवश्य आदर करता हूं-यद्यपि उनको उस सत्य के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था जिसकी चर्चा मैं करता हूं। उनको ध्यान के बारे में कुछ नहीं मालूम था और न वे उसे समझ सकते थे। इसमें उनका दोष नहीं था। उनको अपने जीवन में कोई ऐसा गुरु नहीं मिला जो उनको निर्विचार मन या शून्यमन के बारे में बताता। उस समय भी ऐसे लोग उपस्थित थे। मेहरबाबा की ओर से किसी ने गांधी को पत्र लिखा था। मेहरबाबा तो सदा मौन रहते थे, किंतु इशारों से अपनी बात समझाते थे। मेहरबाबा ने अपने पत्र में गांधी से कहा था कि ‘हरे राम, हरे कृष्ण’ बोलने से कोई लाभ नहीं होगा। अगर तुम सचमुच कुछ जानना चाहते हो तो, मुझसे पूछो और मैं तुम्हें बताऊंगा। परंतु गांधी और उनके अनुयायी मेहरबाबा के इस पत्र पर बहुत हंसे, क्योंकि उन्होंने इसे मेहरबाबा का अहंकार समझा। यह अहंकार नहीं उनकी करुणा थी। किंतु लोग प्रायः इस करुणा को अहंकार ही समझते हैं। गांधी ने मेहरबाबा को तार से धन्यवाद देते हुए उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं तो अपने ही रास्ते पर चलूंगा। उन्हें तो कोई रास्ता मालूम नहीं था, फिर चलने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

परंतु गांधी की कुछ बातें मुझे बहुत प्रिय हैं। जैसे-उनकी स्वच्छता और सफाई। फिर उनका समस्त धर्मों के प्रति आदर भाव। इतनी बुद्धि तो उनमें थी, कि वे समझ सके कि गीता, कुरान, बाइबल और तालमुद सब एक ही बात कहते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक बार तो गांधी भी ईसाई बनने का विचार कर रहे थे, क्योंकि यही एक ऐसा धर्म है जो गरीबों की बहुत सेवा करता है, परंतु जल्दी ही उनकी समझ में यह आ गया कि इनकी सेवा का उद्देश्य है, लोगों कोईसाई बनाना-सेवा के बहाने ये धर्म परिवर्तन करते हैं। मैं कह चुका हूं कि गांधी थे तो बुद्धिमान इसलिए व ईसाइयों के सेवाभाव के वास्तविक कारण को समझ गए और उन्होंने ईसाई बनने का विचार छोड़ दिया। भारत में ईसाई केवल एक प्रतिशत हैं इसलिए वे कोई राजनीतिक शक्ति नहीं बन सकते। हिंदू बने रहना ही अधिक लाभदायक था। किंतु वे सी.एफ.एंड्रु जैसे ईसाइयों को, बौद्धों और जैनों को और फ्रंटीयर-गांधी जैसे मुसलमानों को भी प्रभावित कर

सके। सीमांत गांधी पख्तून जाति का था, जो भारत के सीमांत प्रदेश में रहती है। ये लोग मुसलमान हैं और जब उनका नेता गांधी का अनुयायी बन गया, तो वे लोग बहुत नाराज हो गए। गांधी ने पहले जैन बनने के बारे में भी सोचा था। उनका पहला गुरु जैन ही था जिसका नाम था श्रीमद राजचंद्र।

उनका दूसरा गुरु था रस्किन। रस्किन की एक पुस्तक थी ‘अनटू दिस लास्ट’। इसने गांधी के जीवन को ही परिवर्तित कर दिया था। यह एक छोटी सी पुस्तिका है। जब गांधी एक यात्रा पर जा रहे थे तो उनके एक मित्र ने उनको यह पुस्तिका दी। रास्ते में सफर करते समय उन्होंने इसे पढ़ा और उनको यह बहुत पसंद आई और इस पुस्तिका ने उनके जीवन को ही बदल दिया। उनकी फिलोसोफी इसी पुस्तिका पर आधारित है। मैं उनकी इस फिलोसोफी के विरुद्ध हूं किंतु यह पुस्तक महान है। अगर मैंने इस पुस्तक को पढ़ा होता तो मैं उस निष्कर्ष पर न पहुंचता जिस पर गांधी पहुंचे हैं।

उनकी तीसरी बात जो मुझे अच्छी लगती है वह है उनकी सादगी। वे बहुत ही सरल, स्पष्ट और संक्षिप्त लिखते थे। अपने वाक्य को सरल और संक्षिप्त बनानें में उन्हें घंटों लग जाते थे। वे जो भी सच मानते थे उसके अनुसार ही जीते थे और फिर इसका जो भी परिणाम होता था उसका सामना करते थे। मैं उनकी इस सच्चाई और ईमानदारी का आदर करता हूं। इस ईमानदारी के कारण ही उन्हें अपने जीवन से हाथ धोने पड़े। गांधी की हत्या के साथ भारत का समस्त अतीत खो गया, क्योंकि इसके पहले भारत में कभी किसी को गोली नहीं मारी गई थी, कभी किसी को सूली नहीं लगाई गई थी। महात्मा गांधी के साथ भारत का एक अध्याय समाप्त होता है और नया अध्याय आरंभ होता है, मैं इसलिए नहीं रोया कि वे मर गए। एक दिन तो सभी को मरना ही है। इसमें रोने की कोई बात नहीं है। अस्पताल में बिस्तर पर मरने के बजाए गांधी की मौत मरना कहीं अच्छा है।

मेरा और गांधी का संबंध बहुत ही जटिल है। गांधी की कुछ बातें मुझे प्रिय थीं, किंतु कुछ बातें ऐसी थीं जिनके दूरगामी परिणाम अच्छे नहीं थे, इन बातों के कारण मैंने उनका विरोध किया। अगर वे विज्ञान, टेक्नोलॉजी, प्रगति और संपन्नता के विरुद्ध न होते, तो मैं उनको बहुत पसंद करता। वे तो उन सब चीजों के विरोध में थे जिनको मैं देश की प्रगति के लिए आवश्यक मानता था। मुझे गरीबी पसंद नहीं थी। उनको थी। उनकी कुछ विशेषताओं की प्रशंसा तो करनी ही पड़ेगी। वे लाखों-करोड़ों लोगों की नब्ज पहचानते थे। वे जनता के रुख को समझ सकते थे। दस वर्ष की आयु में जब मैं उनसे मिला था तो उनको मुझसे केवल तीन रुपये ही मिले थे। अगर आज मैं उनसे मिलता तो मैं उनके हाथ में स्वर्ग ही रख देता, किंतु ऐसा उनके जीवन में होने वाला नहीं था।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(33)

हां! तो मैं यह कह रहा था कि प्राइमरी स्कूल में मेरा दूसरा दिन महत्त्वपूर्ण था। क्योंकि काने मास्टर को निकाल दिया गया था इसलिए सब लोग खुशी मना रहे थे। सब बच्चे नाच रहे थे और वे मुझे इस प्रकार देख रहे थे जैसे कि मैंने कोई महान कार्य किया हो। मुझे उसके लिए थोड़ी सहानुभूति भी हो रही थी। वह कितना ही बुरा था, हिंसक था किंतु था तो मनुष्य ही। उसकी क्रूरता के लिए भी मैं उसे दोषी नहीं ठहरा सकता क्योंकि उसकी वह क्रूरता स्वाभाविक थी। उसकी एक आंख थी और चेहरा भी बहुत कुरूप था। उसका क्रोध भी उसके वश में नहीं था। छोटी-छोटी बात पर वह क्रोधित हो जाता था। अगर बच्चे चुपचाप बैठते तो भी वह भड़क जाता और पूछता ‘इतनी चुप्पी क्यों! क्या तुम लोग मेरे विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे हो? मैं तुम सबको ऐसा सबक सिखाऊंगा कि तुम जीवन भर याद रखोगे।’ वास्तव में वह रुग्णचित्त

वाला था इसलिए उसका मानसिक इलाज होना चाहिए था। मुझे इस बात का बहुत अफसोस था मेरे कारण उसकी नौकरी छूट गई।

इससे पहले काने मास्टर को कोई हटा नहीं सका था क्योंकि उस शहर का सभापति उसके हाथ में था। इस सभापति ने शहर के लिए कभी कुछ नहीं किया था। बीस हजार जनसंख्या लोगों के शहर में न सड़कें थीं; न बिजली थी, न बगीचे ही थे। इसलिए उसे अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और तब उपसभापति, शंभु दुबे ने उसका पद ग्रहण कर लिया। उन्होंने कुछ ही समय में उस शहर को बहुत सुंदर बना दिया। शंभुबाबू कई वर्षों तक सभापति पद पर रहे। लोगों ने उनके काम को देखकर उन्हें बार-बार निर्वाचित किया। उन्होंने पक्की सड़कें बनवाई। सड़कों के दोनों और पेड़ लगाएं और शहर में बिजली लाए। इसमें कोई संदेह नहीं कि उस शहर के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया परंतु फिर भी कभी-कभी मैं उनकी नीतियों से सहमत नहीं होता था इसलिए मुझे उनका विरोध भी करना पड़ता था। उस समय मैं केवल बारह वर्ष का था किंतु बहुत आसानी से मैं लोगों को अपने साथ सहमत कर लेता था। उदाहरण के लिए-शंभुबाबू ने चुंगी-कर लगा दिया। मुझे मालूम था कि इसके बिना शहर के रख-रखाव का खर्च नहीं चल सकता था परंतु मैं इस चुंगी-कर के विरोध में था क्योंकि मुझे मालूम था कि इससे गरीबों को बहुत परेशानी होगी। इसलिए मैंने उनसे कहा कि मैं घर-घर जाकर कहूंगा कि शंभुबाबू को वोट मत दो। अगर शंभुबाबू रहते हैं तो उन्हें इस चुंगी-कर को हटाना पड़ेगा और अगर चुंगी-कर रहता है तो शंभुबाबू को हटना पड़ेगा। तो मैंने ऐसा ही किया, घर-घर तो गया ही इसके अतिरिक्त मैंने एक सार्वजनिक सभा को भी संबोधित किया। लोगों को यह देखकर बड़ा मजा आया कि एक छोटा सा लड़का इतना तर्कपूर्ण बोल रहा है। शंभुबाबू उस समय नजदीक ही एक दुकान में बैठे हुए मेरा भाषण सुन रहे थे। वहां पर वे रोज बैठते थे। वह दुकान शहर के बीचोंबीच थी इसलिए सब मीटिंगें उसी स्थान पर होती थीं। वे उस दुकान में बैठने के बहाने यह देखते रहते कि मीटिंग में क्या हो रहा है। उन्होंने मुझे भी बोलते हुए सुना। मैंने जब उनको उस दुकान पर बैठे हुए देखा तो मैंने कहा, ‘यह देखो! ये वहां पर बैठे हैं, ये मुझे सुनने आए हैं कि मैं क्या कहता हूं किंतु सुनिए शंभुबाबू! मित्रता अलग बात है और चुंगी-कर बिल्कुल अलग। मैं चुंगी-कर का विरोध अवश्य करूंगा-भले ही इसके कारण आपसे मेरी मित्रता टूट जाए। तब मैं समझूंगा कि इस मित्रता का कोईमहत्त्व नहीं था। बहुत से सार्वजनिक मुद्दों पर एकमत न होते हुए भी अगर हमारी मित्रता बनी रहे तो ही हमारी मित्रता का कोई मूल्य है।’

शंभुबाबू सचमुच बहुत अच्छे आदमी थे। वे दुकान से बाहर आए और मेरी पीठ को थपथपाते हुए उन्होंने कहा, ‘तुम्हारे तर्कों पर अवश्य विचार किया जाएगा और हमारी मित्रता पर इस विरोध का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।’ इसके बाद उन्होंने दोबारा इस विषय पर बात नहीं की। मेरा ख्याल था कि वे एक न एक दिन जरूर कहेंगे कि ‘तुम तो मेरी कड़ी आलोचना कर रहे थे यह तुमने ठीक नहीं किया। परंतु उन्होंने इसका कभी जिक्र नहीं किया और बाद में उन्होंने उस चुंगी-कर को भी हटा दिया, मैंने उनसे पूछा कि ‘ऐसा आपने क्यों किया? मेरा विरोध तोमहत्त्वपूर्ण नहीं है, मैं तो वोट भी नहीं दे सकता।’ उन्होंने कहा कि ‘मुझे इतना मालूम है कि अगर तुम इसका विरोध कर रहे हो तो इसका मतलब है कि मैं जो कर रहा हूं वह अवश्य गलत है। मैं लोगों से नहीं डरता। तुम उम्र में छोटे तो हो किंतु मैं तुम्हारा आदर करता हूं। तुम्हारा तर्क बिल्कुल ठीक था कि हर प्रकार का कर गरीब आदमी को ही प्रभावित करता है-अमीर तो अपनी चालाकी से उससे बच जाता है। शहर के भीतर आने वाली हर चीज पर चुंगी-कर लगाया जाता है और जब ये चीजें बेची जाती हैं तो दुकानदार उनको अधिक कीमत पर बेचता है।’ शंभुबाबू ने कहा, ‘मैं तुम्हारी इस बात को समझ गया हूं इसलिए मैंने इस कर को हटा दिया है।’ मेरे इस विरोध के कारण शंभुबाबू मुझसे नाराज नहीं

हुए। इससे मेरे प्रति उनका आदर और भी बढ़ गया। मुझे थोड़ा सा बुरा लगा कि उस शहर में मैं जिस व्यक्ति को सबसे अधिक चाहता था, उसी का मुझे विरोध करना पड़ा। मेरे पिताजी को भी यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने मुझसे कहा, ‘तुम तो अजीब हरकतें करते हो। तुम शंभुबाबू के विरोध में भाषण दे रहे थे। यह देखकर सबको आश्चर्य हो रहा था।’ सारे शहर को मालूम था कि शंभुबाबू के सिवाय मेरा और कोई मित्र न था। उनका भी और कोई नहीं था। हम दोनों की आयु में बहुत अंतर था किंतु हमको इसका ख्याल कभी नहीं आया। पिताजी ने मुझसे कहा, ‘मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा कि तुम उनके विरुद्ध बोल सकते हो।’ मैंने कहा, ‘मैं तो केवल उस चुंगी-कर का विरोध कर रहा था। चुंगी-कर से मेरी मित्रता का कोई संबंध नहीं है और शंभुबाबू से मैंने पहले से ही कह रखा है कि अगर मुझे उनकी कोई बात पसंद न आई तो मैं। उनसे भी लडूंगा।

उस प्राइमरी स्कूल में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं थी इसलिए नब्बे प्रतिशत तो मैं गैर हाजिर रहता था, और कभी-कभी वहां दिखाई देता था।

स्कूल के बाहर मैं अजीब-अजीब तों सीख रहा था। मेरे शौक भी विचित्र थे। मैं सांप को पकड़ना सीख रहा था। उन दिनों संपेरे गांव में बहुत सुंदर-सुंदर सांप लेकर आते थे और जब वे बीन बजाते थे तो ये सांप नाचने लगते थे। यह देखकर मुझे बहुत ही मजा आता था। इस दृश्य से मैं बहुत ही प्रभावित था। मैं दिनभर किसी न किसी संपेरे के पीछे घूमता रहता और उससे कहता कि मुझे बताओ कि तुम सांप कैसे पकड़ते हो? बाद में धीरे-धीरे उन्होंने इस रहस्य को समझाया। हां! मैंने भी उनको यह धमकी दी थी कि अगर तुम मुझे यह नहीं बताओगे तो मैं अपने आप ही सांप को पकड़ने की कोशिश करूंगा और अगर मैं मर गया तो मेरी मृत्यु के लिए तुम लोग जिम्मेदार होओगे। इससे एक संपेरा डर गया और उसने वायदा किया कि वह मुझे सिखायेगा। वह मुझे शहर से बाहर ले गया और मुझे सांप पकड़ना सिखाने लगा। प्रायः सब लोग यह समझते हैं कि बीन को सुनकर सांप मस्त होकर नाचने लगता है। लेकिन पहली बार मुझे इस संपेरे न बताया कि सांप के तो कान ही नहीं होते और वह सुन नहीं सकता। इस पर मैंने उससे यही पूछा कि ‘अगर सांप सुन नहीं सकता तो तुम्हारे बीन बजाने पर वह डोलने क्यों लगता है?’ उसने उत्तर दिया, ‘ऐसा करने के लिए सांप को प्रशिक्षित किया जाता है। जब मैं बीन बजाता हूं तो मैं अपने सिर को डूलाता हूं। यह देखकर सांप भी डोलने लगता है। यही हमारी चालाकी है। जब तक वह डोलेगा नहीं तब तक उसे भूखा रहना पड़ेगा। इसलिए उसके डोलने का कारण बीन नहीं बल्कि भूख है।’ बस तो मैंने इन संपेरों से सीख लिया कि सांप को कैसे पकड़ा जाता है। सत्तनबे प्रतिशत सांप तो जहरीले नहीं होते। उनको आसानी से पकड़ा जा सकता है। पकड़ने के समय वे काटते तो हैं किंतु उनके काटने से कोई मरता नहीं है क्योंकि उनमें जहर ही नहीं होता। तीन प्रतिशत सांप जो विषैले हैं उनकी आदत यह है कि वे उतना गहरा ही काटते हैं जितना उनके विष को रखने के लिए जरूरी होता है-काटने के बाद वे उलट जाते हैं। विषैली ग्रंथि उनके गले के भीतर उलटी होती है। इसलिए पहले वे घाव बनाते हैं, फिर उलटा होकर अपना विष उगलते हैं। उनके घाव बनाने से पहले ही उनको पकड़ा जा सकता है। किंतु सबसे बढ़िया तरीका यही है कि उनके मुंह को बहुत जोर से पकड़ा जाए, सबसे पहले उनके मुंह को ही जोर से पकड़ना चाहिए। अगर इसमें जरा सी भी ढील हुई तो वे घाव बना देंगे किंतु इससे भी घबराना नहीं चाहिए-उसको इतना कसकर पकड़ना चाहिए कि वह उलट न सके। इस घाव से कोई नुकसान नहीं होता। इससे कोई नहीं मरता। थोड़े ही दिन में यह घाव ठीक हो जाता है। बस यही मैं सीख रहा था। ये सब संपेरे मुसलमान थे और दुर्भाग्य से इन सबको भारत छोड़ कर जाना पड़ा। फिर कुछ जादूगर थे जो आश्चर्यजनक खेल दिखाते थे। मुझे स्कूल में इतिहास और भूगोल पढ़ाने वाले अध्यापक के पाठ से कहीं अधिक दिलचस्पी थी इन जादूगरों में। बस मैं तो इनके लिए दीवाना हो गया और दिनभर इनके पीछे लगा रहता।

जब तक वे मुझे उस जादू का रहस्य न बता देते मैं उनका पीछा न छोड़ता और मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका जादू वास्तव में केवल हाथ की सफाई या हाथ की चालाकी थी। एक बार उस चालाकी का पता लग जाने के बाद उसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं था। ये सब बातें बाद में मेरे काम आने वाली थीं। इसलिए आज मैं यह कह सकता हूं कि सत्य साईबाबा जैसे लोग बहुत ही साधारण जादूगर हैं। किंतु ये जादूगर भी अब भारत में नहीं रहे क्योंकि ये भी मुसलमान थे। इन सब बातों को मैंने स्कूल के बाहर ही सीखा। मैं जैन मुनियों, हिंदू साधुओं, और बौद्ध भिक्षुओं के साथ भी रहा। मैंने ऐसे लोगों के साथ संपर्क रखा जिनसे लोग दूर रहते हैं। जैसे ही मुझे पता लगता कि कोई व्यक्ति समाज के बाहर का है या उससे मिलना वर्जित है, मैं उससे मिलने के लिए उत्सुक हो जाता। ये वर्जित लोग कुछ सनकी जरूर होते थे किंतु थे ये बहुत प्रतिभाशाली।

हां। तो मैं यह कह रहा था कि मैं अपने प्राइमरी स्कूल में कभी-कभार ही जाता था। मेरे न जाने से स्कूल के सब लोगों को बड़ी राहत मिलती थी। परंतु कभी-कभी जब मैं उनको कोई विशेष चीज दिखाना चाहता तो मैं वहां चला जाता। मैंने तब सांप पकड़ना नया-नया ही सीखा था। सांप बेचारे तो बहुत ही सीधे-सादे, सुंदर और अत्यंत जीवंत होते हैं। मेरी इस बात पर आपको तभी विश्वास हो सकता है अगर आपने कभी दो सांपों को प्रेम करते हुए देखा हो। उस समय वे ज्वाला की लपटों जैसे होते हैं। प्रेम करते समय एक-दूसरे का चुंबन लेने के लिए वे अपनी पूंछ पर सीधे खड़े हो जाते हैं-जी हां! उनमें हड्डी तो होती नहीं-फिर भी वे अपनी पूंछ पर सीधे खड़े हो जाते हैं। यह दृश्य देखने योग्य होता है। कुछ सांप तो बिल्कुल जहरीले नहीं होते। पानी में रहने वाले सांप तो मछली जैसे होते हैं-मछली उससे अधिक चालाक होती है। तो मैंने उस दिन एक सांप पकड़ा और सोचा कि अब स्कूल जाना चाहिए। नहीं तो मैं अपनी दुनिया में इतना व्यस्त रहता था कि स्कूल जाने का समय ही नहीं मिलता था। भूगोल के नक्शों और अन्य विषयों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैंने देख लिया था कि इस पृथ्वी पर तो कोई रेखा नहीं और ये सब काल्पनिक रेखाएं राजनीतिज्ञों द्वारा बनाई गई हैं। जिला, प्रदेश, देश और राष्ट्रों का विभाजन इन लोगों ने ही किया है। मैं भूगोल पढ़ने में समय बर्बाद नहीं करना चाहता था। मैं तो सच्चे भूगोल से परिचित हो रहा था-मैं तो कई-कई दिनों के लिए पहाड़ों में गायब हो जाता था। केवल मेरी नानी को मालूम होता था कि मैं वहां से कब आऊंगा।

हां! तो मैंने पहली बार सांप पकड़ा था तो इसलिए उसे दिखाने के लिए मैं तुरंत स्कूल पहुंचना चाहता था। मैंने यूनिफार्म भी न पहना। यूं भी यूनिफार्म मैं नहीं पहनता था। स्कूल ने मुझे एक यूनिफार्म यह कह कर दे रखा था कि जिस दिन स्कूल का निरीक्षक निरीक्षण करने आए उस दिन इसे पहन कर आना। जो सांप मैंने पकड़ा था, बहुत सुंदर था, उसे छूने से ही मुझे रोमांच होता था। उस सांप को पकड़ने में मैंने अपनी सारी बुद्धि लगा दी थी। जो आदमी सांप पकड़ना सिखा रहा था वह साधारण मदारी था। उसने मुझे बताया था कि ‘ऐसे सांपों को नहीं पकड़ना चाहिए क्योंकि ये बहुत खतरनाक होते हैं।’ मैंने उससे कहा, ‘मैं तो इन्हीं सांपों को पकडूंगा।’ ऐसा जीवंत, ऐसा सुंदर, रंगीन सांप मैंने कभी नहीं देखा था। तब मैं छोटा सा लड़का था। मैं जल्दी से जल्दी स्कूल पहुंचकर इस सांप को दिखाना चाहता था। बस फिर क्या हुआ; मेरा क्लासरूम ठसाठस भरा हुआ था, कुछ लोग बाहर बरामदे में खड़े होकर दरवाजों और खिड़कियों में से झांक रहे थे। कुछ एक डर के मारे और भी दूर खड़े हुए थे कि कहीं सांप बाहर न निकल जाए। और मेरी क्लास के तीस-चालीस लड़के तो डर के मारे चीख रहे थे, चिल्ला रहे थे और यह देख कर मुझे बड़ा मजा आ रहा था। मेरा अध्यापक तो कुर्सी के ऊपर खड़े होकर चिल्ला रहा था-‘अरे! तुम जाओ-यहां से जाओ। हमें छोड़ दो।’ वह सांप छह या सात फीट लंबा था और मैं उसे एक झोले में डालकर-उस झोले को घसीटते हुए लाया

था। एकाएक जब मैंने उसे खोला तो तूफान आ गया। अध्यापक तो भाग कर कुर्सी पर खड़ा हो गया। बच्चे पहले तो नहीं डरे लेकिन जब उन्होंने अध्यापक को डरा हुआ देखा तो वे भी डर गए। एकक्षण के लिए सन्नाटा छा गया। केवल वह अध्यापक ही चिल्ला रहा था ‘बचाओ! बचाओ।’ मेरे विश्वविद्यालय छोड़ने के कई वर्षों बाद एक दिन इस अध्यापक से मेरी भेंट हुई तो उसने कहा कि मुझे विश्वास नहीं होता कि स्कूल का वह शैतान बच्चा अब बुद्ध बन गया है।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(34)

मैं अपनी प्राइमरी स्कूल की बात की रहा था। मैं वहां कभी-कभार ही जाता था। मेरे न जाने से स्कूल के सब लोगों को बड़ी राहत मिलती थी और मैं भी उन्हें कोई तकलीफ नहीं देना चाहता था। मैं तो उनको शत-प्रतिशत राहत देना चाहता था। क्योंकि मुझे भी उनसे बहुत प्रेम था- मेरा मतलब है लोगों से, वहां के अध्यापकों से, अन्य नौकरों से तथा मालियों से। कभी-कभी मैं उनसे मिलना चाहता था, खासकर तब जब मैं कोई विशेष चीज दिखाना चाहता तो मैं वहां चला जाता। एक छोटा लड़का चाहता है ि कवह अपनी खास-खास चीजें अपने प्रियनों को दिखाए। किंतु ये चीजें खतरनाक भी होती थीं। अभी भी मुझे यह याद करके बहुत हंसी आती है।

उस दिन की याद मेरे मन में बिल्कुल ताजा है। वह याद इस क्षण की ही प्रतिक्षा कर रही थी। शायद अब वह क्षण आ गया तब दूसरों के साथ इस अनुभव के मजे को बांटा जा सकता है। यह घटनाओं की एक शृंखला है--...

मैंने तब सांप पकड़ना नया-नया सीखा था। सांप बेचारे तो बहुत ही साधे-सादे, सुंदर और अंत्यंत जीवंत होते हैं। मेरी इस बात पर आपको तभी विश्वास हो सकता है अगर आपने कभी दो सांपों को प्रेम में देखा हो। तुम शायद सोचो कि सांप कैसे प्रेम करते हैं। मनुष्य की तरह वे प्रेम को आयोजित नहीं करते-उनका प्रेम जब घट जाए तब घट जाए। और जब वे प्रेम में होते हैं तो उस समय वे ज्वाला की लपटों जैसे होते हैं। और मैं जिस कारण से यह कह रहा हूं वह आश्यर्च भरा है। क्योंकि उनमें हड्डी तो होती नहीं फिर भ्ी एक-दूसरे का चुंभन लेने के लिए वे सीधे खड़े हो जाते हैं। किस पर खड़े होते हैं? उनके पैर भी नहीं होते, वे अपनी पूंछ पर सीधे खड़े हो जाते हैं। अगर तुम दो सांपों को अपनी पूंछ पर खड़े एक-दसरे को चुंभन करते देख लो तो तुम फिर कभी कोई हालीवुड फिल्म देखने की चिंता न करोगे।

मैंने अभी-अभी सांपों को पकड़ना सीखा ही था और मुझे जहरीले और बिना जहर वाले सांप की पहचान भी हो गयी थी। कुछ सांप तोबिल्कुल जहरीले नहीं होते, उन्हें तो तुम एक तरह की मछली ही कह सकते हो। पानी में रहने वाले सांप तो बहुत ही सीधे-सादे होते हैं-मछली भी उससे अधिक चालाक होती है। पानी के सांप चालाक नहीं होते, मैंने सब तरह के सांपों को पकड़ा हैं इसलिए जब मैं कहता हूं तो यह सुनी-सुनाई बात नहीं है-मैं अपने अनुभव के अधार पर कर रहा हूं।

तो मैंने उस दिन एक सांप पकड़ा। जब स्कूल जाने के लिए यह सही दिन था। अजीब बात है... ! अन्यथा तो मैं अपनी दुनिया में इतना व्यस्त रहता था कि मूर्खतापूर्ण प्रश्न और उत्तर और फालतू के नक्शों में समय खराब करने का समय ही न था। तब भी मैं देख सकता था कि सारे नक्शे मूर्खतापूर्ण हैं क्योंकि जमीन पर तो कोई विभाजन रेखाएं नहीं हैं, जिले का नगरपालिका की। तो सारे देश बेकार की बकवास है। सब गोबर के हैं और वह भी पवित्र गोबर नहीं- अपवित्र गोबर, अनहोली काऊ डंग। इस जैसा अगर

कुछ भी है तो वह है राजनीति-अपवित्र और गोबर, दोनों साथ-साथ। ये सब काल्पनिक रेखाएं राजनीतिज्ञों द्वारा बनाई गई हैं।

मैं भूगोल पढ़ने में समय बरबाद नहीं करना चाहता था। मैं तो सच्चे भूगोल से परिचित हो रहा था- मैं तो कई-कई दिनों के लिए पहाड़ों में गायब हो जाता था। केवल मेरी नानी को मालूम होता था कि मैं वहां से कब आऊंगा। कई दिनों तक न तो मैं दिखाई देता, न सुनाई देता क्योंकि मैं वहां होता ही नहीं था। इससे शायद सिवाय मेरी नानी के बाकी सारे लोग बहुत खुश हो जाते, उनकी यह खुशी उचित ही थी। उनकी इस खुशी का कारण तुम्हें बाद में मालूम हो जाएगा।

तो मैंने पहली बार सांप पकड़ा था, मेरी पहली सफलता थी। स्वाभावतः मैं तुरंत स्कूल पहुंचना चाहता था। मैंने यूनिफार्म पहनने की चिंता नहीं की। और किसी के अपेक्षा भी नहीं हो सकती थी। प्राइमरी स्कूल में ही मैं यूनिफार्म नहीं पहनता था। मैंने कहा था कि मैं यहां पर सीखने आया हूं, पढ़ने आया हूं, नष्ट या बरबाद होने के लिए नहीं आया हूं। मगर मैं कुछ सीख सकूं अच्छी बात है। लेकिन मैं आप लोगों को मुझे नष्ट नहीं करना दूंगा। और यूनिफार्म आपने चुना है किंतु आप लोगों को तो आकार और सौंदर्य की काई जानकारी नहीं है, कोई पहचान नहीं है। मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। अगर आपने यूनिफार्म पहनाने की मुझसे कोई जबरदस्ती की तो मैं भी आपके लिए मुसीबत खड़ी कर दूंगा।

उन्होंने कहा: ‘यूनिफार्म बनवा कर तैयार रखो। जब स्कूल का इंस्पेक्टर निरीक्षण करने आए उस दिन उसे पहन कर आना। उस समय भी अगर तुम नहीं पहनोगे तो हम मुसीबत में पड़ जाएंगे। हम तुम्हें मुसीबत में नहीं डालना चाहते क्योंकि हम अपने लिए मुसीबत नहीं लेना चाहते। यह महंगा सौदा है।’

मेरे अध्यापक ने कहा: ‘तुम्हारे लिए मुसीबत खड़ी करना... हमें मालूम है कि काने मास्टर के साथ क्या हुआ था। ऐसा देसरों के साथ भी हो सकता है। परंतु हम पर इतनी मेहरबानी करो कि एक यूनिफार्म बनवा कर तैयार रखो।’

और तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि मेरे स्कूल ने मेरा यूनिफार्म बनवाया। मुझे नहीं मालूम कि उसके पैसे किसने दिए। और न ही उसकी मुझे चिंता है। मैंने उसे अपने पास रख लिया। मुझे अच्छी तरह से मालूम था कि यह संयोग बिल्कुल असंभव है कि जिस दिन मैं स्कूल जाऊं उसी दिन इंस्पेक्टर भी वहां आए। यह संभव न था, ऐसा मैंने सोचा था, किंतु फिर भी मैंने वह यूनिफार्म रख लिया। देखने में वह सुंदर थाः उन्होंने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की थी और उसे पहनने के लिए अब वे लोग मेरे साथ कोई जबरदस्ती नहीं कर रह थे।

तो मैं सदा परदेशी ही रहा। अभी भी मेरे अपने लोगों के बीच भी तो मैं यूनिफार्म नहीं पहन रहा- मैं पहन ही नहीं सकता। उस यूनिफार्म को भी मैं नहीं पहन सकता जो मैंने स्वयं तुम लोगों के लिए चुना है। क्यों? उस दिन भी तो यही प्रश्न था। आज भी वही प्रश्न सामने है। मैं दूसरों के अनुरूप नहीं चल सकता, तुम इस मेरी सनक समझ सकते हो, पर यह मेरी सनक नहीं है। यह तो अस्तित्वगत बात है। किंतु अभी हम उसकी चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि फिर मैं जो तुम लोगों से बात कर रहा हूं वह छूट जाएगी और दुबारा मैं उस विषय को नहीं उठाऊंगा।

मैंने अपना पहला सांप पकड़ा था, यह बहुत खुशी, आनंद की बात थी और सांप बहुत सुदर था, उसे छूने से ही मुझे रोमांच होता था। इसे छूना वैसा नहीं था जैसा कि औपचारिकतावश- पति-पत्नी, बेटे या अपने दामाद को छूकर उन्हें आशीर्वाद तो दिया जाता है परंतु अपने भीतर उनके प्रति कोई भाव नहीं उठता। और अगर तुम अमरीका में हो तो जी चाहता है कि इस समय टी.वी देखना चाहिए और अगर तुम इंग्लैड में हो तो जी

चाहता है कि क्रिकेट मैच या फुटवाल मैच देखा जाए। अपने-अपने ढंग से सब लोग सनकी होते हैं।

वह सांप प्लास्टिक सांप नहीं था कि जिसे किसी दुकान से खरीद लिया गया हो। वह वास्तविक सांप था। प्लास्टिक का सांप भी वास्तविक दिखाई दे सकता है किंतु वह श्वास तो नहीं ले सकता, वह बेजान होता है। वही तो एक समस्या होती है, अन्यथा तो वह बढ़िया होता है। परमात्मा भी उससे अच्छा न बना पाता। सिर्फ एक बात नहीं होता- श्वास। और सिर्फ एक चीज के लिए क्या शिकायत करनी? लेकिन वह एक बात ही तो सब कुछ है, वही तो विशेषता है। मैंने तो एक वास्तविक सांप पकड़ा था जो बहुत सुंदर और बहुत चालाक था। इसलिए उसे पकड़ने के लिए मुझे बहुत सोच-समझ से काम लेना पड़ा क्योंकि मैं उसे मारना नहीं चाहता था।

जो आदमी मुझे सांप पकड़ना सिखा रहा था वह साधरण सड़क पर जादू दिखाने वाला जादूगर था और भारत में उसको मदारी कहा जाता है। ये लोग सड़कों पर मुफ्त में ही अपने जादू के खेल दिखाया करते हैं और अंत में देखने वाले खुश होकर अपनी इच्छानुसार थोड़े बहुत पैसे दे देते हैं। खेल के अंत में मदारी अपने रूमाल को जमीन पर बिछा कर कहता है, अब मेरे पेट के लिए मुझे कुछ मिलना चाहिए। देखने वाला कितना ही गरीब क्यों न हो, इस खेल से खुश होकर कुछ न कुछ तो दे ही देता है।

तो यह मदारी साधारण सा जादूगर था। पश्चिम में इस प्रकार के मदारी नहीं होते। पश्चिम में सड़क पर भीड़ जमा हो ही नहीं सकती, तुरंत ही पुलिस की कार आकर कहेगी कि तुम टै्रफिक जाम कर रहे हो, और उन्हें भगा देगी।

भारत में तो टै्रफिक जाम का सवाल ही नहीं उठता; यातायात के कोई नियम ही नहीं हैं! तुम ठीक सड़क के बीच में चल सकते हो। शाब्दिक रूप् से तुम मज्झिम निकाय, मध्य मार्ग अपना सकते हो। तुम अमरीकी लोगों की तरह बिल्कुल दाईं ओर जा सकते हो या तुम चाहो तोबिल्कुल बाईं ओर भी चल सकते हो। बिल्कुल दाईं ओर चलना अमरीका का ढंग है और बिल्कुल बाईं ओर चलना रूस का ढंग है। भारत में तो तुम जो चाहो चुन सकते हो या इन दोनों के बीच कहीं भी चल सकते हो। सारी सड़क ही तुम्हारी है। तुम चाहो तो बीच सड़क पर अपना घर बना सकते हो। तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि भारत की सड़कों पर तो तुम जो चाहो वह कर सकते हो। जिसकी कल्पना की जा सकती है। या जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती वह भी वहां पर कर सकते हो।

इन मदारियों के तमाशे के कारण टै्रफिक जाम हो रहा था। किंतु उन्हें कौन मना करता? क्योंकि वहां खड़ा सिपाही भी उस तमाशे का मजा ले रहा था। वह भी दूसरे लोगों के साथ बीच-बीच में ताली बजा रहा था। उस तमाशे को देखने के लिए सभी प्रकार के लोगों की भीड़ मजा हो जाती थी और सारी सड़क को जाम कर देते थे। अब इस प्रकार के मदारी पश्चिम मे तो नहीं रह सकते। वे बहुत ही प्यारे लोग हैं। बहुत सीधे-सादे और साधारण परंतु वे कुछ विशेष जानते थे।

वह आदमी जो मुझे सिखा रहा था, उसने मुझे बताया था कि ऐसे सांपों को नहीं पकड़ना चाहिए क्योंकि ये बहुत खतरनाक होते हैं।

मैंने उससे कहा: तुम्हारा काम तो पूरा हो गया। तुम अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो गये। मैं तो इन्हीं सांपों को पकडूंगा।’ ऐसा जीवंत, ऐसा सुंदर, रंगीन सांप मैंने कभी नहीं देखा था। मैं अपने आप को रोक न सका। तब मैं छोटा सा बच्चा था। मैं जल्दी से जल्दी स्कूल पहुंच कर इस सांप को दिखाना था। वहां जो हुआ वह मैं बताना नहीं चाह रहा था, पर मैं बताऊंगा, क्योंकि मैं उसे फिर से देख सकता हूं।

पूरा स्कूल, जितने लोग संभव थे उतने मेरे क्लास रूम में आ गए और बाकी लोग बाहर बरामदे में खड़े होकर दरवाजों और खिड़कियों में से झांक रहे थे। कुछ एक डर के मारे भी दूर खड़े हुए थे कि कहीं सांप बाहर न निकल जाए। और यह लड़का, पहले दिन से ही मुसीबत खड़ी करता रहा है। और मेरी क्लास के तीस-चालीस लड़के तो डर के मारे चीख रहे थे, चिल्ला रहे थे और यह देखकर मुझे बड़ा मजा आ रहा था।

यह जान कर तुम्हें भी मजा आएगा और मुझे तो भरोसा ही न आया, मेरे अध्यापक तो कुर्सी के ऊपर खड़े हो गए। आज भी मैं उन्हें कुर्सी पर खड़े होकर यह कहते देख सकता हूं कि अरे, तुम जाओ- यहां से जाओ। हमें अकेला छोड़ दो। यहां से चले जाओ।

मैंने उनसे कहा: ‘पहले आप नीचे उतरो।’

यह सुनते ही वे चुप हो गए, क्योंकि इतने बड़े सांप के होते नीचे उतरना बहुत मुश्किल था। वह सांप छः या सात फीट लंबा था और मैं उसे एक झोले में डालकर-उस झोले को घसीटते हुए लाया था ताकि मैं उसे सबके सामने अचानक खोल सकूं। एकाएक जब मैंने उसे खोला तो तूफान आ गया। अध्यापक तो जंप करके कुर्सी पर खड़े हो गये। मुझे अपनी आंखों पर भरोसा ही न था। मैंने कहा: यह आश्चर्य की बात है।

उन्होंने कहा: यह आश्चर्य की बात क्या है?

मैंने कहा: आपका इस तरह जंप करके कुर्सी पर खड़े हो जाना। आप उसे तोड़ दोगे।’

बच्चे पहले तो नहीं डरे लेकिन जब उन्होंने अध्यापक को इतना डरा हुआ देखा तो वे भी डर गये। देखते ही बच्चे कैसे मूर्ख और गलत लोगों से प्रभावित होते हैं। जब उन्होंने मुझे सांप के साथ अंदर आते देखा तो वे अल्हादित थे। ‘अलेलुइया!’ पर जब उन्होंने अध्यापक को कुर्सी पर खड़े देखा... एक क्षण के लिए बिल्कुल सन्नाटा छा गया। केवल वे अध्यापक ही चिल्ला रहे थे, ‘बचाओ! ब्चाओ! हमारी मदद करो!’

मैंने उनसे कहा: ‘मुझे समझ नहीं आ रहा, सांप तो मेरे हाथ में है। खतरा तो मुझे है। आपको तो कोई खतरा नहीं है। आप तो अपनी कुर्सी पर खड़े हैं। बेचारा सांप तो आपसे बहुत दूर है। अच्छा होता वह आपके नजदीक पहुंच जाता। और आपसे कुछ बात कर पाता।’

मैं तो अभी भी उन अध्यापक को और उनके सहमे हुए चेहरे को देख सकता हूं। इस अनुभव के बाद मुझे वे केवल एक बार ही मिले थे। तब तक मैं प्रोफेसर के पद को छोड़ चुका था और भिखारी बन चुका था। हालांकि मैंने कभी भीख नहीं मांगी। परंतु हूं तो मैं भिखारी ही- एक विशेष प्रकार का भिखारी जो भिक्षा नहीं मांगता। अब इसके लिए तुम्हें कोई खास खब्द खोजना पड़ेगा। मेरी स्थिति को ठीक अभिव्यक्ति करने वाला ते शायद कोई शब्द ही नहीं है-शायद किसी भी भाषा में नहीं है। इसका सीधा सा कारण है कि इससे पहले इस ढंग जीने वाला और कोई हुआ ही नहीं। न कभी कोई और ऐसा हुआ है, इस ढंग से हो रहा है कि अपने पास कुछ न होते हुए भी ऐसे रहता हो जैसे सारी दुनिया पर उसकी मालकियत हो।

मुझे याद है उन्होंने कहा था कि मैं वह दिन भूल नहीं सकता जब तुम सांप को लेकर क्लास में आए थे। मुझे तो अभी भी वह सपनों में दिखाई देता है। मैं तो विश्वास ही नहीं कर सकता कि स्कूल का वह शैतान लड़का अब बुद्ध बन गया है। यह असंभव है।

मैंने कहा ‘बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, वह लड़का तो मर गया है और उसकी मृत्यु के बाद जो बच गया उसे आप बुद्ध कह सकते हैं या कुछ और कहा जा सकता है। आप जैसा मुझे जानते थे अब मैं वैसा नहीं हूं। मुझे तो अपना वहींढंग पसंद है किंतु अब क्या किया जा सकता है, मैं तो मर चुका हूं।

उन्होंने कहा:देखो, मैं इतनी गंभीरता से बोल रहा हूं और तुमको मजाक करने की सूझ रही है।

मैंने उनसे कहा: मैं अपनी पूरी कोशिश कर हरा हूं, पर केवल आपको ही वह प्रंसग याद नहीं आता, मुझे भी उसकी याद आती है। जब भी कोई बुरा दिन होता है या मौसम अच्छा नहीं होता या चाय अच्छी गरम नहीं होती या खाना अच्छा नहीं होता, ऐसा कि जैसे जहर देने के लिए बनाया हो, तब मैं याद करता हूं कि आप कुर्सी पर कूद-कूद कर कैसे दूसरों की मदद मांग रहे थे। बस उससे फिर मैं प्रसन्न हो जाता हूं। हालांकि मैं मर चुका हूं पर इससे फिर भी मदद मिलती है। मैं आपका बहुत आभारी हूं।

मैं तो ऐसी हरकतों के लिए ही स्कूल जाता था।, हां, वहां जाने के अवसर बहुत कम होते थे। सब लोगों का भला इसी में था कि मैं वहां रोज न जाऊं। मेरे वहां न जाने में ही वे खुश थे। तुम्हें यह जान कर हैरानी होगी कि वहां का जो चपरासी था, प्यून था- तुम लोग प्यून को क्या कहते हो? या तुम्हारे पास ऐसा कोई शब्द नहीं है? हम भारत में उसे प्यून कहते हैं। जो भी शब्द हो, हर आफिस में जो निम्नतम कर्मचारी होता है उसको प्यून या चपरासी कहा जाता है।

देवराज, तुम क्या कहते हो?

‘जैनिटर।’

न्हीं, वह अलग बात है, पर बहुत करीब आता है। मैं समझता हूं कि प्यून अंग्रेजी शब्द है क्योंकि यह हिंदी शब्द नहीं है। शायद मैं सही उच्चारण नहीं कर रहा हूं। हम खोज लेंगे। पर उसकी स्पेलिंग होती है पी इ ओ एन।

मेरे स्कूल न जाने से वहां का चपरासी ही एक ऐसा व्यक्ति था जो दुखी हो जाता था, क्योंकि बाकी सब इससे बहुत खुश होते थे। वह मुझसे बहुत प्रेम करता था। उससे अधिक बूढ़ा आदमी मैंने आजतक नहीं देखा। वह शायद नब्बे साल या उससे भी अधिक उम्र का था। शायद उसने शताब्दी पूरी कर ली थी, शायद इससे भी अधिक रहा हो। किंतु वह अपनी उम्र जितनी कम हो सकते उतनी करके बताता था क्योंकि उम्र के अधिक हो जाने से उसे नौकरी से रिटायर कर दिया जाता।

भारत में किसी के पास जन्म-प्रमाणपत्र तो होता नहीं है। सौ बरस पहले तो इसका प्रवचन ही नहीं था। जन्म-तिथि का रिकार्ड की नहीं रखा जाता था। मैंने ऐसा कोई आदमी नहीं देखा जो इतना वृद्ध होते हुए भी इतना दिलचस्प हो।

डस सारे स्कूल में वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसका मैं आदर करता था। वह बेचारा गरीब नौकर था इसलिए दूसरे लोग तो उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते थे। बस उसके ही कारण मैं कभी-कभी स्कूल चला जाता था, केवल उसी से मिलने।

हाथी फाटक के पास ही उसकी कोठरी थी। उस फाटक को खोलना और बंद करना उसका काम था। उसकी कोठरी के सामने हीह एक घंटा टंगा हुआ था। हर चालीस मिनट के बाद वह उसे बजाता था। हर रोज दो बार दस-दस मिनट की आधी छुट्टी होती थी-नाश्ता करने के लिए और दोपहर को खाने के लिए एक घंटे की छुट्टी होती थी। उसका यही काम था- घंटा बजाना। अन्यथा वह बिल्कुल खाली होता था। और वह इतना प्यारा वृद्ध आदमी था।

मैं जब उसके कमरे में जाता तो वह दरवाजा बंद कर देता ताकि कोई दूसरा न आ जाए या मैं जल्दी से वहां से भाग न जाऊं। तब वह मुझसे पूछता- अब मुझे बताओ कि पिछली बार जब हम मिले थे तो उसके बाद तुमने क्या-क्या किया। और इतना प्यारा वृद्ध व्यक्ति था। उसका चेहरा झुर्रियों से भरा हुआ था। जब वह मुझसे बात करता तो मैं उसके चेहरे की रेखाओं को गिनने की कोशिश करता, उसके माथे की रेखाओं को देखता। उसके सिर पर कोई बाल नहीं थे- सब सफाचट- केवल माथ ही माथा था। उसका पूरा चेहरा

झुर्रियों से भरा था। परंतु उन असंख्य झुर्रियों और रेखाओं के पीछे छिपा हुआ था गहन प्रेम और गहरी समझ का व्यक्ति।

अगर मैं कई दिन तक स्कूल न जाता तो यह निश्चित था कि मुझे खोजता हुआ मेरे घर पंहुच जाता। इसका मतलब यह था कि मेरे पिताजी को सब कुछ मालूम हो जाता- यही कि मैं कभी स्कूल नहीं जाता फिर भी मेरे हाजिरी लग जाती है ताकि मैं कोई उपद्रव न करूं। मैंने स्कूलवालों से समझौता भी यही किया था कि मैं बाहर ही रहूंगा, किन्तु मेरी उपस्थिति का क्या होगा? मेरे पिताजी को कौन जवाब देगा?

उन्होंने कहा: उपस्थिति की तो तुम चिंता ही मत करो। हम तुम्हें शत-प्रतिशत उपस्थिति दे देंगे-छुट्टी वाले दिन भी।

इसलिए मैं सदा इस बात का ध्यान रखता था कि मैं उससे मिलने उसकी कोठरी में आता रहूं ताकि वह मेरी खोज में कहीं मेरे घर न पहुंच जाए। किसी तरह- फिर मुझे इस शब्द का उपयोग करना होगा ‘सिन्क्रानिसिटी’-उसे पता चल जाता था कि मैं कब आ रहा हूं। उसके साथ मेरा आंतरिक संबंध इतना गहरा था। मुझे पहले से ही पता लग जाता था कि अगर आज मैं नहीं गया तो वह जानने आज आ जाएगा कि क्या हुआ। और यह मामला बिल्कुल गणित की तरह हो गया था।

सुबह की सुबह नींद से उठते ही मेरे भीतर से आवाज आती, अगर तुम आज मन्नूलाल (मन्नूलाल उसका नाम था) से मिलने नहीं गए तो शाम तक वह तुम्हारे घर पहुंच जाएगा। इससे पहले कि ऐसा हो, उससे मिलने चल जाओ।

मैं सदा इस आंतरिक आवाज को सुनता। किंतु सिर्फ एक बार मैंने उस आवाज की बात नहीं मानी, उसे अनसुना कर दिया। मैं इस क्रम में थोड़ा थक गया था। एक तरह की विवशता सी हो गई थी। डर के मारे मुझे जाना ही पड़ता कि कहीं वह मेरे माता-पिता को यह न बता दे कि मैं कई दिनों से स्कूल नहीं गया और तब तूफान उठ खड़ा होता। मैंने अपने आप से कहा, ‘नहीं, आज तो मैं नहीं जाऊंगा, कुछ भी हो जाए मैं नहीं जाऊंगा।’ और मैं नहीं गया। बस थोड़ी देर बाद ही मैंने बूढ़े मन्नूलाल को आते देखा। वह सौ साल का तो जरूर था किंतु वह अपनी उम्र कम बताता था। मुझे तो वह सदा एक सौ दस या एक सौ बीस साल का मालूम होता था। वह इतना पुरातन दिखता था, इतना प्राचीन दिखता था कि तुम भरोसा ही न करोगे। मैंने कभी इससे प्राचीन कुछ नहीं देखा। मैंने बहुत बजायबघर देखें हैं, सब तरह के पुरातन संग्रह देखे हैं, पर मन्नूलाल से पुराना कभी कुद नहीं देखा।

मैंने उसे आते हुए देखा! तो मैं भागा-भागा उसके पास बाहर ही पहुंच गया ताकि वह मेरे घर में प्रवेश न करे। उसने कहा: ‘मुझे यहां आना पड़ा, क्योंकि तुम मुझसे मिलने आए ही नहीं। और तुम जानते हो कि मैं इतना बूढ़ा हूं-कभी भी मर सकता हूं। कौन जानता है।

तुम्हें एक बाद देखना चाहता था। तुम्हें सदा की तरह जीवंत और स्वस्थ देखकर मुझे शांति मिल गई है। इतना कह कर वह मुझे आशीर्वाद देते हुए वापस मुड़ कर चला गया। मुझे अभी भी उसकी पीठ दिखाई दे रही है। वह चपरासी की खाकी रंग की अजीब वर्दी पहने हुए था। अब यह समझाना मेरे लिए बहुत ही कठिन होगा। पहला तो वह रंग-खाकी। खाकी रंग की वर्दी पहने हुए था। उसके पैरों में नीचे से लेकर घुटनों तक पट्टा बंधा हुआ था, वह भी खाकी, ताकि वह सजग और सावधान रहे।

यह बड़ी अजीब बात है पर पोशाक से आदमी का व्यवहार बदल जाता है। उदाहरण के लिए, आज युवक जैसी तंग और चुस्त पोशाक या पेंट पहन रहे हैं, उसे देख कर तो हैरानी होती है कि इतनी चुस्त है कि कैसे वे उसमें घुस सकते हैं! मैं तो कभी नहीं पहन सका।

मान लो कि अगर उसके भीतर हीह उसका जनम हुआ तो अब सवाल यह उठता है कि वे बाहर कैसे निकलेंगे? पर ये तो दार्शनिक प्रश्न हैं। उनको इसकी चिंता नहीं है। वे तो पॉप गाने गाते हैं और पॉपकॉर्न खाते हैं। अब वे करें तो भी क्या करें?

पर पोशाक से व्यक्ति का व्यवहार अवश्य बदल जाता है। सैनिक ढीली-वर्दी नहीं पहन सकते-नहीं तो वे लड़ नहीं सकेंगे। जब इतनी तंग और चुस्त पोशाक पहनी जाएगी तो आदमी खुद ही लड़ाई करना चाहेगा। अकारण की गुस्सा आएगा, झुंझलाहट होगी, यह वस्तुगत नहीं होगा, किसी खास व्यक्ति की तरफ नहीं होगा, यह सिर्फ आत्मगत होगा। तुम सिर्फ उससे बाहर निकलना चाहोगे। फिर क्या करो? अच्छी तरह से झगड़ा करो। झगड़ा या लड़ाई करने के बाद ही कुछ राहत मिलेगी। उसके बाद ही वे तंग कपड़े कुछ ढीले हो जाएंगे।

इसीलिए तो हर प्रेमी प्रेम करने से पहले झगड़ा करता है, तर्क करता है कि और तकिए पेंफकता है। तब अंत में सुखांत नाटक बन जाता है। काश, प्रारंभ से ही लोग प्रेमपूर्ण हो सकें! पर नहीं, उनकी अपनी ही अकड़, उस अकड़ के कारण ही लोग आरंभ में ही प्रेमपूर्ण नहीं हो पाते।

मरे लिए केवल तीन मिनट... कहने को तो बहुत कुछ बाकी था, किंतु मुझे और भी काम करने हैं। तुम इन आंसू को देख रहे हो... कृपया इन्हें पोंछ दो। किंतु यह बहुत सुंदर था, धन्यवाद। बहुत अच्छा आशु, ठीक हो रहा है। तुम अपने ढंग से चलो, वह अपने ढंग से चलता रहेगा। रास्ते अलग हैं, और मैं नहीं सोचता कि वे कहीं मिलेंगे।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(35)

जब मैंने हाईस्कूल में प्रवेश किया तो मेरी नानी ने मेरे माता-पिता से कहा कि स्कूल में तो वह कुछ पढ़ता-लिखता नहीं है, वहां सबको सताता है। किंतु इसको बुनियादी शिक्षा देना तो बहुत जरूरी है, इसलिए इसे घर पर पढ़ाने के लिए एक प्राइवेट मास्टर रखना चाहिए और साथ ही यह स्कूल भी जाता रहे। मेरे माता-पिता इस सुझाव को मानने के लिए तैयार नहीं थे, क्योंकि उनका कहना था कि आखिर ये स्कूल किसलिए हैं? परंतु जब मैं इस बात से सहमत हो गया तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, ‘नानी ठीक कहती हैं। ऐसे रद्दी स्कूलों में मैं कुछ नहीं पढ़ सकता।’ तब पिताजी मान गए और उन्होंने नानी से कहा कि ऐसा मास्टर खोजना चाहिए जो मुझे पढ़ा सके। नानी के ध्यान में ऐसा एक मास्टर था। सो उन्होंने उसको समझा-बुझाकर मुझे पढ़ाने के लिए राजी कर लिया।

वह एक रिटायर्ड हैडमास्टर था। दूसरे दिन सुबह वह मुझे पढ़ाने मेरे कमरे में आया। गर्मी के दिन थे और वह सूट-बूट पहन कर और टाई लगाकर आया। कमरे में घुसते ही वह खांसा, अपनी टाई को ठीक किया और उसने मुझसे कहा, ‘देखो लड़के! मैंने तुम्हारे बारे में कई कहानियां सुन रखी हैं और मैं पहले से ही तुम्हें यह बता देना चाहता हूं कि मैं डरपोक नहीं हूं।’ यह कहकर उसने अपनी निगाह चारों ओर घुमाई और सारा समय इधर-उधर ही देखता रहा। और मुझे मालूम था कि ऐसा व्यवहार कायर ही करते हैं। वह बात तो मुझसे कर रहा था किंतु मेरी ओर देखने की बजाय वह कभी दरवाजे की ओर और कभी खिड़कियों की ओर देख रहा था। यह देखकर मुझे बड़ा मजा आ रहा था। मैंने उससे कहा ‘यह तो ठीक है आप डरपोक नहीं हैं किंतु क्या आप भूतों को मानते हैं?’ उसने डरी हुई निगाह से चारों ओर देखते हुए कहा, ‘यह भूतों की बात कहां से निकल आई! मैं तो अपना परिचय तुम्हें दे रहा हूं और तुमसे परिचित हो रहा हूं और तुमने भूतों की बात शुरू कर दी।’ इस परमैंने कहा, ‘नहीं! अभी तो ऐसी कोई बात नहीं है किंतु आज रात मैं आपको भूत के साथ ही देखूंगा।’ इतना सुनते ही उसका पसीना छूट गया। तब मैंने उससे

कहा, ‘खैर! आप पढ़ाना शुरू कीजिए! मुझे और भी बहुत से काम हैं।’ उसने कहा, ‘हां! हां! अभी पढ़ाना शुरू करता हूं किंतु तुम भूत के बारे में क्या कह रहे थे?’

मैंने कहा, ‘अभी तो भूल जाइए। रात को मैं उससे परिचित कर दूंगा।’ उसने जब देखा कि मैं बड़ी गंभीरता से यह बात कह रहा हूं तो वह कांपने लगा। वह कुछ बोल रहा था किंतु वह मैं नहीं सुन सका। मुझे केवल उसकी पतलून हिलती हुई दिखाई दे रही थी। एक घंटा उसने मुझे पढ़ाने के बहाने कुछ बकवास की। मैं तो उसकी पतलून को हिलते देख रहा था। सो मैंने पूछा ‘आप की पतलून के भीतर क्या है जो इतना हिल रहा है?’ वह आधा पाठ पढ़ाकर ही चल पड़ा और कहने लगा कि बाकी का पाठ कल पढ़ाएगा। परंतु वह दोबारा कभी नहीं आया और इस प्रकार समाप्त हुआ मेरे प्राइवेट मास्टर का किस्सा।

मेरी नानी के मकान के आंगन में एक बहुत बड़ा नीम का पेड़ था जो कि पूरे मकान के ऊपर छाया हुआ था। गर्मी के दिनों में जब नीम फूलता था तो उसकी सुगंध चारों ओर फैल जाती थी। भारत में नीम के अधिक से अधिक पेड़ लगाना बहुत ही धार्मिक कार्य माना जाता है। नीम वायु को शुद्ध कर देता है। नीम का यह पेड़ मेरी नानी के घर के पीछे था। इसके बारे में यह कहानी प्रचलित थी कि यह नीम का पेड़ भूतों को पकड़ लेता है। कहा जाता था कि अगर किसी को भूत लग गया हो तो अगर वह आदमी एक कील लेकर उस नीम के पेड़ में ठोंक दे और ऐसा करते हुए कहे, ‘मैं अपने भूत को यहां कील रहा हूं’ तो वह आदमी भूत से मुक्त हो जाता था। उस पेड़ पर लगभग एक हजार कील लगे हुए थे। हर रोज हजारों लोग उस पेड़ के पास जाते। नजदीक ही एक छोटी सी दुकान भी थी जहां पर वे कील बिकते थे। इन कीलों को कोई उखाड़ता नहीं था इस डर के मारे कि वह भूत उसे पकड़ न ले। मेरे परिवार को भी इस बात का बहुत डर था कि अगर मैं उस पेड़ के पास गया तो मुझे अवश्य कोई न कोई भूत पकड़ लेगा। इसलिए मेरी नानी सदा मुझे उस पेड़ से दूर रखने की कोशिश में रहती थीं। लेकिन उनको यह नहीं मालूम था कि मैं उस नीम के पेड़ में गड़े हुए कीलों को उखाड़कर उस दुकान वाले को बेच देता था। पहले तो वह दुकानदार भी डरता था किंतु जब मैंने उसे बताया कि भूतों से तो मेरी अच्छी दोस्ती है तो वह कुछ आश्वस्त हुआ। तो मैं उसको कील बाजार से आधी कीमत पर बेच रहा था। मैंने अपनी नानी को बताया कि भूत की ये सब बातें झूठ हैं और मैं तो एक साल से उस नीम के पेड़ से कील निकालकर बेचता रहा हूं। नानी को तो सहसा विश्वास ही नहीं हुआ। यह सुनकर एक क्षण के लिए उनकी सांस रुक गई और उन्होंने कहा, ‘क्या तुम उन कीलों को बेचते रहे हो? तुम्हें तो उस पेड़ के नजदीक भी नहीं जाना चाहिए। अगर तुम्हारे मां-बाप को यह मालूम हो गया तो वे तुम्हें यहां से ले जाएंगे।’ मैंने नानी से कहा, ‘उसकी चिंता मत करो। भूतों से मेरी दोस्ती है!’ उन्होंने मुझसे पूछा, ‘तुम सारी बात सच-सच बताओ।’ मैंने उनसे कहा कि वे उस दुकानदार से कुछ न कहें। अगर वह भाग गया तो मेरा सारा धंधा चौपट हो जाएगा। अगर आप मेरी मदद करना ही चाहती हैं तो ऐसा कीजिए कि जब आप वहां से गुजर रही हों तो उससे बस इतना भर कह दीजिएगा कि ‘न जाने कैसे इन भूतों की इस लड़के से इतनी दोस्ती है। वे इससे बहुत प्रेम करते हैं किंतु मैं तो डर के मारे उस पेड़ के नजदीक भी नहीं जाती।’ मैंने नानी को समझाया कि वहां पर कोई भूत नहीं है। मैं आपके सामने उस पेड़ से कीलों को उखाड़कर दिखाऊंगा और कोई भूत मुझे नहीं पकड़ेगा। नानी मेरे साथ आंगन में आई और थोड़ी दूरी पर खड़ी होकर देखने लगीं। मैंने नानी से कहा, ‘डरिए मत। जरा नजदीक आइए।’ और उन्होंने नजदीक आकर देखा कि भूत की बात कोरी अफवाह थी।

वह पेड़ मेरे घर के ऊपर से गली के ऊपर छाया हुआ था। रात को उस गली से कोई नहीं जाता था। मेरी शैतानियों के लिए रात को गली का सन्नाटा बहुत सहायक होता था।

वह बेचारा प्राइवेट मास्टर मेरी नानी के घर के पीछे रहता था। उसे उस गली से जाना पड़ता था। मैंने उस रात एक लड़के को पटाकर उस मास्टर के घर भेजा (लड़कों को

मेरी बात माननी ही पड़ती थी, नहीं तो मैं उनके लिए मुसीबत खड़ी कर देता था)। मैंने उस लड़के से कहा, ‘तुम जाकर उस मास्टर से कहो कि तुम्हारे पिता बहुत बीमार हैं और उनके बचने की उम्मीद नहीं है।’ उसके पिता दूसरी गली में रहते थे। यह सुनते ही वह मास्टर जल्दी से उस ओर चल पड़ा, उसके हाथ में लैम्प था। मैं तो अपने पेड़ के ऊपर चढ़ कर बैठा हुआ था। जैसे ही वह मास्टर उस नीम के पेड़ के नीचे आया, मैं पेड़ से उसके ऊपर कूदा-और फिर क्या हुआ इसका अनुमान किया जा सकता है। वह मास्टर इतनी तेजी से दौड़ा कि उसकी पतलून भी वहीं सड़क पर गिर गई और वह बिना पतलून के ही भाग गया! मैंने उस पतलून को उठाया और उसे नानी को देते हुए कहा, ‘इसे रख दीजिए। जब वह इसे मांगने आएगा तो उसे दे दीजिएगा।’ किंतु आश्चर्य तो यह हुआ कि वह अपनी पतलून लेने कभी नहीं आया। मैंने उसे नीम के पेड़ पर कील के साथ गाड़ कर भी लटका दिया कि आते-जाते वह उसे देख लेगा और ले जाएगा। किंतु वह पतलून वहीं पर लटकी रही। वह मास्टर भी न जाने कहां चला गया। फिर दोबारा कभी दिखाई ही न दिया।

मेरे पिता को जब इस घटना के बारे में मालूम हुआ तो वे मुझ पर बहुत नाराज हुए। मैंने कहा कि मैं तो केवल उसे बताना चाहता था कि उसका छात्र कैसा है। मैं तो पेड़ पर एक ढोल लेकर बैठा हुआ था और जैसे ही वह नजदीक आया मैंने ढोल बजाया और उसके ऊपर कूद पड़ा। किंतु मुझे नहीं मालूम था कि इसके बाद वह मास्टर गायब ही हो जाएगा। इस प्रकार मैं बहुत लोगों को डराता था। इसीलिए मेरे पिताजी ने गुस्से से लाल-पीले होकर कहा कि ‘मैं इस पेड़ को ही कटवा देता हूं। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।’ मैंने उनसे कहा कि ‘इस पेड़ को काटने के लिए कोई तैयार नहीं होगा।’ और मेरी बात सच हुई। उस शहर का कोई भी लकड़हारा, कोई भी बढ़ई उस पेड़ को काटने के लिए राजी न हुआ, क्योंकि सब लोगों को भूतों का डर था। कभी-कभी मैं पिताजी को चिढ़ाने के लिए उनसे पूछ बैठता, ‘दद्दा! वह पेड़ तो अभी भी वहीं पर है। अभी तक उसे काटा नहीं गया?’ दद्दा झुंझलाकर बोलते, ‘तुम चुप रहो।’ मैंने कहा कि ‘कोई उसको नहीं काटेगा क्योंकि मैं सबको भूतों के बारे में बताता रहा हूं। हां! अगर आप चाहें तो मैं उसे अवश्य काट सकता हूं।’ किंतु मुझे मालूम था कि वे इसके लिए कभी तैयार न होंगे- मुझे उस पेड़ को काटने नहीं देंगे। अंत में हार कर उन्होंने कहा, ‘अच्छा! उस पेड़ को रहने दो।’

जब तक मैं उस शहर में था तब तक तो वह पेड़ सही-सलामत रहा किंतु मेरे वहां से चले जाने के बाद मेरे पिताजी ने दूसरे गांव के एक मुसलमान से वह पेड़ कटवा डाला। उसकी जड़ें फिर न ऊग आएं इसलिए उन्होंने वहीं पर एक कुआं खुदवा दिया। परंतु उस कुएं का पानी इतना कड़वा था कि कोई उसे पी नहीं सकता था। मैंने पिता जी से कहा कि ‘यह आपने क्या किया? इतने सुंदर पेड़ को कटवाकर उसकी जगह अपने पैसे से कुआं खुदवाया और अब आप भी उस कुएं का पानी नहीं पी सकते।’ उन्होंने कहा, ‘हां! कभी-कभी तुम ठीक कहते हो, लेकिन अब तो कुछ नहीं हो सकता।’ उस कुएं को पत्थरों से भरकर बंद कर दिया गया।

हां! तो यह सब बखेड़ा शुरू हुआ उस दिन से जब उस मास्टर ने मुझसे कहा कि वह डरपोक नहीं है और वह भूतों को नहीं मानता। तो मैंने अपने मन में कहा कि चलो, यह भी देख लेते हैं कि भूतों से तुम डरते हो या नहीं।

प्राइमरी स्कूल के बाद जब मैं मिडल स्कूल में भर्ती हुआ तो वहां पर मेरा पहला अध्यापक था ‘खाकी मास्टर।’ उसका असली नाम मुझे याद नहीं आ रहा किंतु लोग उसे ‘खाकी मास्टर’ कहते थे, क्योंकि उसका दिमाग कुछ खराब था। बस, इसलिए तुरंत मेरी उससे दोस्ती हो गई। वैसे अध्यापकों से मेरी दोस्ती कभी होती नहीं थी किंतु यह मास्टर नीम-पागल था इसलिए मेरी उसके साथ खूब जम गई। अध्यापकों की तरह मुझे पत्रकार और राजनीतिज्ञ भी पसंद नहीं हैं। अब याद आया-इस मास्टर का नाम था

राजाराम। किंतु लोग उसे राजू खाकी कहते थे। मैं इससे पहली बार तब मिला जब वह रजिस्टर में मेरा नाम और पता लिख रहा था और इस संबंध में मुझसे प्रश्न पूछ रहा था। मैंने उससे कहा, ‘क्या थोड़ी देर के लिए हम चुप नहीं बैठ सकते?’ उसने उत्तर दिया, ‘अवश्य! मैं तुम्हारे साथ चुप ही बैठना चाहता हूं लेकिन पहले इस फिजूल के काम को खत्म करने दो।’ उसके इन शब्दों से मुझे पता लग गया कि कम से कम एक आदमी ऐसा है जो इस काम को फिजूल समझता है। उसने जल्दी से अपना काम समाप्त किया और रजिस्टर को बंद कर दिया और मुझसे कहा, ‘अब हम चुप बैठ सकते हैं। क्या मैं तुम्हारा हाथ अपने हाथ में ले सकता हूं?’ एक अध्यापक से ऐसे प्रेमपूर्ण व्यवहार की मुझे आशा नहीं थी। मैंने उससे कहा, ‘लोग आपको पागल कहते हैं परंतु मैं आपको इस शहर में सबसे अधिक समझदार अध्यापक मानता हूं। या तो लोग ठीक हैं या मैं ठीक हूं।’मेरी बात सुनकर उसने कहा कि ‘इस दुनिया में पागल होने से कई मुसीबतों से बच सकते हैं।’ इस पर हम दोनों हंस पड़े और दोस्त बन गए। जब तक वह जिंदा रहा तीस साल तक निरंतर मैं उसके पास केवल बैठने के लिए जाता। उसकी पत्नी ने मुझसे कहा कि ‘मैं तो समझती थी कि मेरा पति ही पागल है किंतु तुम भी पागल हो। न जाने क्यों तुम इस पागल से मिलने आते हो?’

और वह अध्यापक सचमुच पागल था। वह घोड़े पर सवार होकर स्कूल जाता था किंतु घोड़े पर उल्टा बैठता था-उसका मुंह घोड़े की पूछ की ओर होता था। बाद में मैंने उसको मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में बताया जो अपने गधे पर उल्टा बैठता था। उसके शिष्यों ने उससे कहा कि ‘मुल्ला, लोग आप पर हंसते हैं और आपको सनकी समझते हैं। इसके कारण हमको बहुत शर्म महसूस होती है।’ मुल्ला ने उनसे कहा, ‘देखो! मैं तुम लोगों को अपने पीछे की ओर नहीं रखना चाहता-तुम लोगों का अपमान नहीं करना चाहता। मेरे लिए दूसरा विकल्प यही है कि आप लोग गधे के सामने उल्टा चलें किंतु वह बहुत मुश्किल है। तब तुम मेरे सामने तो रहोगे और किसी का अनादर न होगा किंतु तब भी लोग हंसेंगे और तुम लज्जित होओगे। इसलिए यही सबसे अच्छा तरीका है कि मैं गधे पर उल्टा बैठूं। गधे को इस पर कोई एतराज न होगा और वह अपना रास्ता देख सकेगा। मैं तुम लोगों का अपमान नहीं करना चाहता इसलिए गधे पर उल्टा बैठता हूं।’ बड़े आश्चर्य की बात है कि लाओत्सु भी अपने भैंसे पर उल्टा ही बैठता था।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(36)

आप लोग मेरी मां से यह बात पूछ सकते हैं। अपने जन्म के बाद मैंने तीन दिन तक दूध नहीं पीया था। सब लोग बहुत चिंतित हो रहे थे, डॉक्टरों को भी यही फिक्र थी कि अगर यह बच्चा दूध नहीं पीयेगा तो जीयेगा कैसे? किंतु उनको मेरी कठिनाई का पता नहीं था। वे जबर्दस्ती मेरे मुंह में कुछ डालना चाहते थे और मैं उनको कुछ बता नहीं सकता था।

कारण यह था कि पिछले जीवन में जब मैं मरा तो मैं उपवास कर रहा था। मैं इक्कीस दिन का उपवास करना चाहता था किंतु इक्कीस दिन समाप्त होने के तीन दिन पहले ही मेरी हत्या कर दी गई थी। सो इस जन्म में भी मुझे बाकी के तीन दिनों की याद बनी रही। और मैं उन उपवासों को पूरा करना चाहता था। मैं बहुत जिद्दी हूं। प्रायः कोई भी व्यक्ति एक जन्म की बात को दूसरे जन्म तक नहीं खींचता। इसलिए मैंने तीन दिन तक अपने मुंह में कुछ भी स्वीकार नहीं किया। तीन दिन के बाद सब ठीक हो गया। तीन दिन तक मैं क्यों नहीं कुछ पी रहा था-इस रहस्य को कोई समझ नहीं सका। असल में बात यह है कि पिछले जन्म में मैं जो कर रहा था उसे इस जन्म में भी मैंने जारी रखा। इसीलिए बचपन में लोग समझते थे कि मैं सनकी हूं। मुझे जो करना होता था वह करता था और उसका स्पष्टीकरण भी नहीं देता था। मैं कह देता था, मुझे ऐसा करना है और आपको

इसका कारण नहीं बता सकता क्योंकि आप इसे नहीं समझ सकते। मेरे पिता आश्चर्य से कहते। मैं नहीं समझ सकता और तुम समझ सकते हो?’ मैं उत्तर देता, ‘हां! वह मेरे आंतरिक अनुभव की बात है। उसका आयु से कोई संबंध नहीं है। आप अवश्य मुझसे अधिक समझ सकते हैं किंतु जहां तक मेरे अंतर का सवाल है वहां केवल मैं ही पहुंच सकता हूं, आप नहीं।’ वे हारकर कहते, ‘तुमको समझना असंभव है!’ मैं कहता, ‘हां! सो तो है ही और सब लोगों को ऐसा मान लेना चाहिए। मुझे जो करना है वह करूंगा ही और किसी को इसकी किफायत नहीं दूंगा, न किसी से इसकी इजाजत लूंगा!’ मेरा व्यवहार ऐसा ही था। अपने बचपन की कुछ बातें मेरे मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ गई हैं।

एक बार मैं अपने स्कूल से घर आ रहा था। यह स्कूल मेरे घर से एक मील दूर था। इसके आधे रास्ते में एक बहुत बड़ा वट वृक्ष था। मैं रोज चार बार उस पेड़ के पास से गुजरता था। सुबह स्कूल जाते समय, फिर आधी छुट्टी के समय खाना खाने के लिए घर जाते समय और खाकर वापस जाते समय-फिर छुट्टी के बाद घर लौटते समय। गर्मी के मौसम में एक दिन जब मैं उस पेड़ के पास पहुंचा तो मुझे पसीना आ रहा था, उसके नीचे से जब गुजर रहा था तो थोड़ा ठंडा लगा और अचानक मैं वहां रुक गया। मैं वृक्ष के तने के पास बैठ गया और तने को छूने ला। फिर क्या हुआ यह तो मैं नहीं बता सकता किंतु मैं बहुत आनंदित हो उठा। ऐसा लगा जैसे पेड़ में और मुझ में कुछ घट गया। केवल ठंडक उसका कारण नहीं हो सकती क्योंकि इसके पहले भी मैं कई बार वहां पर रुका था किंतु मैंने इससे पहले कभी उस पेड़ को छुआ नहीं था और न उसके पास एक मित्र की तरह बैठा ही था। आनंद के उस क्षण को मैं आज तक नहीं भूल सका। आज भी उसकी याद बिल्कुल ताजा है। उस दिन से मेरा उस पेड़ से एक गहरा संबंध बन गया। आज तक मेरी समझ में नहीं आया कि वास्तव में क्या हुआ था किंतु इतना मालूम है कि कुछ हुआ जरूर था। उस समय से उस पेड़ से मेरी बड़ी घनिष्ठता हो गई। बस उसके बाद तो मेरा यह क्रम ही बन गया कि जब भी मैं उस पेड़ के पास से गुजरता मैं थोड़ी देर उसके पास बैठकर उसको छुता दोनों के बीच संबंध बढ़ता गया।

जब मैं विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए दूसरे शहर जा रहा था तो अपने माता- पिता और परिवार के अन्य सदस्यों से विदा लेते समय मेरी आंख में एक भी आंसू नहीं आया। मैं कभी रोता नहीं था। कभी-कभी जब मुझे सजा दी जाती थी तो हाथों से खून बहने लगता था किंतु तब भी मेरे आंसू नहीं टपकते थे। परन्तु जब मैं उस पेड़ से विदा लेने गया तो मैं रोने लगा। जिंदगी में बस उसी समय-केवल एक बार मैं रोया। जब मैं बहुत छोटा था तो मुझे मेरी एक बहन बहुत प्यारी थी। हम ग्यारह भाई-बहन थे। मैं अपने पिता से मजाक किया करता था कि ग्यारह की संख्या कुछ कम है, बारह होने चाहिए थे तब पूरे एक दर्जन हो जाते। इन दस भाई-बहनों में से जो बहन मुझे सबसे अधिक प्यारी थी वह मेरे बचपन में ही गुजर गई। उस समय मैं पांच वर्ष का था और वह तीन वर्ष की रही होगी। किंतु उस समय भी मैं न रोया था सबने समझा कि मुझे बहुत शॉक लगा है। किंतु यह बात नहीं थी। जब मेरे नाना की मृत्यु हुई तब भी मैं नहीं रोया। मेरा पालन-पोषण उन्होंने ही किया था।

मेरे जन्मदिन पर मेरे नाना नजदीक के एक साधु से एक हाथी ले आते थे, फिर दो बोरियों में चांदी के सिक्के भर कर हाथी के दोनों ओर लटका देते थे। मैं हाथी पर बैठ कर सारे गांव में घूमता और चांदी के उन सिक्को कोफेंकता जाता। पीछे- पीछेनाना अपनी बैलगाड़ी में आते और मुझसे कहते तुम फैंकते जाओ। मेरे पास और भी हैं।’ सारा गांव उस हाथी के पीछे चलता। गांव बड़ा नहीं था। दो-तीन सौ लोग ही उसमें रहते थे। इस प्रकार वे मेरा जन्मदिन मनाते थे। वे मुझसे इतना प्रेम करते थे कि अगर मेरी तबियत थोड़ी सी भी खराब हो जाती तो वे घबड़ा जाते और अपने घोड़े पर जाकर तुरंत डॉक्टर को ले आते। ये नाना भी जब मेरी गोद में मरे तब भी मेरे आंसू न निकले। परंतु आश्चर्य तो यह कि जब मैं उस पेड़ से विदा ले रहा था तो मैं रो रहा

था। बस पहली और अंतिम बार मैं इसी समय रोया। जब मैं रो रहा था तो मुझे ऐसा लग रहा था कि पेड़ के भी आंसू बह रहे हैं। जब मैंने उसको छुआ तो उसकी उदासी को भी मैंने महसूस किया। और सचमुच यह मेरी उससे अंमि भेंट थी। क्योंकि एक वर्ष के बाद जब मैं वापिस आया तो देखा कि किसी बेवकूफी के कारण उसे काटडाला गया है। कारण यह था कि कोई स्मारक-स्तंभ बनाया जा रहा था और शहर के मध्य में यह सबसे सुंदर स्थान था। यह स्मारक-स्तंभ एक पैसे वाले मूर्ख के लिए बनाया जा रहा था जो तीस बरस तक निरंतर नगरपालिका का सभापति निर्वाचित किया जा रहा था। लोग उससे बहुत खुश रहते थे क्योंकि कोई कुछ भी कर ले वह कोई आपत्ति नहीं करता था। यहां तक कि अगर कोई अपना मकान सड़क के बीचोंबीच बना लेता तो भी वह उसे कुछ न कहता। ऐसे मिट्टी के माधो से नगरपालिका के कर्मचारी भी बहुत खुश थे। इसलिए वे चाहते थे कि सदा वही सभापति निर्वाचित हो। किंतु एक दिन वह मर गया और उसके लिए स्मारक बनाने के लिए उन लोगों ने मैंने सुंदर वृक्ष को काट डाला।

एक ज्योतिषी मेरी जन्मपत्री बना रहा था किंतु बनाने से पहले ही वह मर गया। फिर उसके बेटे ने इस काम को पूरा किया। उसके बेटे ने इस काम को पूरा किया। उसने भविष्यवाणी की कि यह बच्चा इक्कीस साल की आयु में अवश्य मर जाएगा। अपने जीवन के हर सात साल के बाद इसे मृत्यु का सामना करना पड़ेगा। और यह बात बिल्कुल सही थी। सात साल की आयु में मैं बच तो गया किंतु मुझे मृत्यु का बहुत गहरा अनुभव हुआ-अपनी मृत्यु का नहीं, अपने नाना की मृत्यु का, मेरा उनके साथ इतना लगाव था कि उनकी मृत्यु मुझे अपनी मृत्यु प्रतीत हुई। मैंने अपने बचकाने ढंग से उनकी मृत्यु की नकल की। तीन दिन तक मैंने न कुछ खाया न पीया क्योंकि मुझे लगा कि ऐसा करने से मैं अपने नाना के प्रति विश्वासघात करूंगा। हम दोनों का एक-दूसरे से बहुत प्रेम था। आपस में इतना लगाव था कि नाना ने मुझे अपने माता-पिता के पास कभी नहीं भेजा। वे सदा यही कहते थे कि जब मैं मर जाऊंगा तब तुम वहां चले जाना। नाना का गांव बहुत छोटा था। वहां कोई स्कूल नहीं था इसलिए मैं वहां स्कूल न जा सका। उन्होंने कभी मुझे अपने से जुदा नहीं किया परंतु मृत्यु उनको मुझसे छीन कर ले गई। मैंने तो उनकी देख-रेख में, उनके प्रेम की छाया में ही होश संभाला था। वे मेरा अभिन्न अंग थे। जब उनकी मृत्यु हुई तो मैंने सोचा कि मैं भी जीवित नहीं रहना चाहता और मैंने खाना छोड़ दिया। यह बात थी तो बचकानी किंतु इसके कारण मुझे बहुत ही गहरा अनुभव हुआ। तीन दिन तक मैं निरंतर बिस्तर पर लेटा रहा ओर मैंने अपने आप से कहा कि मैं नाना के बिना जिंदा नहीं रह सकता। उन तीन दिनों में मुझे मृत्यु का अनुभव हो गया। एक प्रकार से मैं मर गया किंतु साथ ही मुझे धुंधला सा यह बोध भी हुआ कि मृत्यु असंभव है।

इसके बाद मेरी चौदह वर्ष की आयु में मेरे परिवार वाले फिर चिंतित हो गए। उस समय भी मैं बच गया। किंतु इस बार मैंने निश्चय किया कि मृत्यु का सामना होशपूर्वक करुंगा और मरने की तैयारी पहले से ही कर लूंगा। तो मैंने स्कूल से सात दिन की छुट्टी ले ली और प्रिंसिपल से कहा कि मैं मरने जा रहा हूं। उसको यह सुनकर बड़ा अचरज हुआ और उसने पूछा, ‘क्या तुम आत्महत्या करने जा रहे हो?’ तब मैंने उन्हें बताया कि ज्योतिषी ने कहा है कि हर सात वर्ष के बाद मेरा मृत्यु-योग है और मैं मर सकता हूं। इसलिए मैं मृत्यु से मिलने एकांत में जा रहा हूं। अगर सचमुच आ गई तो मैं अच्छी तरह से उसका अनुभव कर सकूंगा।

मेरे गांव के बाहर एक मंदिर था। मैं वहां चला गया। वह मंदिर भी जीर्णशीर्ण खंडहर था जहां पर शायद ही कोई जाता था। मैंने उसके पुजारी से कहा कि मैं इस मंदिर में ही रहूंगा। मुझे वह दिन में एक बार कुछ खाने-पीने को दे दे और मुझसे कोई बातचीत न की जाए। मैं रात-दिन वहां पर लेट कर मृत्यु का इंतजार करूंगा। तो मैंने सात दिन तक इंतजार किया। सात दिन का वह अनुभव बहुत ही सुंदर रहा। मृत्यु

तो नहीं आई लेकिन मैंने मरने का पूरा प्रयास किया। बहुत अजीब-अजीब बातें घटती गईं किंतु मूल अनुभव यही हुआ कि अगर आपको मालूम हो कि आप मरने वाले हैं तो आप शांत और मौन हो जाते हैं। तब किसी बात की कोई चिंता नहीं होती। सब चिंताएं मिट जाती हैं। चिंताएं संबंधित हैं जीवन से। चिंता का मूल कारण है जीवन। किंतु जब एक दिन मरना ही है तो काहे की चिंता? तीसरे या चौथे दिन मैं उस मंदिर में लेटा हुआ था और मैंने, देखा कि एक सांप भीतर आया। मैं उसे देख रहा था किंतु मुझे कोई डर नीं लगा। सांप मेरे नजदीक आ रहा था और अचानक मुझे कुछ अजीब सा ला। मुझमें किसी पुकार का कोई डर नहीं था और मैंने समझा शायद मृत्यु इस सांप के रूप मे ही आई है। तो मैं मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहा। मैं चुपचाप लेटा रहा। सांप आया और मेरे ऊपर से रेंगता हुआ चला गया। अगर मृत्यु को स्वीकार किया जाए तो डर नहीं लगता किंतु यदि जीवन को कस कर पकड़े रहने की कोशिश की जाए तो बहुत डर लगता है। कई बार मक्खियां मेरे ऊपर भिनभिनाने लगतीं, कभी मेरे ऊपर उड़तीं, कभी मेरे चेहरे पर रेंगने लगतीं, इसलिए कभी-कभी मैं झुंझला पड़ता और उन्हें हटाना चाहता, फिर सोचता, ‘ऐसा करने से क्या फायदा? मर जाने के बाद इस शरीर की कौन रक्षा करेगा? इनको रहने दो, मत हटाओ।’ जैसे ही यह विचार मेरे मन में आया सारी झुंझलाहट गायब हो गई। अभी भी वे मेरे शरीर पर थीं किंतु इससे मुझे कोईफक्र नहीं पड़ रहा था। मेरे और शरीर में एक दूरी बन गई थी-ऐसा लग रहा था कि मक्खियां किसी दूसरे के शरीर पर भिनभिना रही हों।

मृत्यु को स्वीकार कर लेने से शरीर से दूरी बन जाती है और जीवन की सारी चिंताएं मिट जाती हैं। एक प्रकार से मैं अवश्य मर गया किंतु साथ ही मुझे उसका भी पता चल गया जो अमर है-जो कभी नहीं मरता। एक बार मृत्यु को समग्रता से स्वीकार कर लिया जाए तो इस अमरत्व का बोध होता है।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(37)

जैन मुनि सदा पांच-छह फुट ऊंचे मंच पर बैठते हैं ताकि लोग उनके पैरों पर अपना सिर रखकर उन्हें प्रणाम कर सकें। जैन मुनि अकेले नहीं चलता। पांच जैन मुनियों का झुंड एक साथ चलता है ताकि वे एक-दूसरे पर निगाह रख सकें। इनको रात को पानी पीना मना है किंतु मैंने इन्हें रात को कोकाकोला पीते देखा है क्योंकि दिन के समय तो उन्हें ऐसा करते कोई देख सकता है। मैंने खुद उनको कोकाकोला लाकर दिया। दूसरा कोई तो इस जोखिम को उठाने के लिए तैयार नहीं था। जैन मुनियों को मालूम था कि मैं कोई भी खतरनाक काम करने को तैयार रहता हूं।

हां! तो वहां पर पांच मंच बने हुए थे। चार पर तो जैन मुनि बैठे हुए थे किंतु पांचवां मंच खाली था क्योंकि पांचवां जैन मुनि बीमार था। मैं जब वहां पर अपने पिता के साथ पहुंचा तो मैं जाकर उस पांचवें मंच पर बैठ गया। मेरे पिता तो मेरी ओर देखते ही रह गए-उनकी समझ में न आए कि वे मुझे कैसे डांटें। मुझे वहां बैठा देख कर वे चारों मुनि बहुत बेचैन हो उठे और उनमें से एक ने कहा, ‘यह ठीक नहीं है। इस मंच पर केवल मुनि ही बैठ सकता है। उन्होंने पिताजी से कहा कि इस लड़के को नीचे उतार दो। मैंने यह सुनकर उनसे पूछा कि ‘क्या आपको बोतल की याद नहीं है?’ उन्होंने कहा, ‘हां! हमें अच्छी तरह से याद है और तुम जब तक चाहो इस मंच पर बैठ सकते हो। यह सुनकर मेरे पिता पूछने लगे, ‘कैसी बोतल?’ उन मुनियों ने मुझसे कहा, ‘तुम यही पर बैठे रहो किंतु बोतल के बारे में कोई बात न करना।’ वहां पर बहुत लोग थे, सबको बड़ी उत्सुकता हुई कि यह बोतल का मामला क्या है। जैसे ही मैं मंदिर के बाहर निकला वे

मुझे घेर कर पूछने लगे, ‘यह कैसी बोतल थी?’ मैंने कहा, ‘यह तो बहुत गुप्त बात है और इसीलिए ये मूर्ख मेरे वश में हैं और आप लोग इन मूर्खों के पैर छूते हैं। अरे! अगर मैं चाहूं तो इनको मैं अपने पैर छूने को कह सकता हूं और ये खुशी-खुशी छू लेंगे।’

मेरे पिता भी अपनी उत्सुकता को न रोक सके। वापिस आते समय उन्होंने भी मुझसे पूछा कि ‘क्या वह शराब की बोतल थी?’ मैंने कहा, ‘नहीं! किंतु यदि ये लोग कुछ दिन यहां ठहर जाएं तो मैं इनको शराब भी पिला दूंगा।’ सारा शहर यही बात कर रहा था कि बोतल का नाम लेते ही ये जैन मुनि क्यो डर गये और उन्होंने मुझे उस मंच पर क्यों बैठने दिया? सब लोग मुझसे उस बोतल का रहस्य पूछने लगे। मैंने उनसे कहा, मैं तो कुछ नहीं बता सकता। आप खुद ही अपने इन मुनियों से पूछ लीजिए कि इसमें क्या रहस्य है। मेरे सामने वे झूठ नहीं बोल सकते और आपको भी पता लग जाएगा कि आप किस प्रकार के लोगों की पूजा करते हैं।

मेरे छोटे से गांव के पास ही एक नदी थी, बचपन में मैं सुबह-सुबह इस नदी पर जाता था। यह नदी बहुत ही सुस्त और शांत थी। सूर्योदय पर पहले जब नहाने वाले भी न होते थे, यह भी पता न चलता कि नदी बह रही है या नहीं। भोर के समय, पक्षियों ने अभी गान भी शुरू न किया होता। चारों ओर मौन छाया रहता। नदी के ऊपर आम के पेड़ छाए रहते। सुबह का वह दृश्य बहुत ही सुंदर था। मैं नदी के किनारे दूर जाकर बैठ जाता और वह बहुत ही आनंदपूर्ण अनुभव था। मैं बड़े मजे से नहाता और तैरता। सूर्योदय के बाद मैं नदी के दूसरे किनारे पर जाता जहां रेत ही रेत बिछी हुई थी। रेत पर धूप में अपना बदन सुखाते हुए वहीं लेट जाता और कभी-कभी देर से घर जाता। जब वापिस घर आता तो मेरी मां पूछती कि सुबह से क्या कर रहे थे? तो मैं कहता, ‘कुछ नहीं।’ और यह सच था क्योंकि मैं करता तो कुछ नहीं था। इस पर वे फिर पूछतीं, ‘यह कैसे हो सकता है कि तुमने कुछ नहीं किया हो? कुछ तो किया होगा।’ वे बिल्कुल ठीक प्रश्न पूछते। मेरा उत्तर भी गलत न होता। क्योंकि मैं सचमुच वहां कुछ करता नहीं। नदी के साथ मेरा पूर्ण तादात्म्य हो जाता था और जो भी घटता था उसे घटने देता था, अपनी ओर से सप्रयास कुछ भी न करता था। अगर तैरने का मन होता तो मैं तैरता। अगर सोने को जी चाहता तो मैं सो जाता। इस प्रकार अपने आप जो भी होता मैं उसे होने देता किंतु मैं ‘कर्ता’ नहीं था। और उस नदी के पास ही मुझे प्रथम ‘सतोरी’ का अनुभव हुआ था, वहां पर कुछ भी न करते हुए बहुत कुछ घटा था। मां के बार-बार पूछने पर कि तुमने क्या किया कहना ही पड़ता कि मैं नहाया और फिर धूप में अपने आप को सुखाया। इस उतर से वे संतुष्ट हो जातीं। किंतु नदी के पास जो घटा उसको शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। मैं तो नदी के साथ खेलता, उसके साथ बहता, नदी में तैरता-ये इतने गहरे अनुभव थे कि मेरे लिए उनका वर्णन करना बहुत मुश्किल है।

मेरे गांव में एक बहुत ही अच्छा बूढ़ा आदमी था। वह अस्सी साल से भी अधिक आयु का था फिर भी वह इतना सीधा-सादा और सरल व्यक्ति था कि सब लोग उससे प्रेम करते थे। यह तो मैं पहले ही बता चुका हूं कि गांव के पास ही एक नदी है। इस वृद्ध सज्जन ने नदी पर अपने लिए एक विशेष स्थान चुन रखा था जहां पर वह नहाया करता था। गांववालों ने बरसों से देखा था कि यह आदमी सदा-चाहे गर्मी हो चाहे सर्दी, चाहे वह बीमार हो या ठीक-सुबह पांच बजे इस नदी पर नहाने के लिए जाता था। उसने नहाने के लिए जो जगह चुन रखी थी वहां कोई नहीं जाता था क्योंकि वह दूर थी और वहां नदी बहुत गहरी थी। मेरे घर से यह नदी बहुत नजदीक थी किंतु वृद्ध सज्जन की यह जगह कोई दो मील दूर थी। वहां तक पहुंचने के लिए दो-तीन पहाड़ियों को पार करना पड़ता था। वह स्थान बहुत सुंदर था और जैसे ही मुझे उसका पता चला मैंने भी वहां जाना शुरू कर दिया, उस वृद्ध सज्जन से तुरंत ही मेरी मित्रता हो गई। वे सुबह पांच बजे वहां जाते थे तो मैंने वहां तीन बजे जाना शुरू कर दिया। उन्होंने मुझसे पूछा क्या बात है? क्या

तुम मुझे हराना चाहते हो?’ मैंने कहा कि ‘नहीं, जिस प्रकार आपने पांच बजे आने का निश्चय किया है उसी प्रकार मैंने तीन बजे आने का निश्चय किया है।’

उन्होंने मुझसे पूछा, ‘क्या तुम तैरना जानते हो?’ मैंने कहा, ‘नहीं, मैं तैरना तो नहीं जानता किंतु अगर दूसरे तैर सकते हैं तो मैं भी तैर सकूंगा-उसमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती। हां! डूबने का डर है किंतु उससे भी क्या डरना?’ उन्होंने कहा, ‘तुम तो खतरा मोल लेना चाहते हो। मैं तुम्हें तैरना सिखाऊंगा।’ मैंने कहा, नहीं! आप यहां बैठे रहिए और मैं नदी में कुछ पडूंगा। अगर मैं मरने भी लगूं तो आप मुझे बचायेंगे नहीं। यदि मैं ‘बचाओ! बचाओ! चिल्लाऊं तो भी आप मुझे बचाने की कोशिश मत कीजिएगा। जब मैं डूबने लगूंगा, जब पानी मेरे मुंह, नाक और आंख में भर जाएगा तब मैं शायद चिल्लाने लगूं कि ‘बचाओ! बचाओ!’ किंतु सच तो यह है कि मैं नहीं चाहता कि कोई मुझे बचाए। या तो मैं डूबने लगूंगा और मुझे यह मालूम हो जाएगा कि मैं तैर नहीं सकता या फिर तैरना सीख जाऊंगा। इतना कहते ही मैं नदी में कूद पड़ा। दो-तीन बार पानी के नीचे गया और ऊपर आया। और वे खड़े इंतजार कर रहे थे कि मैं सहायता के लिए उन्हें पुकारुं किंतु मैंने हाथ हिलाकर उन्हें मना किया। इस प्रकार पानी के नीचे और उपर जाते समय मैं जोर-जोर से हाथ-पैर मारने लगा और पांच मिनट में मैं तैरने की कला सीख गया।

साहसी और प्रतिभावान बनने के लिए मैंने इस जीवन में कोई प्रयास नहीं किया मुझे तो मालूम ही नहीं था कि साहस क्या होता है, प्रतिभा की क्या विशेषता है। बाद में मुझे पता चला कि लोग कितने मूर्ख होते हैं, मुझे तो मालूम ही नहीं था कि मैं साहसी हूं। मैं समझता था कि सच्चे लोग ऐसे ही होते हैं जैसा मैं हूं। बाद में मेरी समझ में आया कि सब जन एक समान नहीं होते। अपने बचपन में मुझे सबसे अधिक मजा आता था जब मैं नदी के निकट जो सबसे उंची पहाड़ी थी, उस पर चढ़कर वहां से नदी में कूद पड़ता था। आस-पड़ोस के बहुत से लड़के मेरे साथ जाते किंतु पहाड़ी के किनारे पर पहुंच कर रुक जाते उस ऊंचाई को देख कर एकाएक वे डर जाते। मैं बार-बार कूद कर उन्हें दिखाता कि अगर मैं इस ऊंचाई से कूद कर बच जाता हूं तो तुम्हें कूदने से क्यों डर लगता है? वे कहते कि ‘हम बहुत कोशिश करते हैं लेकिन कर नहीं पाते। इसमें से एक ब्राह्मण लड़का था जिसे इस बात से बहुत शर्म महसूस होती थी कि वह मेरी तरह कूद नहीं सकता। उसने इसके बारे में अपने पिता को बताया कि वह तो पहाड़ी के ऊपर जाकर नदी में कूद पड़ता है किंतु हम तो उसे देखते रहते हैं-स्वयं ऐसा नहीं कर पाते। हम यह भी जानते हैं कि अगर वह ऐसा कर सकता है तो हम भी वैसा कर सकते हैं। किंतु साहस जुटा कर जैसे ही हम आगे बढ़ते हैं कि अचानक ‘ब्रेक’ लग जाती है। हम रुक जाते हैं। भीतर से कोई आवाज आती है कि अगर मर गए तो?

उसका पिता माना हुआ पहलवान था। उसने कहा-‘यह तो अच्छी बात नहीं है। तुम मेरे बेटे होते हुए भी अगर पहाड़ी के ऊपर से कूद नहीं सकते तो बड़े शर्म की बात है। मैं तुम्हारे साथ चलता हूं और जब वह कूदे उसी समय तुम भी कूद पड़ना।’

जब मैं उस पहाड़ी पर गया तो देखा कि वह लड़का अपने पिता के साथ वहां खड़ा है और कुछ दूसरे लड़के भी वहां पर जमा हो गए थे। मैं सारी बात समझ गया और मैंने उस लड़के से कहा, ‘आज तुम अपने पिता को कूदने दो। इतने बड़े पहलवान के लिए यहां से कूदना मुश्किल नहीं है।’

पिता ने मेरी ओर देखते हुए कहा, ‘तो मुझे कूदना पड़ेगा!’ मैंने कहा, ‘हां! तैयार हो जाइये!’ उन्होंने नीचे की ओर देखते हुए कहा, ‘तुमने भी क्या जगह पसंद की है! ये पहाड़ियां और यह नदी! तुमने अवश्य यहां से कूदने का अभ्यास किया होगा। और कोई कूदेगा तो अवश्य उसकी हड्डी पसली टूट जाएगी। मैं तो अपने बेटे को प्रोत्साहित कर रहा था कि अगर तुम कूद सकते हो तो वह क्यों नहीं कूद सकता? वह भी तुम्हारी

उम्र का है। किंतु अब मुझे लगता है कि अगर मेरा बेटा कूदे तो वह बच नहीं सकता-अब तुम ऐसा करने को मुझे उकसा रहे हो। मैं जरूर कोशिश करूंगा।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(38)

प्रसिद्ध पहलवान ने पूरी कोशिश की किंतु जैसे ही वह पहाड़ी के किनारे पर पहुंचा और पचास फीट नीचे देखा तो अचानक ब्रेक लग गई। वह रुक गया और उसने कहा, ‘भाई! मुझे तो माफ करो।’ और वह अपने बेटे को वहां से अपने साथ ले गया। उस दिन मुझे अपने ऊपर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह ब्रेक मुझे क्यों नहीं लगती? और मैं तो दूसरी जगहों से भी कूदने का मजा लेता था।

इस नदी पर रेल का जो पुल था वह भी बहुत ऊंचा था। बरसात में नदी में जब बाढ़ आती है तो पानी का स्तर बहुत ऊंचा था। बरसात में नदी में जब बाढ़ आती है तो पानी का स्तर बहुत ऊंचा उठ जाता है। सो इस पुल को तो उससे भी ऊंचा बनाया जाता है। उस पुल पर सदा से पहरेदार रहते थे यह देखने के लिए कि कोई वहां से नदी में कूद कर आत्महत्या न कर ले और इस बात का भी वे ध्यान रखते थे कि कोई क्रांतिकारी उस पुल को बम से न उड़ा दे।

क्रांतिकारियों के लिए पुल का उड़ाना महत्त्वपूर्ण था क्योंकि ये दो स्थानों को जोड़ते थे और इनके टूट जाने से फौज दूसरी जगह नहीं पहुंच सकती थी और तब क्रांतिकारी उस जगह पहुंच सकते थे जहां पर सेना नहीं थी। इन पहरेदारों से मैंने कहा कि न तो मैं यहां पर आत्महत्या करने आया हूं न पुल उड़ाने। मैं तो यहां से नदी में कूदने का मजा लेने आया हूं। आप लोग देखो कि मैं कैसे कूदता हूं। मैं तो पुल से कूद पड़ा और वापिस वहां आकर उनसे पूछा, ‘क्या आप भी कूद कर देखना चाहते हैं?’ उन्होंने कहा, ‘नही! किंतु तुम जब चाहे यहां आ सकते हो। तुम्हें हम नहीं रोकेगें। उस पुल पर बहुत से लोगों ने आत्महत्या की थी क्योंकि यहां से नदी में गिर कर मरना जहर खाकर मरने से भी आसान था। इस पुल से अगर कोई नदी में गिरता उसकी लाश भी नहीं मिलती थी क्योंकि थोड़ी दूरी पर यह नदी एक दूसरी बड़ी नदी से मिल जाती थी। इन पहरेदारों और उस पहलवान के चेहरे पर छाए हुए भय को देखकर मुझे यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता कि मुझे कभी नहीं डर लगतां शायद यह डर ब्रेक लगाकर उनकी रक्षा करता है और मुझमें इस ब्रेक का अभाव है। लेकिन जैसे-जैसे मेरा विकास होने लगा मुझे अपने पिछले जन्म की याद आने लगी कि कितनी आसानी से मेरी मृत्यु हुई थी और कितने उत्साह से मैंने उसे अपनाया था। मैं अज्ञेय को जानना चाहता था। ज्ञात में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैंने अपने जीवन में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। मैं हमेशा आगे की ओर देखता हूं। पीछे तो कोई जा नहीं सकता, इसलिए पीछे मुड़कर देखने से कोई लाभ नहीं है। इसलिए मृत्यु के समय भी मैं आगे की ओर ही देख रहा था।

स्कूल में मेरे एक अध्यापक थे जो रोज क्लास में पढ़ाने से पहले सब लड़कों को चेतावनी देते हुए कहते कि तुम लोग सिर-दर्द और पेट-दर्द का बहाना करके कभी छुट्टी मत मांगना। जिस बीमारी को मैं देख नहीं सकता, जांचने से भी जिसका पता नहीं लग सकता है उसे नहीं मानता और उसके लिए मैं किसी को भी दुट्टी नहीं देता। हां! अगर किसी को बुखार हो तो उसका पता मुझे लग जाता है। मैंने सोचा, ‘चलो आपको भी देख लिया जाएगा। यह अध्यापक बड़ी उम्र का था किंतु अपनी सेहत का बहुत ख्याल रखता था। रोज सुबह पैदल घूमने जाता था और नियमित ढंग से कसरत करता था। एक दिन मैंने उसके दरवाजे के बाहर केले के कुछ छिलके रख दिए। सुबह पांच बजे जब उसने अपने पैर दरवाजे से बाहर रखे तो छिलके पर से फिसल कर धड़ाम से नीचे गिर गया और पीठ पर बुरी

तरह से चोट लगी। मैं तुरंत उसके पास पहुंच गया। उसने ‘हाय हाय’ करते हुए कहा कि उसकी पीठ बुरी तरह से दुख रही है। मैंने कहा कि ‘सो तो ठीक है। लेकिन आपकी पीठ दुख रही है, इसको आप कैसे सिद्ध कर सकते हैं। उन्होंने कहा; ‘इस पीड़ा को मैं सिद्ध कर सकूं या न कर सकूं लेकिन अब मैं स्कूल नहीं आ सकता। मैंने कहा, ‘अब तो आपने लड़कों के लिए पेट-दर्द और सिर-दर्द की जो शर्तें रखी हैं उन्हें आपको वापिस लेना होगा नहीं तो मैं सारे स्कूल में फैला दूंगा कि इनकी पीठ दर्दको तो स्वीकार कर लिया जाता है। लड़कों के पेट-दर्द और सिर-दर्द को नहीं। क्या प्रमाण है कि इनकी पीठ में दर्द हो रहा है और इन्हें छुट्टी चाहिए।

उन्होंने मुझ पर संदेह करते हुए कहा कि शायद तुमने ही दरवाजे के सामने केले के छिलके फेंके हुए थे। मैंने उनसे कहा कि इसको भी तो आप सिद्ध नहीं कर सकते। उन्होंने कहा, अब तुम इतनी कृपा करो कि छुट्टी का मेरा आवेदन पत्र प्रिंसिपल को दे दो।

मैंने उनसे वायदा किया कि मैं उनका आवेदनपत्र दे दूंगा। लेकिन कल से आपको लड़कों के सिर-दर्द और पेट-दर्द की शिकायत को मानना होगा क्योंकि दूसरे केबगीचों के कच्चे फल चुराकर खाने के कारण प्रायः मेरे पेट में दर्द हो जाता है। सो उस दिन से उन्होंने अपनी शर्तें वापिस ले ली। दूसरे दिन जब वे क्लास में आए तो उन्होंने मेरी ओर देखा और थोड़ा सा मुस्कराए और पढ़ाना शुरू कर दिया। लड़कों को बड़ी हैरानी हुई कि आज इनको क्या हो गया है। इतने में मैंने खड़े होकर उनसे कहा, ‘मेरे पेट में दर्द हो रहा है। इस पर उन्होंने तुरंत मुझसे कहा कि तुम जा सकते हो।’ शाम को उन्होंने मेरे घर आकर मेरे पिता से कहा, ‘आपका बेटा तो बड़ा खतरनाक है।

जब मैं शायद बारह बर्ष का था तो एक विचित्र व्यक्ति मेरे घर आया। वह एक सूफी फकीर था और मेरे पिता उसकी बातों से बहुत प्रभावित हुए और वे उसे घर लाए कि शायद मुझे वह कुछ समझा सके। मेरा कमरा अलग था और जब सब लोग काम में व्यस्त रहते तो मैं आंखें बंद करके ध्यान लगाया करता। जैसे ही उस सूफी ने मेरे कमरे में प्रवेश किया वह दीवारों को सूंघने लगा-कभी इस कोने से कभी उस कोने से। मेरा कमरा तो बिल्कुल खाली था। मुझे खालीपन बहुत पसंद है। इसके बाद वह मेरे पास आया और मुझे सूंघने लगा। मेरे पिता ने उससे कहा, मेरे पिता ने कहा, ‘मैंने आपको बताया था कि मेरा यह बेटा बहुत सनकी है।’ उस सूफी ने कहा, ‘मैं इस कमरे को और आपके बेटे को सूंघ रहा था क्योंकि मैं देखना चाहता था कि मौन की यह सुगंध कहांसे आ रही है। यह इसकी उपस्थिति की सुगंध है। आप बड़े भाग्यशाली हैं जो आपको ऐसा बेटा मिला। फिर उसने मेरे ध्यान में बाधा डालने के लिए मुझसे माफी मांगी और बाहर चला गया। उसको विदा करने के बाद पिताजी ने कहा, ‘मैं तो समझता था कि तुम ही पागल हो लेकिन यह आदमी तो तुमसे भी अधिक पागल है-वह तो दीवारों को ही सूंघ रहा था। मैंने उन्हें बताया कि वह आदमी तो बहुत ज्ञानी हैं। हर आदमी का घर उसके व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करता है। इस सूफी की अंतर्दृष्टि बहुत गहरी है।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(39)

मेरे गांव में मुहर्रम के दिनों में बहुत से मुसलमान धार्मिक आदमियों पर वली सवार हो जाता था और वे वली की स्थिति में पहुंच जाते थे। उस समय वे चीखते थे, चिल्लाते थे, जोर जोर से कूदते और अंट-शंट कुछ भी बोलते थे।

मौलवी, लोगों को इनका अर्थ समझाते थे कि ‘तुम्हें आशीर्वाद दिया गया है, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी,’ अब सौ में से पचास लोगों की इच्छा तो पूरी हो ही जाती है तो वे फिर दोबारा आयेंगे और इस बात को दूसरों में फैलायेंगे भी। दूसरे

पचास आदमी अन्य वली के पास चले जायेंगे। जो जितना अधिक कूदता उतना वह शक्तिशाली समझा जाता। इधर-उधर भाग न जायें इसलिए दोनों ओर से इनके हाथ रस्सी से बांध दिए जाते हैं और दो आदमी उनको नियंत्रण में रखते हैं। हर वली के लिए लोग फल और मिठाई लेकर आते हैं क्योंकि उनकी मन्नत पूरी हो गई है। मेरे माता-पिता मुझे समझाते कि यह मुसलमानों का त्यौहार है किंतु मैं वहां जरूर जाता क्योंकि मुझे हर प्रकार का मनोरंजन पसंद है। मैं उनसे कह देता कि ‘मैं न हिंदू हूंं न मुसलमान, न जैन। मैं किसी धर्म को नहीं मानता इसलिए मैं इन सबके त्यौहारों में जा सकता हूं।’ मैंने एक वली से कहा कि मुझे तुम्हारी रस्सी पकड़ने दो नहीं तो मैं तुम्हारा भंडा-फोड़ कर दूंगा। उसने कहा, तुम रस्सी भी पकड़ो और मिठाई भी खाओ लेकिन किसी को मेरी असलियत मत बताना। हम दोनों एक ही अखाड़े में कसरत करने जाते थे और वहीं पर हमारी दोस्ती हो गई थी, उसने खुद ही मुझे बताया था कि वह मुहर्रम के समय केवल ढोंग करता है। मैं अपने साथ एक लंबी सूई ले गया और जब-तब उसको चुभा देता और वह बहुत ऊंचे कूदने लगता। इससे उसका बहुत नाम हो गया कि वह सबसे अच्छा वली है। अब तो हर वली मुझे बुलाने लगा कि मैं उसकी रस्सी पकड़ूं। मेरी मांग बढ़ गई। मैं उनको सूई चुभाता और वे कूदने लगते। बस बेचारे एक ही दिन मुझे अपने साथ रखते-सूई की पीड़ा से वे घबरा जाते।

बचपन में मैंने अपने माता-पिता से कह रखा था कि अगर आप मुझसे ऐसा कहें कि ‘तुम ऐसा करो; तब मैं इसका ठीक उल्टा करूंगा-भले ही इसके लिए मुझे सजा क्यों न मिले किंतु मैं किसी की आज्ञा या आदेश नहीं मानूंगा। मेरे जीवन पर मेरा नियंत्रण रहेगा-कोई दूसरा इसका नियंत्रण नहीं कर सकता। उन्होंने एक दो-बार आज्ञा देकर देखा कि मैं अपने निश्चय पर अडिग हूं-मैं जानता था कि वे ठीक कह रहे हैं, फिर भी मैं उल्टा ही करता था। मेरे नाना बीमार थे और मेरे पिता बाहर जा रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा कि ‘तुम नाना का ख्याल रखना-एक दवा तीन बजे देनी है और दूसरी दवा छह बजे देनी है। किंतु मैंने इसका उल्टा किया-जो दवा तीन बजे देनी थी उसे छः बजे दिया और छह बजे देनी थी उसे तीन बजे दे दिया-इसका असर यह हुआ कि नाना की तबीयत और अधिक खराब हो गई। पिताजी ने आकर जब उनकी बिगड़ी हालत को देखा तो उन्होंने मुझसे कहा-यह तुम्हारी ज्यादती है। तुम जानबूझ कर ऐसा करोगे, ऐसी मुझे आशा नहीं थी। मैंने कहा कि मैंने तो नाना को बता दिया था कि मैं क्या करने जा रहा हूं और ‘उन्होंने कहा कि जो चाहे करो-अपने निश्चय पर दृढ़ रहो। अगर मैं मर भी जाऊं तो इसके लिए अपने को दोषी मत मानना।’ मेरे नाना तो हीरा थे हीरा। सो उस दिन से मेरे पिता ने मुझे आदेश देना बंद कर दिया, मैंने उनसे कहा कि ‘आप मुझे सुझाव दे सकते हैं। अपने बेटे के प्रति भी आपका व्यवहार शिष्टतापूर्ण होना चाहिए क्योंकि जहां तक आत्मा का सवली है-कोई पिता नहीं, कोई बेटा नहीं है। न आपका मुझ पर अधिकार है न मेरा आप पर कोई अधिकार है। यह तो केवल संयोग की बात है कि आप पिता बन गए और मैं बेटा। मेरे जन्म से पहले आपको नहीं मालूम था कि आप किसको जन्म देनेवली हैं और मुझे भी नहीं मालूम था कि मेरे माता-पिता कौन होंगे। यह तो ऐसा ही है जैसे सड़क पर संयोग से लोगों की मुलाकात हो जाए। आप आयु में बड़े हैं, मैं बहुत छोटा हूं। आपके पास पैसा है, मेरे पास कुछ नहीं है इसलिए आप मुझसे अधिक शक्तिशाली हैं किंतु इस स्थिति का आपकोफायदा नहीं उठाना चाहिए, आपको मुझसे जबर्दस्ती कुछ नहीं कराना चाहिए। हां! आप मुझे सुझाव दे सकते हैं कि ऐसा कर लो तो अच्छा होगा। आगे मानना या न मानना तो मेरा निर्णय होगा। सो धीरे-धीरे मेरे परिवार ने मुझे सुझाव देना आरंभ किया परंतु उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ जब मैं भी अपने माता-पिता को सुझाव देने लगा। मैंने अपने पिता से कहा कि आप अनुभवी हैं इसलिए मुझे सुझाव दे सकते हैं और मैं अनुभवहीन हूं, मैंने जीवन को नहीं देखा किंतु मेरा दर्पण बिल्कुल साफ है, उस पर अभी धूल नहीं जमी, इसलिए मैं चीजों को

बहुत अच्छी तरह से देख सकता हूं। अच्छी तरह से सोच विचार कर सकता हूं अर्थात आपको सुझाव दे सकता हूं। संसार के बड़े-बड़े आविष्कार अनुभवहीन लोगों द्वारा ही किए गए हैं। मैं आपको सुझाव ही दूंगा, आदेश नहीं। आप उस पर विचार कर सकते हैं।

मेरे पिता साल में तीन चार बार बंबई जाया करते थे और जाते समय वे सब बच्चों से पूछते कि उनके लिए वे क्या लायें? मैंने उनसे कभी कुछ लाने को नहीं कहा। हां! एक बार यह अवश्य कहा था कि मैं चाहता हूं कि आप अधिक मानवीय, अधिक प्रेमपूर्ण होकर लौटें। पिता होने की अकड़ वहीं छोड़ आएं और अधिक नम्र बनकर आएं। उन्होंने हंसकर कहा, ‘ये चीजें तो बाजार में नहीं मिलती।’ मैंने उत्तर दिया, ‘हां! ये वहां नहीं मिलती किंतु मुझे चाहिए अधिक स्वतंत्रता और अधिक आदर एवं कम आदेश। कोई बच्चा आदर नहीं मांगता। सब बच्चे साईकल, खिलौने, मिठाई और कपड़े मांगते हैं किंतु ये चीजें जीवन को आनंदपूर्ण नहीं बना सकतीं।

मैं अपने पिता से तभी पैसे मांगता था जब मुझे पुस्तकें खरीदनी होती थीं, और किसी चीज के लिए मैं उनसे पैसे नहीं मांगता था। मैंने उनसे यह स्पष्ट कह दिया था कि जब भी मैं पैसे मांगूं, मुझे आप पैसे दे दें क्योंकि मुझे पुस्तकें चाहिएं और मैं उन्हें खरीदूंगा ही। अगर आप पैसे नहीं देंगे तो मैं चोरी करके ले लूंगा किंतु मैं चोर नहीं बनना चाहता और आप यह विश्वास कीजिए कि मुझे सिवाय पुस्तकों के, और किसी चीज के लिए पैसा नहीं चाहिए। पिता तो स्वयं ही देख रहे थे कि घर में मेरे पुस्तकालय की संख्या बढ़ती जा रही है और धीरे-धीरे सारा घर पुस्तकों से भर गया। मेरे पिता ने यह देखकर कहा कि पहले तो हमारे घर में पुस्तकालय था किंतु अब पुस्तकालय में घर है और सबको इन पुस्तकों की देखभाल करनी पड़ती है क्योंकि अगर कोई पुस्तक खराब हो जाये तो तुम सबके लिए मुसीबत खड़ी कर देते हो। पुस्तकें सब जगह फैली हुई हैं और घर में छोटे बच्चे हैं जो इनसे टकरा जाते हैं। मैंने कहा कि छोटे बच्चों की समस्या नहीं हैं। मैं उनका इतना आदर करता हूं कि वे मेरी पुस्तकों का विशेष ध्यान रखते हैं।

और यह सच है कि मेरे छोटे भाई बहन मेरी पुस्तकों की बहुत देखभाल करते थे। जब मैं घर में नहीं होता था तो वे किसी को इन्हें छूने भी नहीं देते थे। वे उनकोझाड़-पोंछ कर वहीं रख देते जहां मैंने उन्हें रखा था ताकि उनको खोजने में मुझे कोई दिक्कत न हो। बात स्पष्ट थी-चूंकि मैं उनको आदर देता था वे मेरी पुस्तकों की देखभाल करके मेरे प्रति अपना आदर प्रकट करते थे। समस्या तो बड़े लोग थे। मेरे चाचा-चाची, मेरी बड़ी बहनें-बहनोई ये लोग मेरी पुस्तकें पढ़ते और उन पर निशान लगा देते और यह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था! मेरे पिता के एक बहनोई प्रोफेसर थे। उन्हें पुस्तकों पर निशान लगाने की और उन पर टिप्पणी लिखने की आदत थी। जब भी वह आते मेरी सुंदर-सुंदर पुस्तकों पर निशान लगा देते। आखिर मुझे उन्हें मना करना पड़ा कि मेरी पुस्तकों को कुरूप मत बनाओ। मैं पुस्तकालय की पुस्तकें इसीलिए नहीं पढ़ता कि दूसरे पाठकों ने उस पर निशान लगा दिए हैं। लाल रंग की स्याही से अगर किसी पंक्ति के नीचे रेखा खींच दी हो तो पढ़ने वली के दिमाग में वह रेखांकित पंक्ति ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है। निशान लगी हुई और रेखांकित पुस्तक का पढ़ना एक प्रकार से वेश्या के पास जाना है। मुझे पुस्तकों से बहुत प्रेम है। रेखांकित पुस्तक मुझे नहीं चाहिए, आप इसे अपने साथ ले जाइये।

मेरी बात सुनकर वह बहुत नाराज हो गए। मेरे पिता ने भी उन्हें समझाया कि मेरी पुस्तक पर उन्हें निशान नहीं लगाने चाहिएं और उससे बिना पूछे उसके पुस्तकालय से पुस्तक भी नहीं लेनी चाहिएं। बिना उससे पूछे उसकी चीज को कोई छूता भी नहीं है। अगर बिना उससे पूछे उसकी चीज को कोई लेता है तो वह उसके नाक में दम कर देता है।
अभी उस दिन मेरा एक मित्र गाड़ी पकड़ने जा रहा था और इसने उसके सूटकेस को छीन लिया

और छुपा दिया। वह अपना सूटकेस खोजने लगा। मैंने उससे कहा कि मुझे मालूम है कि उसका सूटकेस कहां है लेकिन उस सूटकेस में मेरी एक पुस्तक है और मुझे अपनी पुस्तक चाहिए, अपना सूटकेस खोलिए।’ वह उसे खोलना नहीं चाहता था किंतु मजबूरन जब उसने उसे खोला तो मेरी पुस्तक उसमें पायी गयी। मैंने उससे कहा, ‘आप हमारे मेहमान थे। हमने आपकी आवभगत की, आपने मेरी ही पुस्तक को चुरा लिया। मेरी आंखों को कोई धोखा नहीं हो सकता। जैसे ही मैं अपने कमरे में घुसता हूं मुझे पता चल जाता है कि मेरी कौन सी पुस्तक अपनी जगह पर नहीं है। अंत में मेरे पिता ने उस प्रोफेसर को समझाया कि इसकी पुस्तक पर कभी निशान मत लगाना। अब लगा दिया है तो उस पुस्तक के बदले वहां पर नयी पुस्तक लाकर रख दो।

ओशो का स्वर्णिम बचपन(40)

मेरे गांव के निकट बहुत बड़ा मठ था जो कबीर पंथी साहिबदास का था। किंतु मेरे जन्म से बीस-तीस साल पहले ही उनका देहांत हो चुका था। उनका मठ बहुत बड़ा था, उसमें एक बड़ा मंदिर था और ध्यान करने के लिए गुफाएं थीं। यह मठ नदी के नजदीक था। नदी के किनारे की छोटी-छोटी पहाड़ियों को काट कर उन्होंने गुफाएं बनायी थीं। गुफाओं के भीतर छोटे-छोटे तालाब थे। एक गुफा के भीतर से दूसरी गुफा में प्रवेश किया जा सकता था। कुछ गुफाएं पानी और मिट्टी के कारण बंद हो गई थीं। यह सब बहुत सुंदर दिखाई देता था। ये गुफाएं इतनी मौन थीं कि हवा भी उनमें प्रवेश नहीं करती थी। इन गुफाओं में आदमी आसानी से तीन महीने तक रह सकता था। तीन महीने तक उसमें आक्सीजन मिल सकती थी। लोग इनमें बैठकर ध्यान करते थे।

साहिबदास तो मेरे जन्म से बीस-तीस साल पहले मर चुके थे। अब थे उनके शिष्य, सत्यसाहिब जो बिल्कुल मूढ़ थे। न जाने क्यों संत सदा मूढ़ों को ही आकर्षित करते हैं, मैं संत नहीं हूं इसलिए मेरे पास मूढ़ नहीं आते। प्रकृति में सदा संतुलन रहता है। अगर एक संत होता है तो उसके संतुलन को बनाए रखने के लिए घोड़े मूढ़ों की जरूरत होती है। तो यह सत्यसाहिब भी मूढ़ ही थे। वह मेरे पिता के मित्र थे। मैं अपने पिता के साथ वहां जाने लगा और इन सुंदर गुफाओं को भी मैंने देखा। साहिबदास अवश्य ही बड़े प्रभावशाली संत रहे होंगे किंतु अब वहां पर सिवाय सत्यसाहिब के और कोई नहीं रहता था और वही उनके उत्तराधिकारी थे। वहां पर बड़े-बड़े बगीचे थे, खेत थे और मठ भी हराभरा; एकांत स्थान पर था। उसके पास ही नदी भी बहती थी। साहिबदास को उस मठ के मैदान में ही दफनाया गया था। भारत में संतों को जलाया नहीं जाता, उन्हें दफनाया ही जाता है। कबीर पंथी भी अपने संतों को दफनाते हैं क्योंकि उन संतों के शरीर का संपर्क उच्च व महान आत्मा से होता है इसलिए उनके शरीर भी मूल्यवान हो जाते हैं। उनके शरीर को दफना कर, उनकी समाधि बनाई जाती है जो चेतना की परम स्थिति का अर्थात ‘समाधि अवस्था’, का प्रतीक होती है।

कबीर पंथियों की समाधि चारों ओर से बंद नहीं होती। एक ओर से खुली रखते हैं ताकि साल में एक बार उस शरीर को बाहर निकालकर उसकी पूजा की जा सके, मेरे एक अध्यापक नास्तिक थे। मैंने उनसे एक दिन पूछा कि क्या वे भूत-प्रेत को मानते हैं। उन्होंने उत्तर दिया, ‘जब मैं परमात्मा को ही नहीं मानता तो भूत-प्रेतों को क्यों मानूंगा? भूत-वूत होते ही नहीं।’ मैंने उनसे कहा-‘अच्छा। मैं सिद्ध कर दूं कि भूत होते हैं क्योंकि मैं एक भूत से मिलता रहता हूं, उससे बात भी करता हूं और वह साहिबदास का भूत है। उसने कहा, ‘तुमने यह सब उस मूर्ख सत्यसाहिब से सुना होगा। वही इस प्रकार की बातें करता रहता है। तुम भी उसके पास जाते हो। मैंने कहा

कि यह तो आपने बिल्कुल ठीक कहा कि मैं उसके पास जाता हूं किंतु आपको यह नहीं मालूम कि मैं उसके गुरु से भी मिल चुका हूं।’ मैंने यह बात इतनी दृढ़ता से कही कि वह अध्यापक मेरे मुंह की ओर ही देखते रह गये, फिर मैंने उन्हें कहा कि मैं आपकी उससे मुलाकात करा दूंगा। ‘इतना सुनते ही वे डर गये। मैंने कहा, ‘डरने की तो कोई बात नहीं है, मैं और मेरे तीन-चार मित्र आपके साथ रहेंगे। साहिबदास की समाधि के दरवाजे को खींचने के लिए इतने लोगों की जरूरत होगी और फिर उनके शव को भी बाहर निकालना होगा। अध्यापक ने हैरान होकर पूछा, ‘क्या यह सब करना होगा? ‘मैंने कहा, ‘हां! ऐसा तो करना ही होगा। शव को बाहर निकालने के बाद ही मैं साहिबदास को प्रकट होने के लिए कहूंगा। लेकिन आपको बड़ी सावधानी से काम करना होगा। जरा सी भी आवाज नहीं होनी चाहिए क्योंकि अगर सत्यसाहिब नींद से जाग उठे तो वह हमारी मुसीबत कर देंगे क्योंकि यह काम उनके धर्म के विरुद्ध है। वे तो केवल वर्ष में एक बार इस शव को बाहर निकालते हैं-जिस दिन साहिबदास की मृत्यु हुई थी। इसलिए कोई आवाज नहीं होनी चाहिए। अगर भागना ही पड़े तो बिना किसी का नाम पुकारे चुपचाप भाग जाइयेगा। कभी यह भूत दूसरों को पकड़ लेता है। कभी-कभी उनके कपड़ों से ही उनको पकड़ लेता है। यह अध्यापक बंगाली थे और ढीला-ढाला कुर्ता और ढीली-ढाली धोती पहनते थे। बंगाली अपने साथ सदा छाता रखता है। हम लोग अंधेरी रात में आधी रात बीते गए। मैंने एक लड़के को भूत बनने को तैयार किया था और उससे भट्टाचार्य की धोती पकड़ने को कहा था। समाधि बड़ी थी। शव एक ताबूत में बंद था और मेरा भूत उस ताबूत के पास ही लेटा हुआ था। हमने सोचा हुआ था कि जैसे ही इस लड़के को बाहर खींचेंगे वैसे ही कोई आवाज की जाएगी और हम में से एक एक लड़का चीख पड़ेगा और हम सब भागने लगेंगे। और इससे पहले कि भट्टाचार्य भूत को देख सके, भूत उसकी धोती को पकड़ लेगा। और ठीक ऐसा ही हुआ-भूत ने भट्टाचार्य की धोती को पकड़ लिया और जब वह डर कर भागने लगे तो उसने खुद ही धोती को गिरा दिया-छाते को भी! भूत ने छाते को नहीं पकड़ा था। छाता तो भट्टाचार्य की बांह के नीचे था और भूत तो लेटा हुआ था। जब भट्टाचार्य अपने कुर्ते को भी उतारने लगे तो मैंने कहा, ‘बस! बस! भूत अब संतुष्ट हो गया है।’ दो दिन के बाद मैंने उससे पूछा-‘आपकी नास्तिकता कहां गई?’ उसने कहा, ‘तुम ठीक कहते हो परमात्मा अवश्य है किंतु वह कैसी भयावह रात थी।’ हम लोगों ने ऐसा इंतजाम कर रखा था कि आधी रात को उस गांव के सब लोग वहां पर जमा हो जायें। हमने उनको कह रखा था कि आधी रात को कुछ बहुत ही दिलचस्प होनेवाला है। आपको भट्टाचार्य नंगा भागता हुआ दिखाई देगा। सब लोग वहां पर चुपचाप लेटे हुए थे और जैसे ही भट्टाचार्य वहां आये, सबने अपने लैंप और टार्च जला दिए। इस पर हमने उन लोगों से कहा कि यह बात ठीक नहीं। एक तो भट्टाचार्य को भूत ने परेशान कर दिया है। इस शॉक को वे बर्दाश्त नहीं कर सके। कहीं मर गये तो? ‘हम उसे घर ले गए। उसे ठंडे पानी से नहलाया, कई बाल्टी पानी उसके सिर पर डाला ताकि उसके होश-हवास ठीक हो जायें। आखिर उसने कहा कि अब वह ठीक है। ‘लेकिन वह भूत कहां है?’ उसने पूछा। हमने कहा, ‘वह तो चला गया, उस ताबूत को हमने बंद कर दिया है।’ उस दिन से भट्टाचार्य रोज सुबह उस समाधि पर फूल चढ़ाने लगे और प्रार्थना करने लगे। मुझसे रहा न गया। मैंने उससे पूछा, ‘क्या आप कबीर पंथी बन गए हैं?’ उन्होंने कहा, ‘हां! मैं तो कबीर की वाणी का अध्ययन कर रहा हूं। बहुत सुंदर हैं उनके पद। अगर तुम न मिलते तो मैं तो नास्तिक ही बना रहता।’

ओशो का स्वर्णिम बचपन(41)

प्रस्तुत हैं, ओशो के बचपन के रोमांचक क्षण। इन्हें ओशो ने अपने अमेरिका प्रवास के दौरान, अपने निकट के चार शिष्यों के सम्मुख, स्वयं वर्णित किया है।

इंग्लिश में प्रकाशित ‘ग्लिम्पसेज़ ऑफ ए गोल्डन चाइल्डहुड’ पुस्तक का हिन्दी अनुवाद किया है, मा आनंद उर्मिला ने, जिसे हम धारावाहिक रूप में ओशोधारा में प्रकाशित कर रहे हैं।

अभी उस दिन मेरी मा मुझसे बात करते हुए पुरानी यादों को ताजा करते हुए बता रही थीं कि जब मैं उनके गर्भ में पांच महीने का था तो एक चमत्कार हुआ। बरसात का मौसम था और वे अपने चचेरे भाई के साथ अपनी ससुराल से अपने मायके प्रसूति के लिए जा रही थीं। उस समय सड़कें अच्छी नहीं थीं। घोड़े पर जाना पड़ता था। रास्ते में नर्मदा नदी पड़ती थी जिसमें उस समय बाढ़ आई हुई थी। किंतु नर्मदा के पार जाने के लिए एक मल्लाह को पूछा। मल्लाह ने जब देखा कि मेरी मा गर्भवती है तो उसने उनके चचेरे भाई से पूछा कि आप दोनों का क्या रिश्ता है? सो उन्होंने बताया कि वे भाई बहन हैं। इस पर उस मल्लाह ने कहा कि मैं तुम लोगों को अपनी नाव में नहीं ले जा सकता क्योंकि तुम्हारी बहन गर्भवती है और अगर इसके पेट में बेटा हुआ तो मैं मामा भांजे को एक साथ नाव में नहीं बैठा सकता क्योंकि मेरी नाव डूब जायेगी। नाव में या तो आप अकेले बैठेंगे या आपकी बहन अकेली बैठेगी-दोनों एक साथ नहीं बैठ सकते।

दोनों किनारों पर जंगल और पहाड़ थे-नाव सुबह जाकर शाम को वापस आती थी। मा के लिए इस किनारे पर उस किनारे पर अकेले रहना बहुत खतरनाक था। सो तीन दिन तक मा और उसके भाई को वहां रुकना पड़ा। मल्लाह उन्हें एक साथ नाव में ले जाने के लिए तैयार ही नहीं हो रहा था, ये दोनों एक मंदिर में ठहर गए। उस मंदिर में एक संत रहते थे जिनको साईंबाबा कहा जाता था। बाद में वहां पर इस संत के नाम पर ही साईंखेड़ा शहर बसा। परंतु ये ‘साईंबाबा’ शिरडीवाले साईंबाबा नहीं थे। शिरडी के साईंबाबा तो विश्व विख्यात हो गए क्योंकि शिरडी बंबई के नजदीक है और बंबई के बड़े-बड़े लोग उनके पास जाने लगे और साईंबाबा का नाम भारत के बाहर भी प्रसिद्ध हो गया और अनेक चमत्कार उनके नाम के साथ जोड़ दिए गए। आखिर मेरी मा ने उस मंदिर के साईंबाबा से प्रार्थना की कि आप इस मल्लाह को समझाइये कि हमें पार ले जाए। हम यहां पर तीन दिन से रुके हुए हैं और बड़ी मुश्किल में हैं।

साईंबाबा ने मेरी मा के पेट को छुआ। मा ने पूछा, ‘आप यह क्या कर रहे हैं तो उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे बच्चे के पैरों को छू रहा हूं।’ मल्लाह यह देख रहा था। साईंबाबा ने उससे कहा, ‘तुम बड़े मूर्ख हो! अरे। इस स्त्री के पेट में जो आत्मा है वह तो हजारों लोगों को पार लगा देगी। तुम अपनी नाव के साठ लोगों की चिंता मत करो। निर्भय होकर इन दोनों को नदी पार करा दो।’

मेरी मा कहती हैं कि उस समय मुझे पहली बार पता चला कि मेरे गर्भ में कोई महान आत्मा है। किंतु मुझे ऐसा लगता है कि साईंबाबा बहुत समझदार रहे होंगे और उन्होंने उस मल्लाह को बेवकूफ बनाया। इसमें चमत्कार की कोई बात नहीं थी। मामा भांजे के एक साथ बैठने से नाव नहीं डूबती। शायद कभी संयोगवश ऐसा हुआ हो और शायद उसी समय से यह बात प्रचलित हो गई। मेरी अपनी राय तो यह है कि इस मान्यता का आरंभ कृष्ण और कंस की कहानी से हुआ होगा।

इस घटना के एक महीने के बाद मेरी नानी के गांव में बाढ़ का पानी घरों में घुस आया। मेरी नानी के घर के पास एक झील थी, बरसात में उनके मकान के बाहर जो सड़क थी उस पर उस झील का पानी इकट्ठा हो जाता था और एक नदी सी बहने लगती थी। बाढ़ आने पर चारों और पानी ही पानी हो गया और अजीब बात यह हुई कि पानी का बहाव उल्टा हो गया। पानी इतनी तेजी से समुद्र की ओर जा रहा था कि समुद्र उतनी तेजी से उसको ग्रहण नहीं कर सकता था-इसलिए पानी पीछे की ओर बहने लगा। जहां पर छोटी नदियां बड़ी

नदियों से मिलती थीं वहीं पर बड़ी नदियां भी उनके पानी को अपने में समा नहीं पाती थीं, इसलिए छोटी नदियां पीछे की ओर बहने लगीं। मैंने तो नहीं देखा किंतु मेरी मा ने ऐसा होते देखा है। वह दो मंजिल मकान था। जब पहली मंजिल में पानी भर गया तो सब लोग ऊपर की मंजिल में चारपाइयों पर बैठ गए। लेकिन पानी दूसरी मंजिल में भी पहुंच गया और संयोग की बात कि मा के पेट तक पहुंचा और पेट के छूते ही पानी नीचे होने लगा। यह चमत्कार मेरे पैदा होने से पहले हुआ। मेरा उससे कोई संबंध नहीं है किंतु लोगों में यह बात फैल गई और मेरे जन्म के बाद लोग मुझे संत समझने लगे और मेरे पैर छूने लगे।

मेरे नाना की गांव में एक दुकान थी जिसमेंअनेक प्रकार की चीजें रहती थीं। जब मैं कोई चार साल का था तो मैं उस दुकान में खेलता रहता था। एक दिन न जाने मुझे क्या सूझी कि मैंने खाने की मीठी गोलियों का चूरा करके उनको दवा की पूड़िया की तरह बांट दिया। लोगों को इससे बहुत फायदा हाने लगा। उनकासिर दर्द और पेट दर्द ठीक होने लगा। दुकान पर मरीजों की भीड़ इकट्ठी होने लगी। मेरे नाना ने कहा, ‘तुमने तो मेरी दुकान को अस्पताल बना दिया है। खैर, कोई बात नहीं। तुम अपना खेल-खेलते रहो।’ सात वर्ष के बाद जब मैं वह गांव छोड़ कर अपने पिता के पास गया तो दवा लेने के लिए लोग वहां भी पहुंच गए। मैंने उनसे कहा कि अब मैं दवा नहीं देता। मेरे पिता की दुकान में मीठी गोलियां ही नहीं थी। वे तो कपड़ा बेचते थे।

मैं चार पांच साल का था तो एक दिन मैं अपने खेल में व्यस्त था। निकट ही पिताजी अपनी दाढ़ी बना रहे थे जब किसी ने दरवाजा खटखटाया। पिताजी ने मुझसे कहा, ‘जाओ जाकर उससे कह दो कि मैं घर पर नहीं हूं।’ मैंने बाहर जाकर उस आदमी से कहा कि मेरे पिताजी दाढ़ी बना रहे हैं और उन्होंने कहा है कि वे घर पर नहीं हैं। यह सुनकर उस आदमी को बहुत गुस्सा आया और भीतर आकर उसने पिताजी से कहा, ‘मुझे इस समय बुलाकर आपने इस लड़के से कहला दिया कि आप घर पर नहीं हैं!’ मेरे पिता ने घूरकर मुझे देखा। मैं समझ गया कि अब मेरी खैर नहीं है। इसलिए मैं घर से बाहर चला गया लेकिन जाने से पहले मैंने पिता से कहा, ‘मुझसे तो आप यही कहते हैं कि सदा सच बोलो। इसलिए मैंने सच बोला और साथ ही मैं यह भी देखना चाहता था कि क्या आपका व्यवहार भी सच्चा है या आप मुझे भी चालाकी सिखा रहे हैं। जब दो-तीन घंटे के बाद वापस घर आया तो पिताजी अकेले थे और उन्होंने मुझसे कहा, ‘अब कभी दोबारा मैं तुमसे झूठ बोलने के लिए नहीं कहूंगा। इसके लिए मुझे माफ कर दो।’ ऐसे मामलों में वे बहुत ही ईमानदार थे। नहीं तो कोई पिता अपने बेटे से माफी नहीं मांगता। जीवन में ऐसा मौका उन्होंने दोबारा नहीं आने दिया।

मेरी शैतानियों के कारण मेरे नाना मुझसे बहुत प्यार करते थे, वे अपने बुढ़ापे में भी शरारती थे। मेरे पिता और मेरे मामा आदि उनसे कहते थे कि ‘अपनी उम्र का ख्याल करो। आपके बच्चे भी बड़े हो गए हैं, उनके विवाह हो गए हैं और आप नाती- पोतेवाले हैं। हमें आपकी हरकतों पर शर्म आती है।’ मेरी उनके साथ बहुत पटती थी क्योंकि उस उम्र में भी उन्होंने अपना बचपन खोया नहीं था। कभी-कभी वे अपनी बेटियों और दामादों के साथ भी अच्छा खासा मजाक कर बैठते थ।

एक दिन हम दोनों ने मिलकर एक षड़यंत्र किया। बहुत से काम वे अकेले नहीं कर सकते थे-वह मैं करता था। उनका दामाद कमरे में सो रहा था। नाना सीढ़ी बने और मैं उनके कंधे पर चढ़ कर कमरे की छत पर चढ़ गया और एक खपरैल वहां से हटा दी, एक लंबा सा बांस लेकर उसके साथ एक ब्रुश बांध दिया। फिर रात को उस ब्रुश से उनके सोते हुए दामाद के चेहरे को छू दिया! वह डर कर जोर से चिल्लाया और सारा घर वहां पर इकट्ठा हो गया। सब पूछने लगे ‘क्या हुआ? क्या हुआ?’ तब तक हम तो गायब हो जाते और वह

बदहवास होकर कहता, ‘कोई भूत मेरे चेहरे को सहला रहा था। मैं उसे पकड़ नहीं सका क्योंकि बहुत अंधेरा था।’

नाना अंत तक बहुत ही सरल रहे। वे परिवार में सबसे बड़े थे। उनके सिर पर तो बहुत सी जिम्मेदारियां थीं, उनको तो बहुत गंभीर होना चाहिए था किंतु इन बातों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वे मस्त रहते थे। उनकी एक ही बात मुझे अच्छी नहीं लगती थी-उनको अपना मुंह ढांक कर सोने की आदत थी, उनके साथ सोते समय मुझे भी ऐसा ही करना पड़ता था और मुझे घुटन होने लगती थी। वे बड़े प्यार से मुझे अपने हृदय से लगाकर मुझे पूरी तरह से ढक देते थे। मुझसे यह सहन नहीं होता था। मैं ऐसे सो नहीं सकता था। वे बड़े प्यार से कहते, ‘तुम मेरे साथ सो जाओ। मैं कहता तुम्हारे साथ मेरा दम घुटता है। आप तो रात को भी मुझे अपने दिल से चिपका कर रखना चाहते हैं किंतु मेरी सांस रुक जाती है।’ किंतु सुबह हम दोनों दूर-दूर तक घूमने जाते। कभी- कभी चांदनी रात में भी। परंतु मैं उन्हें अपना हाथ नहीं पकड़ने देता। वे कहते, ‘अगर तुम गिर गए तो!’ मैं कहता, ‘कोई बात नहीं! गिरने से या ठोकर खाने से मैं मर नहीं जाऊंगा। मुझे स्वयं रास्ता देखकर चलना चाहिए। आप कब तक मेरा हाथ पकड़ें रहेंगे? एक न एक दिन तो आपको इसे छोड़ना ही पड़ेगा। सो अभी से मुझे अकेले-बिना सहारे के चलने दीजिए। अगर गिरूंगा तो उठ कर फिर चलने लगूंगा। गिर-गिर कर ही तो चलना सीखा जाता है।’

मेरे नाना हर बात में सदा मेरा पक्ष लेते थे उन्होंने कभी मुझे सजा नहीं दी- सदा पुरस्कार ही दिया। जब मैं रात को घर आता तो नाना सबसे पहले पूछते, ‘कहो दिन भर क्या किया? कोई समस्या तो खड़ी नहीं हुई? सब ठीक रहा न? तब मैं उनके बिस्तर में बैठकर सब कुछ उन्हें बताता कि दिन में क्या-क्या हुआ और वे कहते, ‘खूब! बहुत खूब! बहुत अच्छा हुआ।’

ओशो का स्वर्णिम बचपन(42)

हमारे घर से कुछ दूर एक ब्राह्मण-परिवार रहता था। ये बहुत ही कट्टर और रूढ़ीवादी ब्राह्मण थे और सिर पर चोटी भी रखते थे। गर्मी के दिनों में जब यह ब्राह्मण अपने घर के बाहर सड़क के किनारे सो रहा था तो उसकी चोटी उसके बिस्तर से नीचे लटक रही थी-मुझ से रहा नहीं गया, मैं घर से कैंची लाया और उसकी चोटी काट दी। वह जब सुबह उठा तो उसने देखा कि उसकी चोटी गायब है-उसकी सारी धार्मिकता तो उस चोटी मे ही थी। जब वही नहीं रही तो उसका ब्राह्मणत्व ही संकट में पड़ गया।

वह समझ गया कि यह करतूत किसकी हो सकती है। वह सीधे हमारे घर आया। मुझे तो पहले से ही मालूम था कि वह आएगा। इसलिए मैं बाहर ही बैठा हुआ था। उसने मुझे घूरकर देखा। मैंने भी उसको अच्छी तरह से देखा उसने पूछा ‘क्या देख रहे हो?’ मैंने कहा कि, ‘वही जो आप देख रहे हैं।’ इस पर उसने कहा ‘मुझे तुमसे नहीं, तुम्हारे पिताजी से बात करनी है।’ सो वह भीतर जाकर मेरे पिताजी को बाहर ले आया। पिताजी ने मुझसे पूछा, ‘तुमने इसके साथ क्या किया?’ मैंने उत्तर दिया, ‘मैंने इनके साथ तो कुछ नहीं किया। हां! इनकी चोटी काटी है और इनको तो पता भी न लगा कि इनकी चोटी कट रही है।’

उस आदमी ने कहा, ‘हां! उस समय मैं सोया हुआ था।’ मैंने उससे पूछा कि अगर मैं आपकी उंगली काट देता तो क्या आप सोए रहते? उसने कहा, ‘नहीं उंगली काटते तो मैं कैसे सो सकता था?’ मैंने अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा, ‘सो इससे यह सिद्ध

होता है कि बाल मृत होते हैं। उनके काटे जाने से आदमी को कोई पीड़ा महसूस नहीं होती। इसलिए जब आपकी चोटी लटक रही थी तो मैंने सोचा कि आप नाहक मृत चीज का बोझढो रहे हैं इसलिए मैंने उसे काट कर आपका बोझ हल्का कर दिया। वह मेरे कमरे में है। पिताजी के साथ तो मैंने सत्य बोलने का समझौता किया हुआ है। मैंने उसकी चोटी को उसे देते हुए कहा कि, ‘यदि आप चाहो तो इसे वापस ले सकते हो क्योंकि आपकी सारी आध्यात्मिकता इसी में छुपी हुई है और अब आप इसे अपनी पगड़ी में छुपा कर रख सकते हो।’

तब मैंने अपने पिताजी से कहा, ‘मेरा पुरस्कार?’ उस आदमी ने पिताजी से पूछा कि यह कैसा पुरस्कार मांग रहा है? पिताजी ने मुझे पांच रुपये देते हुए उसको बताया कि अभी कल ही इस लड़के के साथ यह तय हुआ था कि अगर वह सच बोलेगा तो मैं उसे पुरस्कार दूंगा। यह सुनते ही वह आदमी आग बबूला हो गया उसने कहा कि यदि इसी प्रकार इस लड़के को पांच रुपये प्रति चोटी मिलते रहे तो इस शहर के सब ब्राह्मणों की चोटियां कट जाएंगी। पिताजी ने उससे कहा, ‘मैं तो उसे सत्य बोलने का पुरस्कार दे रहा हूं क्योंकि उसके साथ यही मेरा वादा था किंतु अगर तुम उसे दंड देना चाहते हो तो दे सकते हो।’ उस ब्राह्मण ने कहा कि इसको दंड देकर मैं और भी मुसीबत में पड़ जाऊंगा। यह लड़का मुझे और मेरे परिवार को और अधिक परेशान करेगा। कल ही मुझे एक आयोजन के लिए दूसरे गांव जाना है और मुझे बिना चोटी के देखकर लोग क्या कहेंगे? मैंने उससे कहा, ‘इसका उपाय तो बहुत सीधा सा है। आप रात को भी सिर पर पगड़ी बांधे हुए ही सोना किसी को पता ही नहीं चलेगा कि आपके सिर पर चोटी है या नहीं।’ उसने मेरी ओर मुड़कर कहा ‘जी चाहता है तुम्हारी अच्छी पिटाई करूं लेकिन फिर प्रतिक्रिया कीशृंखला शुरू हो जाएगी।’ मैंने उत्तर दिया, ‘कर्म का सिद्धांत तो यही है कि व्यक्ति जब कुछ करता है तो प्रतिक्रिया आरंभ हो जाती है। आपने मेरी शिकायत की है तो अब उसकीप्रतिक्रिया आरंभ हो जाती है। आपने मेरी शिकायत की है तो अब उसकी प्रतिक्रिया तो होगी ही।’

वह ब्राह्मण बहुत ही गुस्सा हो गया और वह अपना गुस्सा अपनी पत्नी और बच्चों पर उतारने लगा। किसी प्रकार उसने अपना सामान बांधा और तांगे में बैठकर स्टेशन की ओर रवाना हो गया। इतने में मैं उसकी पत्नी के पास पहुंचा और उससे कहा कि तुम्हारा पति अब वापिस नहीं आने वाला। वह सदा के लिए जा रहा है। पत्नी तो चिल्ला चिल्लाकर रोने लगी और कहने लगी ‘अरे! कोई उनको रोक ले! उनको रोको! रोको! लोग भागते हुए गए और उस ब्राह्मण को उन्होंने रोका। वह बेचारा बार-बार यही बोल रहा था कि मुझे देर हो रही है। मेरी गाड़ी छूट जाएगी।’ किंतु लोगों ने उसकी एक न सुनी और वे उसे जबर्दस्ती पकड़कर वापस ले आये और कहते हुए कि तुम अपनी पत्नी और बच्चों को इस तरह रोते-बिलखते हुए छोड़कर नहीं जा सकते। उसको देखकर पत्नी ने उससे पूछा, ‘हम लोगों ने क्या गलती की है जो तुम हमको छोड़कर जा रहे हो?’ उस आदमी ने कहा कि ‘किया तो किसी ने कुछ नहीं है। हां! तीन दिन पहले मंदिर में मैं कर्म का सिद्धांत पढ़ा रहा था, अब यह लड़का मुझे क्रिया और प्रतिक्रिया कीशृंखला समझा रहा है।’ उसने मेरी ओर देखते हुए कहा ‘बाबा। अब माफ करो मुझे। अब कभी भी मैं कर्म का सिद्धांत नहीं पढ़ाऊंगा। अब इस प्रतिक्रिया कीशृंखला को मैं बंद करना चाहता हूं, मेरी गाड़ी भी छूट गई है।’ सब लोग उससे पूछने लगे ‘तुम्हारी चोटी को किसने काटा?’ मैंने उनसे कहा ‘चोटी तो इसके सिर पर पगड़ी के भीतर है। एक पहलवान ने उसकी पगड़ी को उठा कर देखा और वह चोटी उसके सिर से नीचे गिर गयी। मेरे पिताजी ने भी यह देखा। जब हम वापस आ रहे थे तो उन्होंने मुझसे कहा, ‘सत्य बोलने का मैं तुम्हें पुरस्कार तो अवश्य दूंगा परंतु अब तुम इसका हमेशा फायदा मत उठाओ।’

पिताजी अपना वादा सदा निभाते रहे। कितना ही गलत काम मुझसे होता किंतु सच बोलने के लिए वे सदा मुझे पुरस्कृत करते रहे। ऐसा पिता मिलना बहुत मुश्किल है।

सारा शहर उनसे कहता कि आप इस बच्चे को बिगाड़ रहे हो। वे कहते, अगर इसके भाग्य में बिगड़ना है तो बिगड़ने दो। मैं किसी प्रकार से कोई दखलअंदाजी नहीं करूंगा। यदि मेरे पिता दखल न देते तो मैं दूसरा ही व्यक्ति बनता। हर पिता अपने बच्चे को कपटी बना देता है और मैं भी ऐसा ही हो गया हूं। जब मैं हंसना चाहता हूं तो मैं गंभीर हो जाता हूं। जब मैं गंभीर होता हूं तो मैं हंसने लगता हूं। अब मैं चाहता हूं कि मेरा बेटा स्वाभाविक ही बना रहे। मेरे ग्यारह बच्चे हैं।’ किंतु मैं समझूंगा कि मेरे दस ही बच्चे हैं। मुझे उन्होंने पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी इसलिए अपने बच्चों में वे मेरी गिनती नहीं करते थे।

मेरा प्राइमरी स्कूल मेरे घर के बहुत नजदीक था। जैसे ही सुबह स्कूल की घंटी बजती मैं गुस्सलखाने में घुस जाता और घर के सब लोग दरवाजा खटखटाने लगते किंतु मैं बाहर ही न निकलता मैं स्कूल जाने के लिए तैयार ही न होता। तब हैडमास्टर खुद आकर मुझे ले जाते। यह रोज का किस्सा था। मेरे पिताजी ने उससे कहा कि, ‘आप तो घंटी बजाना बंद कर दीजिए क्योंकि घंटी के सुनते ही यह बाथरूम में बंद हो जाता है, फिर निकलता ही नहीं है।’ आखिर में हुआ यह कि पहले हैडमास्टर मेरे घर आकर मुझे पकड़कर ले जाते और फिर स्कूल की घंटी बजती। मैं सचमुच उस हैडमास्टर का आभारी हूं जिसने एक विद्यार्थी के लिए सारे स्कूल के रूटीन को बदल दिया। मैं अपने माता-पिता का भी आभारी हूं। उन्होंने मेरे लिए बहुत धैर्य रखा। जब सारा परिवार बाथरूम के बाहर खड़े होकर मुझसे दरवाजा खोलने के लिए कहता तो मैं बिल्कुल मौन रहता, कोई जवाब ही न देता। मौन के उन क्षणों से मुझे बहुत कुछ प्राप्त हुआ। जब बाथरूम के बाहर खूब शोर हो रहा होता तो उस तूफान के भीतर मैं चुपचाप बैठा नहाने का मजा ले रहा होता।

जिस गांव में मैं पैदा हुआ था वहां पर कुम्हारों की एक बस्ती थी जो मेरे घर के पास थी। कुम्हार अपने मिट्टी के बर्तनों को गधों पर लाद कर ले जाते थे। दिन भर तो उनसे काम लिया जाता था किंतु रात को उनको खुला छोड़ा जाता था। मैं रात को किसी न किसी गधे को पकड़ कर उस की सवारी का मजा लेता। गधा अछूत समझा जाता है। इसलिए लोग मेरे परिवार वालों से कहते कि हमने आपके बेटे को गधे पर सवार होकर बाजार की ओर जाते देखा। जब तक वह नदी में नहा न ले तब तक उसे घर के भीतर न आने देना। मेरे पिता मुझे बहलाने के लिए कहते कि अगर तुम्हें सवारी का इतना शौक है तो मैं तुम्हारे लिए घोड़ा खरीद लेता हूं। मैं कहता ‘नहीं! मुझे तो गधे ही पसंद हैं और लोगों की यह धारणा गलत है कि गधे मूर्ख होते हैं। ये तो बहुत ही चालाक होते हैं और कुशल राजनीतिज्ञ होते हैं। इसलिए किसी को कभी नहीं मालूम हो सकता कि अगले क्षण गधा कैसा व्यवहार करेगा-सीधा चलता रहेगा या एकाएक सड़क के बीच अड़ जाएगा। घोड़े पर चढ़ना आसान है और गधे की सवारी करना मुश्किल है। वे या तो दायीं ओर या बायीं ओर, सड़क के बीच में तो चलेंगे ही नहीं। बुद्ध कहा करते थे ‘मध्यम मार्ग अपनाओ’ किंतु ये गधे उनकी बात ही नहीं मानते। अंत में मेरे परिवार ने निर्णय लिया कि मैं रसोई घर में प्रवेश न करूं क्योंकि गधे पर चढ़ने के कारण मैं अछूत बन गया था।